

रवि न PB/JL/55



साप्ताहिक

कृपवन्तो

ओ३म्

विश्वमार्यम्

दुर्भाग

२२९२२६

आर्य मर्यादा

आय प्रानानांथ यथा पनाच का प्रमथ



□ श्री अग्रिमो कुम्हार पठक

आर्य समाज के सत्संगी तथा अन्य सत्संगी की समिति पर वैदिक धर्म की बच के उद्घोष लगाये जाते हैं और वैदिक धर्म की अन्य मत मतान्तरो से तुलना करके इसे ही आर्य समाज के सिद्धान्त तथा उपदेशक सर्वश्रेष्ठ बताते हैं मैंने कई आर्य विद्वानों से पूछा कि क्या सत्संगी ने वैदिक धर्म का कहीं अतिरिक्त है इसके उत्तर में प्राप्त सभी ने यह कहा कि वैदिक धर्म का अतिरिक्त तो है परन्तु आजकल इस हिन्दू धर्म कहा जाता है परन्तु एक दो विद्वानों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि पूजक से अन्य मतों की तरह वैदिक धर्म तो नहीं है और आर्य समाज जिन सिद्धान्तों को मानता है वे वैदिक धर्म के सिद्धान्त ही हैं परन्तु इन सिद्धान्तों पर अवधारण करने वाले पाचार बहुत कम हैं

वास्तव में अगर देखा जाये तो वैदिक धर्म का सत्संगी से कोई अतिरिक्त भी नहीं है क्योंकि हिन्दू धर्म में तो निम्न निम्न विचारों के लोग हैं अर्थात् ईश्वर को मानने वाले न मानने वाले मूर्ति पूजने वाले न मानने वाले न मानने वाले इत्यादि इसमें तो बहुत से समुदाय हैं जिनकी अपनी अपनी अलग पूजा पद्धति है फिर इसे वैदिक धर्म कैसे कहा जा सकता है

महर्षि दयानन्द ने हमें बताया था कि हमारा प्राचीन नाम आर्य है हिन्दू नहीं इसीलिए उन्होंने आर्य समाज के नाम से एक आन्दोलन चलाया और उसके दर निम्न बनावे को लोग आर्य समाज के सदस्य बनते हैं उनके ११ अतिरिक्त है कि इन

निम्नो के अनुसार चले महर्षि न यह भी कहा कि वह कोई मत अथवा पथ नहीं चलाना चाहते वह तो सत्य सनातन वैदिक धर्म की मानते हैं जिसे ब्रह्मा से जैमिनि मुनि तक सभी मानते आये हैं आर्य समाज का लक्ष्य इसी धर्म का प्रचार प्रसार करना है जो वेद पर आधारित है महर्षि ने ३ दिसम्बर १८८० को आर्य समाज मुसलमान के मंत्री मा दयालाम वर्मा को एक पत्र लिखा था कि ८८ में होने वाली जनगणना में आर्य लोग धर्म के खाने में वैदिक धर्म तथा जाति के खाने में आर्य लिखाये परन्तु खेद है कि आर्य नेताओं ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया हर ० बर्ष बाद जब जनगणना होती है तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा सब आर्यों को यह निर्देश दिया जाता है परन्तु यह कुछ पता नहीं कि कितने लोग इसे मान कर अपने अपने को वैदिक धर्मी लिखाते हैं मेरे विचार में तो सभी आर्य धर्म के खाने में हिन्दू ही लिखाते हैं इसलिए अगर वैदिक धर्मी बन जाते तो वैदिक धर्म की वृद्धि होती इस लिए इस बात का तो खूब प्रचार होना चाहिए कि सभी लोग जनगणना तथा अन्य सरकारी कार्यों इत्यादि में अपना धर्म हिन्दू न लिखा कर वैदिक धर्म ही लिखाये तथा सरकारी के भी यह सरकारी अधिकारी इसे मना करें ऐसा करने पर वैदिक धर्म एक सार्वभौमिक धर्म के रूप में सत्संगी में सब से बड़ा हो सकता है क्योंकि इसके सिद्ध सिद्धान्त बुद्धि अनुकूल हैं इस तरह सब आर्य सदस्यों के परिचार एक ही वैदिक

११ दयानन्दस्य ४ वार्षिक शुल्क ५० रुपये आजीवन रूप्य

श्री प० मनीषीदेव जी नही रहे

आर्य समाज माहल टाउन अमृतसर के पुरोहित प मनीषी देव जी शास्त्री का दिनांक २४ ११ को देहान्त हो गया श्री मनीषी देव जी न अपने जीवन में आर्य समाज की बहुत सेवा की है अपने पुत्रो व पुत्रियों को भी वैदिक विचार से ओत प्रोत किया उनके सुपुत्र प राकेश शास्त्री पुरोहित आर्य समाज है चण्डीगढ़ तथा अमृतसर आ नरेश कुमार तीनी ही पुरोहित रूप आर्य समाज का सेवा कर रहे हैं उनके दामाद प अनिरुद्ध जी शास्त्री आर्य समाज माहल टाउन लुधियाना में पुरोहित रूप में कार्य कर रहे हैं उनका सुपुत्री विमोक्षा दास सन्यास का दास मकर स्थान स्थान पर पूज्य भूम कर वेद प्रचार कर रही है

इस प्रकार भा प मनीष-देव जी ने अपना सारा परिचार आर्य समाज के अपर्ण किया हुआ है और उनकी सभी बच्चे आर्य समाज का सेवा कर रहे हैं यह उनका आर्य समाज के प्रति बहुत बड़ी देन है यह स्वयं भा जावन भर अतिम समथ तक आर्य समाज का कार्य करत रहे उनका अभाव सदा आर्य समाज में छटकता रहेगा हम पत्र पत्र पत्रमात्र से प्रार्थना करते हैं कि वह उस पवित्र आमा को सदाप्रति प्रदान करें तथा उनके परिचार जनों को इस विषयों की सदन करने की शक्ति द

हम सभा कार्यपालक के सभी कमरादा उन्हें अपना ब्रह्मानन्द प करते हैं

धर्मदेव आर्य कार्यपालक अध्यक्ष

धर्म को मानने वाले छोटे आजकल तो अन्य हिन्दुओं की तरह आर्य सदस्यों के परिचार भी अलग अलग विचारों के हो रहे हैं जिस तरह कि घर में अगर पुरुष आर्य समाज का सदस्य है तो ऐसे अधिकतर पुरुषों की स्त्रिया पौराणिक अथवा राधा स्वामी इत्यादि हैं पुत्र पुत्रियों में से कोई हनुमान फालीसा पढ़ता है तो कोई शिवजी पर जल चढ़ाता अथवा नास्तिक है इसीलिए बहुत से आर्य सदस्यों को यह बेवफा रहती है कि उनके परिचार आर्य समाज में नहीं आते महिला सदस्यों की सख्त आर्य समाजों में काफी कम है जिससे उनकी सलाह माना पित्त के बीच में फस कर रह जाती है कि वह किसी ठीक समझे किसी गलत इन्की कारणों से आर्य समाज के सत्संगी में बहुत कम लोग आते हैं और आर्य समाज स्थित होना आ रहा है आखिर आर्य समाज तो एक आर्य समाज और आन्दोलन हमेशा नहीं चला

करते हैं अब तो आर्य समाज कोई आन्दोलन चलाना में पा अधम होता जा रहा है क्योंकि इसके लिए कार्यकर्ता हो नही मिलता अगर सब सदस्यों के परिचार वैदिक धर्मी हो तो आर्य समाज कभी स्थित नहीं हो सकता क्योंकि अपने घर से ही कार्यकर्ता मिल जाये जिस तरह एक ईसाई अथवा मुसलमान को सलाह भी उसी धर्म को मानने वाली होती है ऐसे ही आर्यों की सत्संगी भी हो जाती है

आर्य समाज हिन्दुओं से क्या अलग नहीं हो सकता पर हिन्दू तो कोई धर्म ही नहीं है अगर वैदिक धर्म लिखान में किसी का सकोच हो तो उसके साथ कैकेट में हिन्दू भी लिखा जा सकता है अन्य नेताओं से निवेदन है कि परम्परा लाई इगढ़े देव की बाते छोड़े परस्पर मिलजुल कर इस पर विचार करें तथा महर्षि दयानन्द का आदेश मान कर सभी आर्य परिचार अपना धर्म वैदिक धर्म ही लिखाये और किसी योग्य व्यक्ति को पृष्ठ ५ पर

□ श्री अशोक कुमार कसल द्वारा कसल फिलिम स्टोडन डोन
कारावीर इन्डिया-1983

समस्त इच्छाये पूर्ण कराती है
विद्या की प्राप्ति के लिये ईश्वर
जीव और प्रकृति के स्वरूप ज्ञे
(शेष पृष्ठ 6 पर

हारविन का विकासवाद मूर्खतापूर्ण प्रत्यापन है

(श्रीमती प्रवीण कुमारी जैन अवस्थी, 81, अमरक, अजमेर, (राजस्थान) 305001)

हारविनवाद के कारण जो नास्तिकता और मूर्खता का दौर प्रारम्भ हुआ उसने विज्ञान की विभिन्न शाखाओं को प्रभावित किया। अनेक वैज्ञानिक सृष्टि रचना स्वयंसेवक मानने लगे। उनकी मान्यता में आत्मा एवं ईश्वर तो हैं नहीं अतएव शरीर रचना भी जड़ पदार्थों की रासायनिक क्रियाओं से स्वतः हो गई होगी। इस भ्रामक चिन्तन के फलस्वरूप उनमें जीवमात्र के प्रति भयमा हो गयी समाप्त हो गई एवं स्वार्थ का चरमोत्कर्ष हो गया।

विकासवाद से प्रचलन विज्ञान को जो गलत दिशा मिली उससे प्राकृतिक प्रचलन क्रियाओं और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों को छोड़ वैज्ञानिक मर्यादों को तोड़ने की स्वीकृति (प्रजाति) के शरीर के ढंग को दूसरी या उसी स्वीकृति के सदस्य के शरीर में प्रविष्ट कर देना उनके प्रयोगों का अंग हो गया और ऐसे प्रयोगों से यही आविष्कार की आशा में करने लगे। इस प्रकार आविष्कार का ब्रह्मन् लेखने से क्रुमिण गर्भाधान सफल करने का जन्म आदि द्वारा हुए रसायनिक क्रियाओं पर महार लगा और और तो और वे कारन जति पर ऐसे ऐसे प्रयोग करत हुए पूर्ण हट चले गये हैं। किन्तु अपने क्रुमिण गर्भाधान या सफल गर्भस्थ आदि के सिद्धान्तों और प्रयोगों को वे स्वयं पर लागू नहीं करते उनके सिद्धान्त और प्रयोग तो दूसरों के लिए ही हैं। यदि प्रशासन यह नियम बना दे उक्तान् उनके सिद्धान्त और प्रयोग पहले उनकी पर लागू करदिये जायेंगे तो वे इसके लिए कटिपथ विचार न होतु किन्तु भावैता मचायेंगे। इससे उनका आत्मा का पाप प्रजातिगत हो जाता है।

धर्म का बल चुनकर अनुसन्धान के अन्वया एक कान से दूसरे कान में निकाल देने को प्रवृत्ति लोगों की बन गयी है। जैसे कुत्ते को पुरुष सीधा नहा की जा सकती ऐसे ही इन लोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन नहीं होता विज्ञान को वे पछाई में ठकाने प्रती आत्मा भी हैं। अतः विज्ञान के नियमों के आधार पर ही आत्मा व ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध कर डारविनवाद को परखना का प्रयत्न मैंने किया है ताकि वे इसको जड़ विचार कर अपना बुद्धि व दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन कर

सके। मुझ में ऐसी दृष्टि विकसित करने का श्रेय मैंने इयानन्द कुल ग्रन्थों को ही है।

हारविन में आत्मा और ईश्वर का अस्तित्व नहीं माना। अतः जड़ पदार्थों की रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप ही शरीर रचना का होना मान लिया। उसके अनुसार प्रारम्भ में एक कोशिकाओं वाले विभिन्न कोशों का विकास हुआ। विकास की इस मूर्खता के अन्त में बन्दर से मनुष्य की रचना हुई।

अब विज्ञान का जलन सिद्धान्त क्या कहता है? यह कि किना बाड़ा बल लगे जड़ पदार्थों की स्थिति या आकृति में स्वयं परिवर्तन नहीं हो सकता।

इसकी व्याख्या करने पर स्पष्ट होता है कि इस गुण के कारण ही 1 कुर्सी में जेब आदि जड़ पदार्थ स्वयं ठककर दूसरी जगह नहीं चले जाते।

2 जड़ वस्तुएं अपनी गति या स्थिति को दिसा अथवा आकृति में स्वयं परिवर्तन नहीं कर सकती। 3 जड़ पदार्थ स्वयं ही जुड़कर पदार्थ काक्यूटर आदि मशीन नहीं बन सकते और न ही दूसरे जड़ पदार्थों पर वे स्वयं हा इस प्रकार बल लगा सकते हैं कि विभिन्न मशीनें बन सकें।

4 रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप बने पदार्थ भी पूरा तरह जड़ पदार्थ होते हैं उनमें जलन का गुण क्रियाओं में भाग लेने वाले पदार्थों के समान ही वर्धमान होता है।

5 रासायनिक क्रियाओं से मराने स्वयं नहीं बन सकती। 6 जड़ पदार्थों से बनी काक्यूटर आदि अथवा से बनी मशीनें भी स्वयं नहीं चल सकती किन्तु किसी के चलाने से ही चलती हैं।

7 जड़ पदार्थों में स्वयं मशीन चलाने का सामर्थ्य नहीं होता इसी कारण चलाने वाले के अभाव में हजारों वर्ष तक पड़ी रहने पर भी मशीन चल नहीं पायी।

8 मशीन चलाने की सामर्थ्य ठक केसे भी विचार पर्यावरण या परिस्थिति में रहे या रखी जावे किन्तु दूसरी मशीनें में परिवर्तित नहीं हो जाती क्योंकि पर्यावरण

या परिस्थिति भी जड़ निर्मित होते हैं। अतः जलन गुण के कारण उनमें चुननात्मक क्षमता का अभाव होता है।

इस व्याख्या के आधार पर विचार करें कि—

शरीर में इतने इतने उत्तम पदार्थ मशिकल अनुष्ठान काक्यूटर हैं इसके अतिरिक्त पाचन एवं उत्पन्न एवं लजिका एवं रक्षा प्रणाली आदि उत्तमोत्तम रचनाएँ हैं ऐसी मशीन अपने आप कैसे बन सकती है? इस मशीन के विभिन्न भागों के अन्तर्गर्जनक कार्यों पर विचार करें— किन्तु कैसे विभिन्न स्वादों का ज्ञान कराती है? गुँदे कैसे रक्त को ब्रह्मचर्य करते हैं? शरीर से जल्यं पदार्थ किस प्रकार उत्पन्न एवं द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं? शरीर की भीरी दृष्ट, कृष्ट शरीर की आन्तरिक क्रियाओं से ही ठीक हो जाती है।

इदप हारविन में किस प्रकार से रक्त को पम्प कराती है? रक्षा प्रणाली किस प्रकार शरीर को विभिन्न रोगों से बचाये रखती है? आदि आदि। ऐसी ऐसी उत्तम मशीनें जिन छोटे से शरीर में हैं। जड़ से जलन गुण होने से मशीनें बन जाने या मशीनें बना देने का सामर्थ्य नहीं है। स्पष्ट है कि इनका कोई रचियता है और वह जड़ नहीं हो सकता।

अब माया या पिता तो शरीर रचन करते नहीं जो करते तो अपनी सत्ताओं को मूर्ख दुर्बल रोगा का कुरूप रथ फिर देख देख दुखी हो उनके इलाज हेतु वे बुद्धि धर उभर भाग दौड़ क्यों करते? अतएव इन समस्त शरीरों के रचियता का कोई अन्त नहीं है अर्थात् ईश्वर की पुष्टि होती है।

सारासं रूप में जड़ पदार्थों में जलन गुण होने से वे स्वयं मशीनें नहीं बन सकते। यदि चर्चा मशीन रचना देखो जाती है तो इसका अर्थ है कि रचियता अत्यन्त है। अब शरीर रचना को देखकर ईश्वर की पुष्टि होती है और यह पुष्टि डारविन के विकासवाद पर एक भयंकर उत्काण्ठ है।

अब मानक शरीर स्वयं चलता है मशीनें बनाता व चलता है जबकि जड़ निर्मित अथवा वे अथवा काक्यूटर जड़ निर्मित में भी जलन के कारण स्वयं चलने मशीनें बनाने व चलाने आदि के गुण नहीं होता। इससे यही स्पष्ट होता है कि मायाव शरीर में कोई जड़ व भिन्न पदार्थ विद्यमान होगा चाहिये। अतः शरीरस्व चेतन का अस्तित्व सिद्ध होता है।

पहा इस हक पर भी विचार कर लेंगे कि यह शरीरस्व चेतन ईश्वर नहीं है।

शरीरस्व चेतन ईश्वर का अन्त भी नहीं है क्योंकि पदार्थ के विभिन्न अंशों में पदार्थ के ही गुण होते हैं। यदि शरीरस्व चेतन ईश्वर का अन्त होता तो यह कुछ न होता।

यह ईश्वर से उत्पन्न भी नहीं है क्योंकि तब ईश्वर का छोटे छोटे भागों के रूप में क्षय होना से वह सर्वव्यापक न रह जायेगा। शरीरस्व चेतन भिन्न भिन्न है क्योंकि एक के विचार इच्छा अनुभूति दूसरा नहीं बना सकता। अतः उर्ध्वमुख चिन्तन से विभिन्न आत्मों का अस्तित्व सिद्ध होता है और यह डारविनवाद पर पुनः भयंकर कुतरावला है।

अब डारविन के विकासवाद का इस भाग पर विचार कर लेते हैं जो यह बताता है कि विभिन्न स्वीकृति (प्रजाति) के उत्पत्ति एक ही आदि जीन से हुए क्रमिक परिवर्तनों से हुई है। इन परिवर्तनों का कारण स्वाभाविक में पर्यावरण के अनुसार अपने को ढाल लाने की क्षमता है इस क्षमता का अनुकूलन क्षमता कहते हैं। उदाहरण के लिए इस क्षमता के कारण ही मनुष्यवर्ग जीवों में जड़ तत्त्व अति विकसित हो जाता है ताकि जड़े दूर दूर फैल सके। यही क्षमता ही मनुष्यवर्ग जीवों में जैसा मागपत्नी में पतिमा गुल में स्वभावगत हो जाता है जिससे पत्नियों के छिद्रों या होने वाला याम्योत्पन्न बहुत पच हो जाता है और जीवों में जल वायु विशेष जलिन व होने से पौधा इस सुख्य व गर्म जलवायु में भाजित रह सकता है। इस अनुकूलन व कारण कुछ सरीसृपों (रेंगेने वाल जन्तु) उदाहरण मगरमच्छ छिपकली आदि) में अग्रगण्य (आगे के पैर) पक्षों में बदल गये और पक्षी बने।

अब विचार करें कि जब जड़ पदार्थों से बनी मशीनें में जलन गुण के कारण दूसरी मशीन में स्वयं चलने वाले की क्षमता नहीं होती और की उन्हें कैसे पर्यावरण में किसी भी अन्तर्गत के लिए बन्नी न रखा जावे किन्तु पर्यावरण भी वा जड़ निर्मित होता। (तेज पृष्ठ 7 पर)

प्रभात आश्रम का वार्षिकोत्सव संपन्न

13 जनवरी को प्रभात आश्रम में वैदिक वाचस्पतये मे मुक्त का स्वर्णचक्र विषय पर होने वाली शोध संगोष्ठी ने इस वर्ष वेद सम्मेलन का स्वर्णचक्र से लिया। भवकर शोध होने पर श्री वैदिक विद्वानों एवं ओताओ की अप्रत्याशित उपस्थिति ने शोध संगोष्ठी को वेद सम्मेलन के रूप में परिणत किया। शोध संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रसिद्ध वैदिक विद्वान डा० कृष्ण लाल जा (दिल्ली) कर रहे थे एवं सयोजन कर रहे थे डा० निरुपम जी विद्यालंकार। इसके अतिरिक्त अन्य प्रधने वाले विद्वानों ने अनुष्ठान व डा० अमरीन्द कुमार जा श्रामति शक्ति विद्यालं दिल्ली वि० वि० डा० मनोहरा शिवारी लखनऊ डा० सुधाय वेदालंकार जयपुर राजस्थान वि० वि० डा० जयदत्त ठगेलि कुम्हार वि० वि० अमलका प्रो० वैष्णवका राखी डा० मन्वीर अग्रवाल डा० सोमदेव शताशु गु० कागडा वि० वि० डा० कृष्ण कुमार गडवाल वि० वि० डा० ० श्रीमति डार्मल आनन्द दयालमग वि० वि० अंगता आरा प्रसिद्ध वैदिक विद्वान उपस्थित थे।

हांटी में वैदिक एय मायत्री महायज्ञ

आर्य समाज मन्दिर हांटी में दिनांक 2 9 99 से 4 2 99 तक रात्रि 8 से 10 बजे वैदिक एय मायत्री महायज्ञ प्राप्त 7 से 9 बजे तक होने का रहा है जिसमें कथा वाचक पूष्पा स्वामी मायवानन्द जी सरस्वती हिसार यज्ञ के ब्रह्म आचार्य रामसुधाकर शास्त्री वैदिक प्रवक्ता आर्य समाज हांटी एय

आर्य समाज जालन्धर छावनी का जुलूस

आर्य समाज जालन्धर छावनी का वार्षिक जुलूस 24 1 99 को हांटी के बाद हुआ। इसमें सर्वोपस्थित निम्न अधिकारी चुन गए। 1 प्रधान आ जनक राज जी महानन्द 2 वरिष्ठ उपप्रधान आ चमन प्रकाश जा नन्द 3 उपप्रधान श्री धनू प्रकाश जा गुप्ता 4 उपप्रधान आ कारीराम जी अग्रवाल 5 यश्री श्री स्वदेश कुमार जी तैलान 6 कोषाध्यक्ष श्री यशवीर लाल महानन्द 7 उपसत्री श्री राज सिंह 8 पुस्तकाध्यक्ष श्री ओंकार कुमार जावद 9 सेवादल अध्यक्ष श्री रमेश जी 10 आडिटर श्री बलदेव राज जी मर्मा

-स्वदेश कुमार लाला (मत्री)

14 जनवरी को सामवेद परामर्श यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ ही अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों के भाषण एवं प्रवचन सुनने की विले उपस्थित शिवाजी के जीवन से संबंधित संस्कृत नाटिका विद्यापीठ के ऐतिहासिक व्याख्यान प्रदर्शन तथा धर्मशिक्षा प्रदर्शन का कार्य मुख्य आकर्षण का केन्द्र रहा। इसी अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में गुरुकुल कांगड़ी वि० वि० के कुलपति डा० धर्मपाल आ पथार हुए थे यज्ञ की उपस्थिति एय जनता की ब्रह्मा को देखकर उन्होंने कहा कि यज्ञ का उद्देश्य पूर्ण वातावरण गुरुकुल कांगड़ी के प्राचीन उत्सवों का स्मरण दिला रहा है शिक्षा जनत में प्रभात आश्रम की उपस्थितियों का भूति भूति प्रस्ताव की अन्त में स्वामी आ महाराज ने आशीर्वाचन के रूप में सक्रान्ति पर्व का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए वैदिक विद्वानों का अनुसरण करने के लिये लोगों को प्रेरित किया। इस प्रकार आश्रम का 26वां वार्षिकोत्सव हरेलाला पूर्वक संपन्न हुआ।

भजनों पदरक महाराज जबर सिंह हांटी वेद प्रसार मण्डल हांटी हांग हरेलाला अतिरिक्त आर्य स्कूल व चौ० ए० बी स्कूल के बच्चों का भी रौचक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जायेगा। 14 2 99 को दोपहर 12 बजे यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ कार्यक्रम संपन्न होगा।

सतीश कुमार आर्य

आर्यसमाज माइल हाऊस जालन्धर का जुलूस

आर्यसमाज माइल हाऊस जालन्धर का वार्षिक जुलूस दिनांक 3 99 को सम्पन्न्यति से निम्न प्रकार हुआ। श्री स्वर्णचक्र प्रथम श्रीमत्त वरुणलाल वरिष्ठ उपप्रधान श्रीमत्त कमलानन्द उपप्रधान आ कमललाल नैक महाराज आ श्रीम प्रकाश गुप्ता आ शिवानन्द सिंह गुप्ता यश्री श्री राज कुमार सन्दल कोषाध्यक्ष आ धर्मेश कुमार सह कोषाध्यक्ष आ पूष्पा प्रकाश प्रधानसेत्री श्रीधर कुमार स्टेडवायर के अध्यक्ष उपस्थित अन्तराल सत्य श्रीमति सोनिया प्रीति लाल प्रम प्रम दुर्देश एनी रत्नो बाला कान्त एय। श्री श्रीमत्त कुमार आ हरिन्द श्री धरवीर जी विद्यालंकार आ प्रेम एय श्री विद्यालंकार श्री गिरधर लाल श्री बसरा जी अम्बिकी कुमार शमा श्री तलेश कुमार

अपदेश राज प्रधान

अमृतसर में वैदिक भाषण प्रतियोगिता

आर्य युवक सभा शांति नगर के छात्रावधान में आर्य समाज मन्दिर शांति नगर में (सात दिवस निम्न स्कूलों में प्रतियोगिता करने के उपरान्त) वैदिक भाषण प्रतियोगिता (फाइनल) कराई गई जिस की अध्यक्षता श्री दर्शन लाल जा (प्रान केन्द्रीय आर्य सभा) ने की जिस में 21 छात्र छात्राओं ने भाग लिया। समारोह में अध्यापक गण एयम् गणमान्य अन्ति उपस्थित थे। निम्नलिखित विषय थे। जीवन का महानता में चारित्र्य का योगदान 2 आर्य संस्कृति के राष्ट्रीक श्री राम 3 भद्राचार एक राष्ट्रीय समस्या।

प्रथम स्थान कुमार सपना सरस्वता डी० ए० बी० द्वितीय

बठिण्डा में धर्मवीर हकीमत राय का बलिदान दिवस

आर्य समाज बठिण्डा के प्राणय में बाल हकीमत राय का बलिदान दिवस बड़ी धूमधाम के साथ श्री विद्यार्थी लाल जी माला की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सर्व प्रथम हवन यज्ञ आर्य समाज के सुधाय आचार्य प्रवर श्री पं० सुनील कुमार आ पुरोहित के सान्निध्य में हुआ। मालाओं द्वारा यज्ञ के बाद ति गाय गया अन्त में श्री विद्यार्थी लाल जी ने संचालन करते हुए सक्का धन्यवाद किया और अन्त में बट्टे नारा प्रान्त के पुन श्री लुहा में जलपान की व्यवस्था का।

बाबू राम

को गेता मान का आर्य समाज का उन्मत्त में जुट जाये क्योंकि नाउय पन्था विद्यार्थीनाय इसके अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं है। आर्य समाज अखिर एक संगठन ही तो है कोई धर्म नहीं है अन्त ही हालत यह हो गई है कि किता आर्य सदस्य के पुत्र/पुत्री को अगर आर्य समाज का सन्तान में आने को कहा जाये या या तो वह छुट नुठ हा भर लता है अन्तः स्वरूप रूप में कोई तो यज्ञ तक कह गेता है कि उनके माता पिता आर्य समाज में जाते हा है जिसका अभिप्राय यह होता है कि यह (पिता जी) आर्य समाज

गवालों में बसन्तोत्सव

आर्य समाज सावली आदि पंचपुरी गवालों के आर्य समाज द्वारा बहुरूप यज्ञ से बसन्तोत्सव के पावन यज्ञ का कुशाराध्य हुआ। भवनेपरदेशक आ बसन्ताराधन के आर्य द्वारा मधुर भजन प्रस्तुत किया गय। समाज के अध्यक्ष आ सभाय के अध्यक्ष का कार्यक्रम संपन्न

स्थान कुमार रातू आर्य समाज लोहाड प्रतीय स्थान कुमार काति सरस्वती डा० ए० बी० को प्राण हुआ मुख्य अतिथि यजन नक्सी कान्ता आ चावल विधापिका ने स्मृति चिह्न तथा पुस्तक वितरित किए।

सभा के यदाधिकारियों आ सत्यनारायण आ सुकल (प्रधान श्री हीरा लाल जा कम्भारा वरि २०० प्रधान आ मुरात लाल आ धवन (महामंत्री आ विजय शागर जो उपप्रधान आ दिनेश कुमार आ कोषाध्यक्ष नलित सचद्वय (प्रचार मंत्री तथा सदस्यों ने सक्ति धूमिका निभात अन्त में प्रीतिभाज का अवाचन किया गया।

फिरोजपुर में बसन्त पंचमी एवं

आर्य समाज राय का गालान फिरोजपुर शहर में बसन्त पंचमी का पर्व विधान समारोह से 22 99 का मनाया गया। इस म महामा आय मुनि स्मृति विषयम बन मजा जा ने किन्तु धर्म का रहा हट्ट बलिदान देत वाल धर्मपरा हकान्त राव तथा अर्ध बलिदानी वरा भक्ता का गायन पर और बसन्त की महना पर प्रकाश डाला।

सन्तोष कुमार मत्रा

पाबू का शेष)

के सरस्वत है इस तरह टाल मटान कक बात सयपा हां जाता है इसलिये आर्य विद्वाना सन्यासिया और आय प्रसिद्धि सभाआ क अधिकारिया स मता नम्र नमस्ते - कि ये परस्पर विपक्ष मिलियन कक भविष्य दयानन्द क आदर का पानन करे तथा आर्य जनता का अपना धर्म वैदिक म सभा सन्तान कागन पठा तथा जनगणता क समय लिखन का निर्देश द और इसके लुख प्रचार किता नाय

अभा तब वैदिक धर्मियों का वास्तविक सङ्घना कडा सरकारा रिक्तम में है हा हा हा हा हा चहिए।

बसन्तोत्सव

हुआ मत्र संचालन समाज क मत्रा गता प्रसाद लेख्य दिया किता गया आर्य समस्तान में सन्तानलुख क मत्रल पर प्रकाश डाला।

अन्त में सभा की समापन क ट हुए आ प्रियवरा जा न सभा का बसन्त ऋतु है आगमन क शुभकामनाएं द।

आर्य समाज, घाटकोपर का उत्सव

आर्य समाज बाटकोपर मुख्य रूप से धार्मिकता व प्रथम संस्कार शिविर समारोह परियोजनाओं के अन्तर्गत आयोजित किया गया। आचार्य चन्द्रदेव जी "कुलपति" आर्य मुख्यालय मुख्य पुर फलकबाद का राष्ट्र को जय सन्देश व वेदांगकुल वैदिक राष्ट्र की स्थापना तथा युवकों हेतु समय के महत्व का अंकगणन व प्रति बढ़ावा का निवेदन हुआ। प. सुरेश साहू जी मुख्य द्वारा प्रमुखता

के रस से परिपूर्ण बन गया युवा पीढ़ी को राष्ट्र रक्षा हेतु समय में व्यापक अज्ञान, अन्याय, अभाव को समूल नष्ट करने पर बल दिया गया।

केन्द्रीय देवरल आर्य उप प्रधान सार्वभौमिक प्रतिनिधि सभा, श्री दूर जी प्रताप भाई, श्री गुणधरन हुसैन, श्री हरिभाई कोठारी तत्पक्ष विपक्ष आदि का उत्कृष्ट प्रदर्शन प्रेक्षागृह रहा।

(पृष्ठ 4 का शेष)

से जड़त्व गुणवत्ता होता है। अतः ऐसी सुव्यवस्था शक्ति वह नहीं रहती। तो फिर एक कोशिकाओं जीवों के शरीर कृषी मशीन में जड़ पर्यावरण के कारण इस प्रकार के परिवर्तन कैसे समझें कि गर्म-गर्म जड़ता एवं श्रेष्ठतर स्वीतीकों का विकास होता रहे। अतः वे आधुनिक रूप से श्रेष्ठतर मशीन बन जावे ? अतः आधुनिक का एक स्वीतीक से दूसरी स्वीतीक में बदलते जाने का कथन ऐसा ही है जैसे कोई कड़े कि कसे कलम विशेष परिस्थिति पर प्रभावित : साक्षरता, कुदृष्ट, कार, रणगाड़ी में बदलता गया फिर वायुचालन भावका अकारण में उड़ने लगा। एक स्वीतीक का दूसरी स्वीतीक में परिवर्तन का अर्थ है- एक मशीन का स्वतः धीरे-धीरे दूसरी मशीन में परिवर्तन और यह परिवर्तन जड़त्व के विद्यमान से स्वतन्त्रता विशेष रखता है। पीढ़ियों का यह सिद्धान्त गलत नहीं, किन्तु एक स्वीतीक से दूसरी स्वीतीक का विकास-जो किसी ने देखा नहीं, केवल कल्पना की है-पी गलत हो सकता है। स्पष्ट है कि एक कोशिका प्रणाली का विभिन्न स्वीतीकों में क्रमशः स्वतः विकसित होते हुए अन्त में मनुष्य बनना समझ नहीं है, अतएव आधुनिक के इस कथन पर भी प्रश्नचिह्न को जाता है।

सारारूप रूप से आधुनिक का विकासवादात्मक प्रमाण प्रमाण ही है कि जिसने शरीर रचना रासायनिक प्रक्रियाओं से ही मनुष्यक अन्तः का ईश्वर के अस्तित्व को पुष्टि ठहरा नकार दिया और मनुष्य जाति और उसके ज्ञान-विज्ञान को गलत दिखा दे, निश्चित अन्धकार में डकेल दिया।

एक हान्य सैन्य मात का भी उत्पन्न इस जड़त्व के सिद्धान्त से कर लेते

हैं। इन्होंने अज्ञान के द्वारा किये कर्मों से बने कर्मकर्मों से स्वतः ही शरीर रचना मानी है, रचिषा ईश्वर का अस्तित्व नहीं माना। जैन मत के अनुसार वे कर्मकर्म सुष्ठु द्रव्य (अर्थात् पदार्थ) से बनते हैं तथा द्रव्य को अप्रकृतिक शरीर रचना कर लेते हैं। सुवि पाठकवृन्द। यहां जाए विचार करें कि वे कर्मकर्म जड़ पदार्थ से बने होते हैं। अतः इनमें जड़त्व गुण होता कि नहीं ? तब वे स्वतः शरीर कृषी उत्पन्न मशीन कैसे रच सकते हैं ? क्योंकि जड़ से स्वयं मशीन रचना का सामर्थ्य नहीं होता। फिर अज्ञानों के लिए प्रत्येक बार सौम्यकलामि भी कैसे रचे जा सकते हैं ? क्योंकि जड़ पदार्थों में जड़त्व होता है। अतएव ईश्वर एव आत्मा का अस्तित्व सिद्ध हो जाने से नैनादि नास्तिक मयों का खण्डन भी हो जाता है ?

अहो ! बार-बार विचार करने पर ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। जब सर्वव्यापक ईश्वर सृष्टि का रचना है और यहां उसी के निगम चलते हैं, किसी अन्य के नहीं, जो उसके नियमों को बान, उनके पालन में प्रवृत्त हो हम नहीं आलोच्यकार करते हैं ? मनमानी करके उसके कोष के भावन क्यो बन रहे हैं ? अगतिवि प्रत्येक, सब आलोचकों को बल प्रदान करें कि इससे इस अर्थात् वे हैं क्या बाहर के सभी देशों में वेदों की पुनः प्रविष्टा हो जायें सब स्वयं, स्वतः और विद्वानों, दीर्घायु व्यतीत करते हुए एक सूत्र में बने रहें।

अमृतसर में मकर संक्रान्ति पर्व

आर्य महिला परिषद्, अमृतसर की ओर से महर्षि दयानन्द धाम, बाजार इसी कोटड़ा तित सिंह, अमृतसर में मकर संक्रान्ति के उपलक्ष्य में दो दिवसीय महाप्रशस्ति और सामवेद के मंत्रों पर आधारित महाप्रशस्ति का आयोजन किया गया।

यज्ञ के ब्रह्मा पद को पठित सिकन्दर शास्त्री जी और श्रीमति शकुन्ताला जी ने सुशोभित किया। यज्ञ के समय महर्षि दयानन्द धाम का झाल खवाखब भरा हुआ था। वेद मंत्रों से सारा वातावरण मग्न हो गया। यज्ञ के उपरान्त श्री सिकन्दर शास्त्री जी, श्रीमति शकुन्ताला जी, बहिन आशा घौसी जी, बहिन अमिता जी के मुख भवनों ने सारे वातावरण को मग्नगुण कर दिया। इस समारोह में वेदमंत्र के भवनों को प्रकट करते हुए श्रीमति जगदीश आर्या,

अम्बिका पंजाब प्रांतीय आर्य महिला परिषद् ने कहा कि आज चित्र में नारी जाति, जिन महत्त्वपूर्ण पदों पर अवसीत है इस का साथ श्रेष्ठ अर्थ समाज के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी का भाव है। आज विश्व में नारी जाति प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी है अगर वास्तव में नारी जाति हो जाए तो सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है। यह जाति केवल वेद के अनुसार जीवन ज्ञान से सम्भव हो सकती है। श्रीमति जगदीश आर्या ने सभी नारी जाति को वेद पढ़ने और उस का अनुसरण करने की प्रेरणा दी। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये श्रीमति सुनीता पहाणन श्रीमति कुनी देवी, श्रीमति उषा बजाज, श्रीमति लता पहाणन श्रीमति बेबी ने विशेष सहयोग दिया।

दयानन्द माडल स्कूल रायकोट में गणतन्त्र दिवस मनाया गया

आर्य समाज रायकोट के भवन में दयानन्द माडल स्कूल चल रहा है। इस द्वारा 26 जनवरी 99 को गणतन्त्र दिवस मनाया गया। इसका उत्सव की रसम श्री राधकृष्ण विद्यालयी जी ए ने स्वागत की तथा आर्य सभा सुधिपान से श्रीमति उषा रानी प्रधान, श्री विजय कुमार सरीन महाप्रशस्ति, श्री रणवीर भाटिया कोषाध्यक्ष, श्री नरिन्द्र भल्ला जी भी मतवाल चन्द जी प्रधान तथा बाजार सुधिपान, श्री रमेश सूद जी दात बाजार सुधिपान, स्वामी सुपुन पति जी, श्रीमति जयक रानी, श्री ओम प्रकाश चोटी जी और रणभागा 20-25 आयु सत्यरूप इस प्रोग्राम पर पहुंचे।

बच्चों ने "पंजाब की धरोहर" एकांकी प्रस्तुत किया। इस में सरिता कनोबिया ने धरोहर या का अभिनय किया। विद्यार्थी सभी बच्चों ने बहुत प्रशंसा की और भी बहुत से नन्दे-मुन्दे बच्चों ने रंग रंग प्रोग्राम प्रस्तुत किया।

श्रीमति राजेश रानी जी प्रधान विद्या आर्य सभा सुधिपान ने बच्चों को अगवादी के साथ-साथ आर्य

समाज के नियमों पर चलने की प्रेरणा दी।

श्री अशोक कुमार कनोबिया महाप्रशस्ति आर्य समाज ने मंच सजावट किया।

श्री विजय कुमार सरीन, श्री रणवीर भाटिया, श्री मतवाल चन्द जी सुधिपान ने भी भाग्य दिया। श्री रमेश सूद ने स्वामी दयानन्द जी और स्वामी ब्रह्मानन्द जी के जन्म दिना और राहोदी दिवस की भी स्वीकार मानने को सरकार से अपील की। श्री जय प्रकाश जी ने भाषण के सुधिपान की जानकारी दी।

साला श्री भीमसेन प्रधान आर्य सत्यरूप रायकोट ने आर्य सभी श्री राधकृष्ण विद्यालयी जी ए विद्या आर्य सभा सुधिपान से श्रीमति राजेश रानी प्रधान श्री विजय कुमार सरीन महाप्रशस्ति श्री रणवीर भाटिया, श्री नरिन्द्र भल्ला श्री रमेश सूद, श्री मतवाल चन्द जी श्रीमति जयक रानी और स्वामी सुपुन पति और सभी सदस्यों को फूल माला पहना कर अभिवादन किया।

प्रधान, आर्य समाज रायकोट

भटिण्डवा में पारिवारिक सस्तर

श्री ओंकरकुमार सुपुन श्री अशोक कुमार अम्बिका (मैनेजर) अर्थात् जलबं सौनियर सैकन्दरी स्कूल भटिण्डा के 27वें जन्म दिवस पर पारिवारिक सत्यरूप का आयोजन किया गया। 140 सुनील कुमार शास्त्री पुत्रीतिष्ठ द्वारा

यज्ञ करवाया व उपदेश दिया गया। आर्य सूद सभी पारिवारिकबन्धों ने व अन्य लोगों ने फूलों की बाल करके आशीर्वाद दिया। श्री अशोक कुमार जी ने 100 रुपये अर्थ समाज को दान दिया।

-बाबूराय

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर सवाई के स्वर्ण जयन्ती तथा ऋषि बोधोत्सव पर

विश्व कल्याण गायत्री महा यज्ञ व राष्ट्रीय एकता महा सम्मेलन

8 फरवरी से 14 फरवरी 1999 तक

सम्मेलन के अध्यक्ष-स्वामी इन्द्रवेश जी व मुख्य विधि श्री स्वामी अम्बिदेश जी होंगे। ध्वजारोहण आर्य प्रतिनिधि सभा पणव के प्रधान श्री ठरबस ताल जी शर्मा करेंगे। इस अवसर पर-स्वामी सुनेधानन्द जी (चम्पा), स्वामी साधानन्द, पं० सायपाल पथिक, पं० ठरबस ताल ठर, श्री अ० के० के० पसरौय, वशिष्ठ उपप्रधान, श्री आशानन्द आर्य उपप्रधान व श्री अश्विनी कुमार शर्मा महामंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा पणव, श्री चन्द्रमोहन (वीर प्रताप), श्रीमति सुदर्शन चोपड़ा, श्रीमति स्वदेश चोपड़ा (पणव कैसरी), प्रि० अश्विनी कुमार शर्मा बोआबा कालेज), अ० राज अवतार, पं० धर्मदेव आर्य, श्री सुधीर शर्मा, श्री भगत चुन्नी ताल (एन० एल० ए०), श्री मोहिनन्द सिद्ध तथा अन्य गौरव गण पधार रहें हैं।

सभी आर्य बन्धुओं व बहनों से निवेदन है कि समय पर पधार कर जसब की शोभा बढ़ाए व धर्म लाभ लें।

सरदारी लाल आर्य रत्न

प्रधान

मनोहर लाल

कोषाध्यक्ष

राज कुमार

मंत्री

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी हरिद्वार

का

आंवला, केशर, चांदी व पिस्तायुक्त,

कोलस्ट्रोल रहित

विटामिन 'सी' से भरपूर

अमृत रसायन

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

की औषधियों का

सेवन करें ।



शास्त्रा कार्यालय :

६३, गली राजा केदारनाथ,

चावड़ी बाजार दिल्ली-११०००६

श्री अश्विनी कुमार जो सद्य एकपौकेट पणवनी सम्पादन द्वारा वष विन्द प्रिंटिंग प्रिन्सिपल केन्द्र केन्द्र से मुद्रित होकर अन्य नवीन कार्यलय गुरुकुल भवन चौक किशनपुरा कालम्बर से इसकी स्वामिनी अर्ध प्रतिनिधि सभा पणव के लिए प्रकाशित हुआ ।

रवि न १८ ४/३१

कृष्णवन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

दूरभाष २९२९२६

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का प्रमुख मानादिक पत्र

वर्ष ४८ अंक ४९ ३ का गुण सम्पत् २०५५ तदनुसार ४ अक्ष ९९९ नवान्दाब्द ४ वारिक शतक ० रुपय आनीदा र'य

गृहस्थाश्रम-वैदिक स्वर्ग का मूलाधार

ले श्री अश्विनीश्वर कुन्दा सुभाष दण्णार मन्वा (नेस्टर)

परमात्मा ने मनुष्य को जीवन जान के लिए सद को शिक्षा का प्रकाश उनका आमाओ म अधिक किया है। वह सभा मनुष्यो के लिए समान रूप से प्रभावकारी है। शम्क सिद्धान्तो के अनुसार ईश्वर प्रकृति तथा आत्मा ने ताने अनादि समाये हैं इनम स ईश्वर तथा आत्मा अमर तथा अपरिवर्तनशील है। कवल प्रकृति ही परिवर्तन शील है। सुष्टि के प्रारम्भ मे अन्धकार तल को 'रप्यति होने क उपरान्त आत्मा प्रकृति के बने हुए सरीरो से सज्जित होता है जिसस प्रकृति के मन हट शरार कार्य करना प्रारम्भ कर देत है। यहाँ स मनुष्य का यात्रा प्रारम्भ हा जाँहा है जो अन्धकार समाप्य जाने के उपरान्त भा प्राप्ति पर समाप्य हाती है।

मनुष्य को अपन लक्ष्य प्राप्ति क लिए जीवन जाना होता है। तथा जिसके लिए उसको कामनाय बनानी पचती है। इन कामनाओ को नियम मे बध्तर क लिए हमें ज्ञान का सहारा लान पडता है। तथा जान हा वह का दूसरा नाम है। वेद क अनुसार गृहस्थाश्रम चार्लय म सबसे बडा अश्रम है तथा इससे अनन्त का ठाक नाक पानन कर 'म गरी' पर हा स्वर्ग का अनुभव सकता है। इसके लिए 'म अ 'ये व अन्य तथ्यो क बारे म जान लान आवश्यक है।

(१) अश्रम वेल म मनुष्यो का जीवन सो यहाँ का माना है जिसका चार आश्रमो म विभक्त किया गया है। प्रत्येक आश्रम प'वीस पञ्चीस वर्ष का बनाया गया है।

सर्वप्रथम प'वीस वर्ष

- १ ब्रह्मचर्याश्रम
- २ द्वितीय प'वीस वर्ष गृहस्थाश्रम
- ३ तृतीय प'चास वर्ष वानप्रस्थाश्रम
- ४ चतुर्थ प'चास वर्ष मन्वासाश्रम

(२) गृहस्थाश्रम जिस प्रकार नदिया तथा बडे बडे नद तब तक प्रगम करत है जब तक समुद्र का प्रात नहीं हो जाते उसा प्रकार गृहस्थाश्रम रोचो तीनों आश्रमो का निर्वाह करता है तथा गृहस्थाश्रम के सहारे हा रोच तीनों आश्रमो स्थिर रहत है जिस प्रकार वायु के सहारे सषी प्राणी जीवित रहत है उसा प्रकार गृहस्थाश्रम रोच तीनों आश्रमो को दान तथा अनादि देकर अन्त्याश्रमो को स्थिर रखता है जिसके कारण गृहस्थाश्रम अष्टाश्रम है।

(३) गृहस्थाश्रम मे प्रवेश का समय गृहस्थाश्रम म प्रवेश करने के लिए सबसे अधिक आवश्यक है मनुष्य का ब्रह्मचर्य तथा वेद ज्ञान आयु क अनुसार कन्या का सोहनवर्ष म स'वीसवर्ष वर्ष तक पुरुष का प'चासवर्ष वर्ष स अष्टातलिसव वर्ष तक विवाह का समय उगम है। विवाह का आयु के अनुसार वद न तान धर्मो म विभक्त किया है।

(१) निकृष्ट यदि कन्या का आयु सोलह वर्ष को हो तथा पुरुष का आयु प'वीस वर्ष का 'गे और इत आयु मे द'गे का विवाह होता है तब निकृष्ट विवाह का श्रेणी मे आता है।

(२) सम्यक् जब कन्या का आयु अठारह वीस वर्ष को हो तथा पुरुष को आयु वीस वीसवर्ष वर्ष

का हो या चाल'स वर्ष का हा और इस आयु म दोनों का विवाह होता है ता वह मध्यम विवाह का श्रेणी म आता है।

(३) उत्तम जब चौबीस वर्ष का कन्या का विवाह अष्टातलिस वर्ष के पुरुष के साथ होता है तब वह उत्तम विवाह का श्रेणी मे आता है।

(४) गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने का अधिकार गृहस्थाश्रम मे प्रवेश का अधिकार केवल उन्ही को है जिन्होंने आचार्य कुल मे ब्रह्मचर्य पूर्ण रहकर चारो तानो न अथवा एक वेद का पूरा रूप स मनन कर लिया हा तथा सनिका ब्रह्मचर्य खरिडित न हुआ हा।

(५) गृहस्थाश्रम पर वर्णाश्रम का प्रभाव गृहस्थाश्रम मे प्रवेश स पूर्व हमे वर्णाश्रम पर भा ध्यान देना आवश्यक है। वद मनुष्यो को उनके गण कर्म तथा स्वभाव क अनुसार चार भागो मे विभक्त किया है।

क्षत्रिय ३ वैश्य ४ शूद्र

(१) ब्राह्मण ब्राह्मण का पन्ना पन्ना यज्ञ करता कन्या दान लय देता मुख्य रूप स ये पक्ष कम है। मन स किसी को कन्या का इ'न भा म करक ब्रह्म अर्घ्य मे कभा प्रवृत्त न हागा तथा अपना नागन्दित्री तथा कर्मन्दिवा का अन्त्यावरण स रोक कर धम मे 'सलाना आदि भा ब्राह्मण क कम है। 'स से बाहर के अग सखाचर्य से मन विद्या स जीवात्मा तथा जान से बुद्धि को पवित्र करन अनन बाहर के मलो को 'र कर शुद्ध रहना अपने भीतर के राग द्वेषादि को 'र कन्या किला की निन्दा न करना सुख दुख हानि लोभ कम अन्यान आदि मे दूह निरचन करक रहना बड को बड चतन का च' मानवा पुष्पि से लेके परमेश्वर तक पदार्थो को विवेको जानना प्रत्येक वद्व को यथा योग

उपयोग करना तथा वद स्वर मुक्ति पूर्व जन्य धम वद स'मग माना गला आ'य को मल क'य' य' भा ब्राह्मण क गुण है।

(२) क्षत्रिय वा न्या' स प्रजा का क्षा करता 'रन्ना का शिरस्कर तथा 'रन्ना का ना कर्मण इ सब प्रकार स सखवा पा'य करता है तथा विद्या का बुद्ध आ' सुपात्रा का सवा म धन आ'न' क' व्यय करता यज्ञ करता तथा कानन बड आदि शास्त्रो का पठन तथा पठन विषयो म न फलना तथा जित्पिण रहकर शतार तथा आमा म बनपान रहना संकडा संकडा म भा अकल बुद्ध करन म मय होना सदा तेजस्वी तथा दानना ररित रहना धेयवान 'गान गान और अस्मन्मि व्यवाहार तथा 'नब शास्त्रो मे चतुर 'गाना बुद्ध म बटल पठना कभी न भागना इस प्रकार लहना जिसस निरिक्त रूप स पिबन हा। पक्षपात ररित 'नाका सबक साथ यथायोग्य व्यवहार करना अपना को यह प्रसिदा का पूरा करना यह सब एक क्षत्रिय क गुण है।

(३) वैश्य तथा आार पशुओ का पालन तथा राका करना विद्या का बुद्धि करन कलात क लिए धनादि का व्यय करना यज्ञ करना बदादि शास्त्रो का पठन सब प्रकार क व्याचर करना एक सैकड पर पन्द्रह प्राशस्त वापक स अधिक व्यय न मन तथा अवल से दुयान धन न लाना तथा उल्ला करन यह वैश्य क गुण है।

(४) शूद्र जिसका का निन्द न करना किसी स'ईया करना भा अधिमान न करना यह कथ 'र को करन वापक इतक आगरन ब्राह्मण मन्त्रिय तथा कन्या 'म सहायता भा करनी चाहिए। ठका वर्णो का परिभाषा का ठाक प्रकार समझकर अनन अनन को मे पडा तथा पुरुष का विवाह करना चाहिए। (कृष्ण)

सम्पादकीय



आर्ट समाज को स्थापित हुए 124 वर्ष वरतीत हो चुके हैं। आगामी वर्ष सन् 2000 में इसे पूरे 125 वर्ष हो जायेंगे। आर्ट समाज की स्थापना चैप सुदि प्रतिपदा को सन् 1875 में महर्षि दयानन्द ने बम्बई में की थी। इस दिन हमारे सारे देश में नव सवत्सर नया वर्ष मनाया जाता है। महाराज दिव्यमाधिर से इसकी गणना आरम्भ हुई इसलिए इसे दिव्यमी सन् भी कहा जाता है। इस बार 18 मार्च को चैप सुदि प्रतिपदा है और इस दिन से सवत्सर 2056 आरम्भ हो रहा है। महर्षि दयानन्द ने इस दिन की महत्ता को देखते हुए आर्ट समाज की स्थापना के लिए इस दिन को चुना। जिस समय महर्षि ने इस समाज की स्थापना की थी उस समय आर्ट समाज का प्रचार व प्रसार करने वाले और वेदों का प्रचार करने वाले वह अकेले थे। उन्होंने सरदार प्रकाश सारदा धिपि और ब्रह्मचरि माध भूमिका और दूसरे कई गुरुओं की रचना की। इसके साथ ही उन्होंने वेदों का भाष्य करना आरम्भ कर दिया था। वह चाहते थे कि वे अपने जीवन काल में वेदों का भाष्य करके जोड़ परन्तु विद्या को वह स्वीकार न था अपनी उन्होंने उज्ज्वेद का भाष्य करके ब्रह्मवेद का भाष्य आरम्भ ही किया था कुछ ही मण्डलों का ब्रह्मवेद का भाष्य किया था कि उन्हें क्रूर विष दे दिया गया जिसके कारण वह दीपावली के दिन 1883 में अपने महेश्वर शरीर को छोड़ कर सदा के लिए चले गए।

महर्षि को इस बात का पता था कि जो लोग अक्षरणा ही उनके शत्रु बने बैठें हैं वह कभी भी उनके जीवन का अन्त कर सकते हैं क्योंकि उन्हें कुछ दुष्ट पुरुषों के लोग कई बार विष दे चुके थे। वह लोग दिखाए जाते थे इसलिए उन्होंने प्रत्येक बार अपने शरीर का बचाव कर लिया था परन्तु अन्तिम बार उन्हें विष के साथ साथ व्यर्थ भारीक पीस कर भी दे दिया गया था जिसे वह अपनी ज़ोली किया और आदि से उसे बाहर नहीं निकाल सके और उसने अन्तर्द्वारा में घुस कर शरीर को जलनी कर दिया था। यदि महर्षि ही कुछ समय और जीवित रह जाते तो आर्ट समाज का स्वरूप ही कुछ और होता। फिर भी महर्षि की मृत्यु के पश्चात् आर्ट समाज में पूर्ण जागृति आई। अनेकों नई श्राव समाजों का निर्माण हुआ और उनकी स्मृति में कई स्कूल कालेज खुले। आज सारे सप्ताह में आर्ट समाज तथा आर्ट समाज द्वारा संचालित स्कूल कालेजों का जलन बिठा हुआ है।

आर्ट समाज को स्थापित हुए 124 वर्ष वरतीत हो गए हैं। इस बार हम 124वां स्थापना दिवस मना रहे हैं। इस दिन को मनाते हुए आर्ट समाज को किस दिनांक पर मनाते हैं 124 वर्षों में क्या कुछ किया। आर्ट समाज हर क्षेत्र में अगे बढ़ा। महर्षि के काल में भारत देश परतका था उन्होंने स्वतन्त्रता का बीज बोया था और आर्ट समाजियों ने उसे अपने सूल पे सीधा था उसने एक वृक्ष का रूप धारण किया जिसके फलस्वरूप 16 अगस्त सन् 1947 को हमारा देश आजाद हो गया।

आर्ट समाज ने सभी शिक्षा के लिए मथन कार्य किया क्योंकि उस काल में शिक्षा को शिक्षा देने का कोई उपाय ही विरोध कर रहे थे। आर्ट समाज ने कलकत्ता पाठशाला स्कोल कर सभी शिक्षा आरम्भ कर दी और उससे बाद कई स्कूल व कालेज स्कोल दिए। अब सनातन का जैसी सन्धार जो कभी सभी शिक्षा का विरोध करती थी वह भी कई स्कूल कालेज सभी शिक्षा के लिए खला रही है।

वर्ष 18 (नव संवत्) मंगलमय हो

18 मार्च को चैप सुदि प्रतिपदा से नव वर्ष नव सवत्सर 2056 आरम्भ हो रहा है। इस अवसर पर हम आर्ट समाज के सभी शाखों के पाठक महामुधायो तथा सभी आर्ट समाजों व शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों कार्यकर्ताओं, प्रिंसिपल्सों आध्यापकों अध्यापकों व सभी आर्ट चम्पुओं व बहनों को हार्दिक बधाई देते हैं और प्रार्थना से प्रार्थना करते हैं यह वर्ष सब के लिए सौभाग्यमय हो।

—**अश्विनी कुमार शर्मा** एडवोकेट
समा महामुधायी

—**अश्विनी कुमार शर्मा** एडवोकेट
समा महामुधायी

अचूतोंद्वारा के लिए आर्ट समाज ने आन्दोलन चलाया और वह बड़ा सफल रहा अब लगभग वह लानत समाज में समाप्त हो गई है। संस्कार ने भी इसे अपना पिता है।

आर्ट समाज ने जब विधवा विवाह के पक्ष में आवाज उठाई तो इस का प्रारम्भ ने बड़ा विरोध हुआ परन्तु बाद में जब लोग ने देखा कि सस्ते विधवाओं की दशा सुधारी है और अपनी होने से बच गई है तो बहुत से लोगों ने इसका समर्थन किया। कई ईसाई और मुसलमान अपना कुछका चला कर कई विधवाओं को मुसलमान बना लेते थे। आर्ट समाज ने उस विधवा विवाह आरम्भ कर दिए तो उनकी सब जोजान धरी गयी रह गई। आर्ट समाज ने अजोशों की ओर ध्यान दिया उन्हें भी मुसलमान अपना रहे थे इस लिए आर्ट समाज ने अजोशाला स्कोल कर अजोशों को विधवा बनने से बचा लिया।

आर्ट समाज ने अनाथान्त कार्य किए और सारे सप्ताह को एक नई दिशा दी। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आर्ट समाज ने प्रभावित किया। आर्ट समाज का कार्य स्वर्ण अमरी ने लिखने योग्य है। आर्ट समाज वह सस्था है जिसने मानव मात्र का कल्याण किया है। क्योंकि जाति पाति पुआ पूत मजहब व सम्प्रदाय की भावना से व आडम्बरी से आर्ट प्रोत समाज की आर्ट समाज ने एक नई दिशा दी और अनेकता को दूर करके एकता प्रदान की।

18 मार्च को सभी आर्ट समाजों आर्ट समाज स्थापना दिवस मनाते हुए आर्ट समाज के पिछले 124 वर्ष के कार्य पर दृष्टिपात करें व जनता को बताएं कि आर्ट समाज ने इन 124 वर्षों में क्या किया। आर्ट समाज के जन्म की 125वीं जयन्ती मनावने की तैयारी करते हुए सभी आर्ट बन्धु आर्ट समाज के कार्य का लेखा जोखा करें। आज हम आर्ट समाज का चित्तान कार्य कर रहे हैं। चित्तानी उन्नति कर रहे यदि हम देखें कि इस समय आर्ट समाज में कुछ स्थिरता आ गई तो हम निश्चय करें कि आगामी इस एक वर्ष में हम इस स्थिरता को दूर करके आर्ट समाज में फिर जागृति पैदा करेंगे।

—**अश्विनी कुमार शर्मा** एडवोकेट
समा महामुधायी

दासवीर श्री राजेश्वर जी का विधन

कवि मुकुन्द लालदास लखनौ वर्ष 1946-47-48 लखनौ का- पूर्व विधे

श्री राजेश्वर जी का 83 वर्ष की आयु में 11 2 99 का निधन हो गया। दिनांक 24 1 99 का उनके लक्षण के अनुसार का लिए सर गगन राम अस्पताल में भर्ती कराया गया था।

श्री राजेश्वर जी का जन्म 25 फरवरी 1916 का लाला भगवान दास जा और सीधामयशालिनी श्रमता साजबन्ती के घर पर हुआ। इनका परिवार अहमद (एकिलास) स 1928 में गिल्ला आ गया था। राजेश्वर जी बचपन से ही प्रभु भक्ति और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। राजेश्वर जी ने बचपन में अनक आर्थिक कठिनाईया का सामना किया। राजेश्वर जी ने ट्यूशन खाकर 1936 में इन्दौर विश्वविद्यालय में हिन्दू कानून से बी.एस.सी. का परीक्षा उत्तीर्ण की और कालेज में सर्वप्रथम आये।

1938 में पब्लिक सर्विस कमिशन का परीक्षा देकर Director of Social and Disposal का पद प्राप्त में नौकरी करने लगे।

सन् 944 में राजेश्वर जी सत रामकृष्ण डालमिया जी की सर्विस में आ गए। सत हालमिया जी इनके काम से इतन प्रभावित हुए कि उन्होंने राजेश्वर जी को 13 कम्पनिया का निदेशक नियुक्त कर दिया। राजेश्वर जी 1980 तक सत रामकृष्ण जी का काम से जुड़े रहे।

सन् 1931 में आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान साक्षात् महाराज श्री रामचन्द्र दहलवी जी के भाषण एवं साक्षात्कृत सुन कर राजेश्वर जी बहुत प्रभावित हुए। उसी मन्त्रकर्म नीति के आधार पर राजेश्वर जी छुआछूत 'नम्र' जात प्रभेदा हिन्दू समाज में समाजशास्त्र लाना धर्मान्तरण का रास्ता एवं परावर्तन (रुद्धि) के प्रकार व प्रसार में निरन्तर जुट रहे। 'नम्र' अन्तर्जातीय विवाहों को प्रसारण करने के लिए आर्य समाज 'नम्र'का म अन्तर्जातीय विवाह 'वधवा' योजना है 'नम्र' आर्य प्रतिदिन 2 'नम्र'तापन प्रचार होता है। राजेश्वर जी ने अपने माता पिता का स्मृति का स्थायी रखने के लिए साप्ताहिक सभा में उनके नाम स्थापना भगवान दास रुद्धि स्वरूपाधि 1992 में कुछ लक्षण के लिए दफन स्थापित का है। इसके रूप में रुद्धि प्रकाश का मान धन दिया

जाता है। गत लगभग 3 वर्ष तक उन्होंने सभा कार्यालय में अनेकों में पर व्यवहार हेतु एक कनधा भी अपने ठाउँ से दिया हुआ था। आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्सवों में ब्रह्मालुओं की घंटी बूझी रुद्धि उपस्थिति से भी वे व्यकुल हो जाते थे। उन्होंने आर्य समाजों में रौनक लाने के लिए दिल्ली प्रदेश में गुरुकुल कागड़ी के स्नातक एक योग प्रशिक्षक की नियुक्ति की। बूझी है जिसका मान धन वह अपने ट्रस्ट की ओर से दत्ते थे। 1970 में राजेश्वर जी के किशोरावयु पुत्र सुशील कुमार की एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई। सुशील की स्मृति राजेश्वर जी ने आर्य समाज सार्वभौमिक एक्स्टेंशन 1 में व्यायामशाला स्थापित का बाद में आर्य समाज द्वारा शिष्ट विद्यालय कोलने के कारण व्यायामशाला को कोटला ग्राम में स्थानान्तरित कर दिया गया। एवं अपने प्रिय पुत्र की याद में अपने समाज साव्य एक्स्टेंशन 1 को अपनी सागत से एक विद्यालय कर बनवा कर दिया। वे प्रचार कार्य को आर्य समाज की रीढ़ मानते थे। इसलिये आर्य समाज के प्रचारकों एवं उपदेशकों को सहायक बन मन धन से करते को तत्पर रहते थे। उपदेशकों के पुत्र पुत्रियों के विवाह अथवा पिकनिका इत्यादि के लिए वे सदैव दायरा से अधिक सहायता करते थे। रुद्धिकृत बन्धुओं के पुनर्वास विवाह अथवा रोजगार इत्यादि के लिए वे परंपरा प्रयास करते थे। पर साधु/परावर्तन (रुद्धि) को अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे। रुद्धि अन्तर्जातीय को हिन्दू 'नम्र' आन्दोलन बनाने के लिए वे विश्व हिन्दू परिषद से जुड़े थे। 1972 से 1983 तक इन्द्रप्रस्थ विधि पत्र के अध्यक्ष रहे। वे 1971 से विश्व हिन्दू परिषद को ट्रस्टी बने। आ रहे थे। वे 1981 से दक्षिण दिल्ली के विधान सभा चालक थे। उनके सार्व प्रयास से 1992 में विधि पत्र में रुद्धि कार्य को एक अग्रगण्य रूप में अपना लिया। एवं इस प्रक्रम के वे अखिल भारतीय अध्यक्ष बना लिये गये। सन् 1996 में आर्य एस से भी रुद्धि कार्य को अपना लिया। इससे वे

मोक्षा में महर्षि दयानन्द बोध दिवस

आर्य समाज सोना के सत्सवगण में आर्य गुरुजी सी सी स्कूल में अपने प्राणम से दि 15 2 99 सोमवार को प्रातः 8 से 10 30 बजे तक महर्षि दयानन्द बोध दिवस बड़े ही हर्षोल्लास एवं सगतोह पूर्व मनाया। जिसमें प्रातः 8 से 9 बजे तक बृहद यज्ञ किया गया परन्तु आर्य शिक्षण सत्सवों के छात्रों ने यज्ञ गीत कवित्त एवं भाषणों द्वारा महर्षि दयानन्द के जीवन एवं कार्य को जन मानस के समक्ष बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। पूजनिय ब्रह्मचारी राम प्रकाश जी आर्य समाज धर्मपुर हिमाचल प्रदेश इस सभा के अध्यक्ष के रूप में अलङ्कृत थे। इस अवसर पर आर्य शिक्षण सत्सवों के सदस्यगण एवं सभी शिक्षा संस्था तथा विद्यार्थीगण सम्मिलित हुए।

विद्यालय प्रबन्धक समिति के प्रधान श्रीमती इन्दुप्री जी ने अमूल्य समय देने के लिए पूजनिय व रामप्रकाश जी का हार्दिक स्वागत एवं धन्यवाद किया। साथ ही सभी शिक्षण संस्थाओं को आभार व्यक्त किया। कार्यक्रमों से प्रत्यक्ष हार्दिक

अनुभूति प्राप्त हुए उनकी आशाओं में प्रसन्नता के अनुभूति बने लगे और वे कहने लगे कि महर्षि दयानन्द की विचारधारा की विधि पत्र और आर एस ने अपना लिया है। मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा लक्ष्य प्राप्त हो गया।

सन् 1932 में 'नम्र' श्री राजेश्वर जी की एस सी प्रथम वर्ष के विद्यार्थी थे। उन्होंने एक मुस्लिम मोक्ष को रुद्धि कर हिन्दू बनाने बाद में माली हालत अच्छी होने पर रुद्धि कार्य के लिए परंपरा प्रचारक रह लिये उनके सहयोग से हजारों मुस्लिम व ईसावीय हिन्दू धर्म की मूलधारा में सम्मिलित किया। उनका कहना था कि कोई भी व्यक्ति रुद्धि कार्य कर सकता है। केवल इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। उन्होंने एक पुस्तक 'परवर्तन क्यों और कैसे?' की लिखी है। जो रुद्धि कार्य करने वालों के लिए काफी उपयोगी है। उन्होंने 1991 में चन्द्रकांत राजेश्वर धर्मार्थ ट्रस्ट बनाया। अपने मकान का एक हिस्सा बेच कर तमाम राशि ट्रस्ट में दे दी जिसका उपयोग शिक्षा दयानन्द की विचारधारा के प्रचार प्रसार के लिए किया जायेगा।

उत्सवधर्षण के लिए 600 रु प्रदान किया।

ब्रह्मचारी श्री मोक्षराज मनीषिया जी ने समाजसेवा के स्मरण एवं धन्यवाद करते हुए विद्यालय के पुनर्निर्माण एवं हस्तक्षेप देने वाले सगुरु दान दाताओं के गम्भीर का उत्प्रेक्षा करता हुए उनकी भूमि भूमि प्रशंसा एवं हार्दिक धन्यवाद किया।

आर्य समाज के सार्वभौमिक शा के पुनर्निर्माण के लक्ष्य के जीवन निर्माण के लिए सुन्दर विचार दफन करने प्रेरित किया।

सभाध्यक्ष पूजनिय व राम प्रकाश जी ने छात्रों को शिक्षा के बोध को लक्ष्य बनाकर निज जीवन उत्प्रेक्षा को सफल एवं सार्थक बनाने की प्रेरणा दी। जो की वह कर सकते हैं। कार्यक्रम में एक प्रश्न करने वाले सभी छात्रों को पुस्तक भी प्रदान किया गया।

प्रतिपद श्रीमती नेता अग्रवाल जी ने पूजनिय व जी एवं विद्यालय प्रबन्धक समिति तथा आर्य समाज जनों का पूर्ण सहायक पर हार्दिक धन्यवाद किया। अन्त में शान्ति पाठ के परवात सभा में प्रसन्न एवं जलपान प्रदान किया।

दि 12 2 99 को उनके जीवन यात्रा में जन समूह उद्घाटन पड़ा। शय यात्रा में विभिन्न संस्थाओं द्वारा ब्रह्मचारी अर्पित का गुरु उनका धर्मार्थ शरण का पूर्ण नैतिक व दयानन्द वाद लोहा रोह निगमनुरीन में अग्रणी को सम्मिलित किया गया।

दि 15 2 99 को आर्य समाज प्रदा कैलाश में साथ 5 बर ब्रह्मचारी सभा का आयोजन किया गया जिसमें विधि पत्र का उपस्थिति आचार्य निरिदरान किशोरी जी सत्सवगणन बसल। श्री आर्य पुराणी श्री विद्या प्रसाद मन्त्र श्रीमती सन्तुष्टता आर्या 'ना पूर्ण मध्याह्न' ने अपने विचार रखे एवं श्री हरबल सतन काहला का न कविता पढ़ा किया। मच का सफल सत्सवगण श्री स्वदेश पात्र गुणा जी ने किया। श्री राजेश्वर का अपने पीछे धर्म एवं एक पुत्र एवं एक पुत्री छोड़ गये हैं।

उनका धर्म पत्नी श्रीमती चन्द्रकांत पुत्र श्री राम कुमार आर्य पुत्रवयु श्रीमती यम आर्या पुत्रा ललितानिष्ठान एवं दायक शर्मा निरिदरान ने उनके पिता का सग बहान का सफल प्रबन्ध किया।

गुरुकुल, शिक्षा और प्रणाली

ने अ. केशव गुरुकुल स्कूलों के अन्तर्गत शिक्षण केन्द्रों का स्वरूप

प्रचीन काल से ही भारत सम्पूर्ण विश्व के लिए ज्ञान का अगार स्रोत रहा है इसकी महत्ता परम्परा है। वर्गों पुरातन पुनीत परम्पराओं में से एक है गुरुकुल परम्परा। गुरुकुल एक ऐसा कुल जिसमें गुरु शिष्य एक साथ रहकर गहन तप का चिन्ता किया करते हैं। सारा सारा को अध्यापन व तान्त्रिक का शास्त्र उपदेश देने वाले उपनिषद् इन गुरुकुलों की ही देन है। जा उपनिषद् अपनी विपुल तान्त्रिक सामग्री से इन गुरुकुलों का परिचय स्वयं दे रहे हैं। जहाँ अध्यापन गुरु अध्याप आचार्य अथवा शिष्या के प्रति अपने उपदेशान्वित का निर्वाह किया करते थे। उन अध्यापनों के लिए शिक्षक व शिष्याक जैसे निरन्तर मनुष्यिक अर्थ प्राप्त करने का प्रयाग करना अपनी भ्रातृता को ही प्रकट करना है।

गुरु तब सर्वज्ञ शास्त्र अर्थ है भरा वह गुरुता या भ्रातृता भरी। तत्काल तेजस्वी शरीर मात्रा से नहीं आगुन कई अन्य कारणों से हुआ करता है और यह है उसका एक साथ अधि गुरु और आचार्य होता।

स्वयं गुरु व तत्त्व का द्रष्टा होता है। अध्यापन है अध्यापन मन्त्रद्रष्टा साक्षात्कृत धर्मांग अध्यापक भूषण (मिलक 2.11 व

20) व अपने विशिष्ट विषय के ज्ञान सागर के समुद्र रश्मि पूर्ण विद्वान् हुआ करते हैं। जा निष्कारण पूर्ण वास्तव्य भाव से अपने सम्पूर्ण तत्त्व ज्ञान का अपने समिप्यानि विद्यार्थी शिष्य में अवधारित करके इसका त्वकालि रूप में दखना चाहते हैं। एक चरित का उस शिष्य से हा शास्त्राध्य का अवसर प्राप्त हो तो उससे परावर्तित होने में ही अपने को धन्य समझते हैं।

मातृमान् विद्वान् आचार्यवान् गुरुता वर माता पिता के परचाय। इस स्थानी संसार में केवल गुरु हा तो है। जा अपने शिष्य का प्रतिदिन एक ईश्वरभाव से प्रशिक्षण नहीं हाता अगुन अपने से आगे बढ़ता गुरु न दखकर और वा प्रसन्नता तथा गोचन का अनुभव करता है। इन तीन के आगुन कई एता विचारत इन्द्र उदारवर्च मानव इस धरा पर दिखाने नहा पसत। अतः अध्यापन शिष्य से हात जाने में भी जीत के आनन्द का अनुभव यही तो है। इनका गुरुत्व।

आचार्य और शिक्षा प्रणाली ये दोनों एक दूसरे से अनुपपन्न हैं। आचार्य गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अन्तर्ग है और शिष्य उसका शरीर है। आचार्य ही शिष्य में आत्मा बनकर अधिष्ठित होता है जिससे वह अज्ञानाच्छन्न शिष्य वस्तुतः चेतनावान् हो उठता है तथा ज्ञान के प्रकाश से भर जाता है। आचार्य उल्लेख अपनी कुल रूपी गर्भ गृहा में रहता है उसे सम्मार्जित कर द्विजत्व प्रदान करता है।

आचार्य उपनयनमार्गो ब्रह्मचारिण कृणुते धर्मयन्त्र (अर्थ 11.5.3)

जन्मना आचरते शूद्र सत्काराद् द्विज उच्यते (वृ० उ अत्रि स 142)

द्विज का नर्ण है दूसा जन्म गुरुपु के बिना जन्म सम्भव नहीं। अतः ही ब्रह्मचारी शिष्य के सामने अपने आचार्यों का जो रूप प्रकट होता है वह है गुरुपु रूप आचार्यों गुरुपु (अर्थ 11.5.14) आचार्य का अनुशासन ही गुरुपु रूप है। वह अनुशासन ही उसका जन्म जन्मनाम्न से सचित कुलस्वरूप रूपी नीच को अङ्कुरित होने का अवसर मिलने नहीं देता। फलतः जिस धरती में पड़ा हुआ नीच उचित वातावरण छाद पाणी के बिना धरती के गर्भ में ही ज्वरित हो जाता है ठीक वैसे ही ब्रह्मचारी शिष्य के ये जन्म जन्मनाम्न से सचित कुलस्वरूप रूपी आचार्य का अनुशासन रूपा भट्टी में पड़कर दग्ध हो जाता है और जला हुआ नीच कथा अङ्कुरित नहीं होता यहाँ आचार्य का गुरुपु रूप है। इसी के द्वारा ब्रह्मचारी शिष्य का आचार्य की कुल रूपी गर्भ गृहा से दूसा जन्म होता है। श्रेष्ठ सत्कारों से समन्वित जन्म इसा को वदरि शास्त्र द्विजत्व में प्रवृत्त का नाम देते हैं।

शिक्षा देने का विधि क्या हो? इसका सफा भा आचार्य सत्य में ही मिलता है। आचार्य यही है जो अपने आचरण से शिष्या में अवधारित हो जाए आचार्य अपने शिष्य पर जा शासन करना है उसे शासन न कह कर

अनुशासन कहा जाता है। अनु एक उपसर्ग है जिसका अर्थ है परचाय। दूसरे शब्दों में अन्तः शासन के परचाय जिसका आरम्भ होता है उसका नाम अनुशासन है। जिस आचार्य व राजा का अर्थ है आण पर शासन नहीं जो स्वयं विषयो की बागदोर से नहीं बचा वह अपने शिष्यों अथवा पुत्रों पर क्या अनुशासन करेगा? उसे शासन हो कहा जा सकता है परन्तु अनुशासन कदापि नहीं अनुशासन तो आत्म शास्त्रि आचार्य से शिष्य में वस ही अवधारित होता है जिस दर्पण में प्रतिछिन्ना उसमें दग्ध प्रयाग की आवश्यकता नहीं होती शासन दग्ध प्रयोग के बिना कथा हो नहीं सकता शासन बलाए किया जाता है और अनुशासन सहज भाव से। शासन में शास्त्रक के प्रति प्राय विद्रोह तथा दुर्भाव के स्वर गृहता है और अनुशासन में सौहार्द तथा सद्भावना के स्वर शासन असाधित भय और दुःख का विस्तार करना है तथा अनुशासन शास्त्रि निर्भरता और जन्मद का अन्त शासन और अनुशासन के इस गृह रहस्य को समझते हुए आचार्य अपने आचरण से ही शिष्यों में शिक्षा का अध्यापन किया करता है यही उसका आचार्यत्व है।

आचार्य कर्मम् १ आचार्य आचार्य प्राण्यति अधिनोति अयात् आचिनोति बुद्धिमति वा

(निर 1.2.3) शिक्षार्थी शिष्य कैसा हो? जो गुरु और शास्त्र दोनों के प्रातः श्रद्धावन्त हो समर्पित हा तत्त्वज्ञान का उत्कट अभिलाषा रखता हो तथा पूर्ण प्रता हा क्याकि श्रीमद् भगवद् गीता 4.39) का अनुशासन इन तान्त्रों में स किसी एक का भाव अभाव हो तो शिष्य तत्त्वज्ञान को उपलब्ध नहीं हाता।

ब्रह्मवान् सत्य ज्ञान तत्पर संपन्नश्चि

फिर एसा शिष्य अपने अधिष्ठित गुरुत्व से वद वद करण व्यापार्य दर्शन अनुपूर्व धनुर्धर अर्थ रत्न समाग शास्त्र आगुनिकी प्रीतिगोष्ठा कोई भा विद्या क्यों न सीखे। वह ज्ञान के बिना क्षेत्र में भी उतर पायाता न सदह उस विद्या विशेष में वह अपने अन्दर इतनी योग्यता समझि कर लेता कि वह न केवल उस विद्या के सर्वोच्च शिक्षण पर पहुच जायगा बल्कि उस विद्या को वह

अपने योगदान से और वा उत्र उठा सकेगा।

ऐसा विद्यार्थी शिष्य अपने अधिष्ठित आचार्यों से कैसी शिक्षा प्राप्त करेगा? वह शिक्षा हाता जिससे पूर्ण गुरुपु का निर्माण हात तक जा अध्यापन विज्ञान तथा नीतिक जगत् से सम्बन्ध रखन वाला विद्यार्थी का गुरु तत्त्वों का एक साथ आत्मसाध कर सके ऐसी शिक्षा जिससे मानवता का पूर्ण विकास हो जिससे इहलोक और परलोक दोनों सिद्ध हा।

सामर्थ्य शब्दों में मानव जन्म श्रेष्ठ जन्म मानव शिष्या का च्य वैदिक सिद्धान्तों को जहा मनु रूप लिया जाता हा उस सम्मान का नाम गुरुकुल है। इस शिक्षा के द्वारा इस सिद्धान्त का साकार किया जाता हो। उसका नाम गुरुकुल शिक्षा है अपने कुलरूपा गण में रख कर आचार्य आम शासन से अनुशासन पुषक शिष्य का ना शिकित करता है इसा का नाम गुरुकुल शिक्षा आगुन।

वर्तमान युग में माध्याम स अवधारित पुण्यात्मक महर्षि दयानन्द सरस्वती न सम्पूर्ण मानव नातिक के कल्याण के लक्ष्य इसा प्रस्तात गुरान गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को साकार करने का स्वप्न लिया वा। इसका सारी वायना उद्धारण अनन अन्तः प्रायः सर्वत्र प्रकाश में उद्धारयित का है इसा स्वप्न का पत्राज का पामन धरता पर जन्म नन वाला त्वनत्र योद्धा मर्षि के अनन्य अनुयाय महात्म्य गुरानाग स्थाना ब्रह्मनन्द) न गण का पत्राज तत प कागडा ग्राम पुष म म इन्द्रिय म गुरुकुल कागर्ण का नाम त अपने आचार्यत्व म साकार जन्त का अर्पण सान्त गुरान् म ख

कि उनके परम्परा गुरुकुल का सख्य म ता अभिधान् हुइ है नकिता उपयुक्त स्थान तागारण आचार्यों तथा ब्रह्मविद श्र दानान विद्यार्थी शिष्या का अभाव म गुरुकुली शिक्षा प्रणाली स्वयं म पूर्ण होते हुए भी अगुन सिद्ध हा रही है फिर भी म इतना कहन का सहज अवश्य करण कि इस स्वर्ण केन्द्रित कथा अर्थ प्राप्त युग में ये गुरुकुल मानवनिर्माण की प्रक्रिया में भी का कार्य कर पा रह है उसे सम्य तत धन के सन्तुषण हा मानव चाहिए।

वृद्धि यज्ञ एक चिन्तन

ले० मदनमोहन प्रेम प्रकाश जी बालप्रबन्धी पुरी

वेद सब साथ विद्याओं का पुस्तक होने से वेद 'मगो विद्या' 'भीतिक विद्या' और 'आध्यात्मिक विद्या' का अन्धाष्ट्र त्रोट महाहा दुःख 'समुद्र' है जो 'यज्ञ' रूप में है। 'यज्ञ' का अर्थ होता है सलाह चिन्तन। तो आओ हम विचारों कि 'वृद्धि यज्ञ' के विषय में वेद इसे क्या-क्या संकेत देता है। जैसे 'निकामे निकामे न पूर्वयो वसतु' यजु 22.22। अर्थात् जब-जब हम कामना करते तब तब वषां जो ओग यजु 36.10 में भी कहा गया है 'पूर्वयो अग्नि वसतु' पूर्वयो दो वषां को, और 'पूर्वयो' कैसे बने 'यज्ञाद् भवति पूर्वयो' गीता 3.14। पूर्वयो उन बादलों, मेघों का नाम है जो वषां से गूथी को हरा धरा और जंगल में गूथल कर देते हैं। यह मेघ कैसे बनाने 'यज्ञ' से। जैसे पृथ्वी पर जल प्राप्त करने के लिए कुण्ड छोड़े जाते हैं 'छो' से जल प्राप्त करने के लिए 'छो' जो जल का विशाल समुद्र है 'घोः समुद्र कम ततः' यजु 23.48। अर्थात् आकाश जो समुद्र से भी बड़ा समुद्र है, यह आकाश का 'जल भण्डार' (Water Box) है। 'पूर्वयो' मेघ पानी लाती हैं और जब जल को नीचे जल का माधन 'यज्ञ' है। 'यज्ञो ते छो' यजु 1.25। हमारे वैज्ञानिक अध्वरियों की गम्यता है कि यज्ञान में जो सात्त्विक पौष्टिक और सुगन्धित पदार्थ खाते खाते हैं उस अग्नि लगभग 'हजारों गुणा' करके, परमाणु रूप में वायु के साथ धुरीते होते हैं और जब वषां होती है तो इन सात्त्विक पौष्टिक और सुगन्धित पदार्थों वषां में जल में मिश्रित हो जाते हैं फिर वहा सात्त्विक, पौष्टिक

और सुगन्धित अन्न पैदा होता है, फिर 'जैसा खाओ अनन्, वैसा होगा मन' वाली कहावत चरित्रार्थ हो जाती है। अतः हमारे अध्वर्य 'यज्ञ' द्वारा हुई 'वषां' को विशेष महत्त्व देते हैं, देते थे। यज्ञानि का साथ कचे स्वर से वेद मनो के गान से 'वषांहु यजु 24.38' वषां को प्रेरित किया जा सकता है, क्योंकि शब्द स्वर एव उन्मत्त का सीधा प्रभाव वातावरण पर पड़ता है। पूर्वयो बादल बनाने के लिए विशेष जल की बुटियों विशेष प्रकार की समिपजने तथा विशेष प्रकार के पदार्थों को यज्ञान में आहुत करके पृथ्वी मण्डल एव अन्तरिक्ष मण्डल में भेद कर, उस जल को जो भागवान का जल भण्डार है, विलास जाता है और वहां विशाल पत्र होने से गर्मी बढ जाती है, जल बहुत गर्मी बढ जाती है, लोग कहते हैं अब वषां होगी। जिसे यजुर्वेद 1.25 में कहा गया है 'वषांते ते छो'।

नोट—वर्षामन समय में, पौने चाले जल की बहुत ही कमी अनुभव की जा रही है, यदि ऐसी ही अवस्था रही तो 50 वर्ष में जल संकट बहुत ही भयंकर रूप धारण कर लेगा। लोग यज्ञियमन-2 कह उठेंगे अतः अभी से वैज्ञानिकों को चाहिए कि अध्वर्यों को 'विसर्प' से लाभ उठा कर 'यज्ञ' द्वारा 'घोः' रूपी विशाल समुद्र से जल लेने की 'योग्यता' को क्रियात्मिक रूप दे, जो मानसिक को सच्ची सेवा होगी।

बहिष्ठा से टंकारा

आर्य समाय बहिष्ठा को कार्यकारिणी की बैठक दिन्याक 21.11.98 में हुए निर्णय अनुसार आर्य समाय बहिष्ठा के प्रधान श्री प्रेम भाटिल जो सार्वजनिक मंत्री भी बिहारो लाल जो मन्त्रालय सार्वजनिक आर्य मन्त्रालय हाइ स्कूल के प्रधान श्री पी डी योगेश जो सार्वजनिक एवं क्रीडा विभाग निर्देशन अधिकाधिक के समक्षो पर श्री भाटिल दसमन्त्र दृष्ट दृष्टा में सम्मिलित हुए।

अधि जन्म भूमि देश में भण्य रूप से आयोजित किया गया यह समारोह आर्य समाय बहिष्ठा के पदाधिकारी एवं सदस्यों के अधिस्था भारतवर्ष के पिन् 2 प्रांतो से आते

आर्यवर्षो ने श्रद्धापूर्वक मनाया। विशेषकर पञ्जाब से श्री सत्यनन्द श्री मुवाल मलिक हीरो सार्वजनिक अधिकारि साधियाना अपने परिचार सहायि लम्पिलियन हुए। यजुर्वेद धारणय यज्ञ प्राप्त, स्वयं दैनिक होख रहा परमन्त्र अरुको की अध्वर्य बढी सुन्दरी थी। वातावरण शांतमन्य, यन्मन्य हो गया।

इस समारोह में पद्यो विद्यान्त्रो सार्वजनिको द्वारा सम्य-2 पर मधुर प्रवचन होते रहे। इन प्रवचनों को सुनने हेतु जनसमुद्र उमडल रहा। दृष्टा दृष्ट के बालप्रबन्धी दृष्ट को गुं लेया, बालप्रबन्धी दृष्ट-भूष देखाते की बन्ती थी। दृष्टा

मन्सा परिक्रमा मन्त्र :-प्रार्थना के रूप में

ने. रिशोरी लाल प्रेम बालु विद्या विद्यालय दि. 17. 1982

जो प्राची विद्यामन्त्रविद्यो रचितोऽस्तिविद्या इत्यत्र मन्त्र का शेष पाग अक्षिप मंत्र के साथ।

हे अग्ने स्वराज, ज्ञान स्वराज, प्रकाश स्वराज, ज्योति स्वराज, परमेस्वर आप हमारे पूर्व दिशा के अधिपति हैं। आप हमारी हर प्रकार के बन्धनों से, कष्ट कष्टों से, भयान अज्ञान से, पूर्व की किरणों, पूर्व के प्रकाश तथा अधिपति विद्यान्त्रो के द्वारा रक्षा करते हैं।

दक्षिण दिगिन्धोऽधिपति सितरश्मिवाणी रक्षिता सितर श्रवण ॥

हे परम ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्य के ठेका राजाधिपति इन्द्र प्रभु परमात्मन् आप हमारे दक्षिण दिशा के अधिपति हैं। आप हमारी देहे स्वभाव वाले मनुष्यों तथा पशु, पक्षी कौट पतंग आदि से सितर लोको के द्वारा, तथा अधिपति विद्यान्त्रो के द्वारा रक्षा करते हैं।

जो प्रतीची विद्यामन्त्रोऽधिपतिः पुनश्च रक्षितात्मनिष्वपि ॥

हे मर्त्योन्म, परम सवित्र, बल के भण्डार, धरने योग्य, वहन देव अन्तरीक्ष, आप हमारे पश्चिम दिशा के अधिपति हो, आप हमारी पुत्रकुओं से लाभ विष्णु आदि विद्योते बन्धनों से अन्न प्राप्त एवं औषधियों के द्वारा रक्षा करते हैं।

जो उदीची दिग्मन्त्रोऽधिपतिः स्वयो रक्षिताऽपि रश्मि ॥

हे सुख और शांति के दान, अति शिव, अति मधुर, सीम प्रभु, सीम स्वराज भगवन् आप हमारे उत्तर दिशा के अधिपति हैं। आप हमारी स्वय उत्पन्न होने वाले कौट पतंग मधुर आदि से विष्णु के द्वारा रक्षा करते हैं।

जो दक्षिण दिगिन्धोऽधिपतिः कल्याणमोक्षोक्तिा पीरुष इत्यपि ॥

हे सर्वान्तरिक, सर्वधर, सर्वसंविधान प्रभु आप हमारे नीचे की ओर के अधिपति हैं। आप हमारी विशाल वायु से बुद्धी और सत्ताओं के द्वारा रक्षा करते हैं।

जो ऊर्ध्व दिग्मन्त्रोऽधिपतिः विप्री रक्षिता रश्मिनिष्वपि ॥

हे ज्ञान स्वराज, सर्वज्ञ, सर्वविधाग्न, सब से मान्य, गुरुओं के गुरु कुशस्थि देव आप हमारे ऊपर की ओर के अधिपति हैं। स्वामी हैं। आप हमारी कष्ट आदि रोगों से दृष्ट हर प्रकार के रोगों से वषां के द्वारा रक्षा करते हैं।

मन्त्रों का शेष भाग—येथो मन्त्रोऽधिपति धी मन्त्रे रक्षितोऽपि नमः ॥

बहुयोग्यन एवोऽस्तु। योऽस्मान्मन्त्रेऽपि नमः ॥

हे परम ब्रह्म आप को नमस्कार हो, हे सत्ता के अधिपति आप को नमस्कार हो। हे परम रक्षक आप को नमस्कार हो, हे इन्द्रो की स्वामी आपको काकर नमस्कार हो। प्रभु जो हम से ईश्वर्य देव करते हैं, अस्मा विन से हम ईश्वर्य देव करते हैं, उसे आपसे न्याय रूपी सत्यार्थ पर छोड़ देते हैं। हे न्यायकारी दयालु परमात्मा परमेस्वर हम स्वयं ईश्वर्य देव को स्वयं का प्रती मन्त्र से प्रेम करें, प्राणीमन्त्र की सहायता और रक्षा करें, प्राणी मन्त्र को मित्र की दृष्टि से देखें, नहीं हमारी वाचना है, स्वीकार करें ॥

दृष्ट के इस समारोह में सत्य

अनपान पोशन आदि की आवश्यकता प्रत्यक्ष थी। दिन्याक 14.2.99 को प्रताः दृष्टा मन्त्र में प्रगत फेली प्रताः दृष्टाई गई निर्मल अधिपति के भवन महिलाओं एवं पूर्वो दृष्टा मन्त्रे। इसके उपरान्त दृष्टा मन्त्रे आदरणीय श्री मुवाल श्री (सुधियान) के कार्यपत्रो द्वारा किया गया। विद्यमन्त्र प्रदान आर्य समाय के पदाधिकारियों के अधिस्था श्री मुवाल श्री सत्यनन्द का मन्त्राचार्य द्वारा स्वयं किया गया। अन्तरिक्षोपराय बडे स्तर पर भव्य शोभा वातावरण के अधिस्था मन्त्राचार्य/आचार्य श्री अधि जन्म स्वामी से मुकल देव ॥ २० दृष्टा दृष्ट के प्रांगन में पहुँची।

इस महान कार्यक्रम के यन्त्री कर्तो या सहायक श्री समाय की सहायता से उन्हें हर समय हर जगह अपने उपस्थित था। उन्होंने पञ्जाब से पम्परी दम्मी आर्यवर्षो का इस समारोह में सम्मिलित होने पर तबलिल से बन्धनल किया। इस सारे कार्यक्रम को सफल व विविधक सम्पन्न करवाने का श्रेय श्री समाय की सहायता को ही जाते हैं। भाण्डन उन्ने स्वस्थ एवं दीर्घायु प्रदान करें। दृष्टा से सत्ता आते समय हम को बहुत में लेके वहा हमने महेश्वर दयानन्द स्वामी-भवन में एक स्वागत दृष्टा मन्त्र उन्ने च आनन्दमय दृष्टा विष्णु दिया गया था। सत्यम एक योनिधायक प्रेष भविष्य प्रदान

प्रेम भाटिल प्रधान

अर्य जन्म भूमि टंकारा ट्रस्ट को मिलने का पूर्ण आस्थासन

हर्ष का विषय है कि सार्वजनिक अर्य प्रतिनिधि सभ व डी ए बी कार्सेज प्रबन्धकर्ता समिति आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान एच श्या महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट ट्रस्ट के टस्ट्री श्री सत्यनन्द मुजाल जी के प्रयत्न से टस्ट को महर्षि दयानन्द जन्म भूमि का अधिकार मिलने का पूर्ण आस्थासन श्री कान्हाजी भार्थ चक्रधारी (जन्म गृह का वह भाग जहाँ स्वामी जी का जन्म हुआ था के मालिक) ने श्री मुजाल जी के अग्रह पर जन्म गृह नक्का टस्ट को नि मुक्त दे दिया - और टस्ट को कान्हाजी कार्यवाही करवाने हेतु दस्तावेज तैयार करवाने का आग्रह कर दिया है।

इस आस्थासन को देने के लिए श्री कान्हाजी भार्थ चक्रधारी अपने परिवार के सदस्य सहित अर्य बोधोत्सव में सम्मिलित हुए और सार्वजनिक रूप से टस्ट को जन्म स्थान देने की घोषणा की। इस उपलक्ष्य में उनका श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट ट्रस्ट द्वारा स्वागत किया गया।

आज समस्त आर्य जगत् को निजकी सनेदरशील भावनाये उस जन्म गृह से जुड़ी है और सभी इस बात से उदासीन है कि अर्य का जन्म गृह का अधिकार आर्य समाज के पास नहीं है अथिप एक निजी व्यापारी के पास है। पूरे आर्य जगत् को इस बात का गम है कि आर्य समाज के पास श्री सत्यनन्द मुजाल जैसे दयानन्द के वीर सपूत उर्ध्वस्थ है जिन्होंने यह कार्य अपने सब्ज रूप से कर दिखाया विमर्गे पूरा आर्य जगत् लगभग विफल हो चुका था।

स्वाभावात जवा की ओर से श्री सत्यनन्द मुजाल को हार्दिक शुभकामनाएँ एवं हार्दिक शुभाशींय देते हुए परमपूज्य परमहंस से प्रार्थना है कि उनकी दीर्घायु हो शक्ति व शक्ति अर्य से इसी तरह उद्भव होते रहे।

ट्रस्ट परिसर में कर्मों का निर्माण

कु सुखि गुवा जिनको काल ने अकस्मात् दिया 20 9 1987 को मृत्यु की मोद ने सुला दिया 14 वर्ष की अल्पवृद्ध में ही अपने परिवार जनों को छोड़कर वे इस भौतिक जीवन से विमुक्त हो गईं। उनकी की स्मृति में उनके महा पिता श्रीमती प्रेमलता गुवा श्री गीर्वाण्ड राम गुवा ने श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट ट्रस्ट के परिसर में एक लाख रुपये की धनराशि देकर एक कर्मों का निर्माण अपनी बेटी कु सुखि गुवा की स्मृति में करवाया। उस कर्मों का शिथिल उद्भवन उनकी के कर कमलों द्वारा दिया 14 2 1999 को किया गया। उद्भवन से पूर्व बच का कार्यक्रम रखा गया और कु सुखि गुवा की स्मृति में विशेष यज्ञ की आहुतियों से स्मरण किया गया।

1, 01, 111/ रुपये का सार्वजनिक दान

श्री सत्कर आर्य चौक पध्द प्रदेस के दक्कता गांव के निवासी है पिछले कई वर्षों से अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती देवी के सब्ज ट्रस्ट अर्य बोधोत्सव पर पध्दता थे। पिछले वर्ष उनकी धर्मपत्नी का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया और उनकी धर्मपत्नी आ तक आय को अपना मृत्यु से पूर्व यह आग्रह कर गई थी कि उपरोक्त ट्रस्ट ट्रस्ट को उन रूप में अवश्य देने और अपने पूरे जीवन निरन्तर अर्य बोधोत्सव के पूर्व पर ट्रस्ट पर पध्दत। उनके वजन को पूर्ण करने के लिए श्री सत्कर आर्य अपने पुत्र एवं सुखि गुवा के सब्ज ट्रस्ट पर पध्दत और श्री महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट ट्रस्ट को 1, 01, 111/ की धनराशि दान के रूप में प्रदान की।

-राम सब्ज सभल गयी

आर्य बाहर से नहीं आये : वे भारत के ही मूल निवासी हैं

विश्व प्रसिद्ध इतिहासविदों की राय

यह धारणा अब पूर्णतया गलत साबित हो चुकी है कि भारत में आर्य बाहर से आए। न तो प्राचीन साहित्य में ऐसा कोई उल्लेख मिलता है और न ही ऐतिहासिक साक्ष्य कि वे बाहर कहीं से आए और यहाँ के मूल निवासियों को दबा कर शासक बन बैठे। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान और इतिहासविद डा रुचिद्र प्रताप ने यह बात कही बजाहर लाल नेहरू विमर्शविधालय में एक व्याख्यान में उन्होंने आर्यजन्ताया कि पुरातत्त्व की दृष्टि से भी कोई प्रमाण नही मिले है। फिर भी यही पध्दता जा रहा है कि भारत में आर्य अकामनिस्तात कर राखे कई दलों में आए तथा उन्होंने यहाँ की प्राचीन और मूल सभ्यता सस्कृति को नष्ट किया।

डा फ़ालो ने कहा कि पुरागौरविक प्रमाणों के आधार पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धान्त पुनर्जा पर वे रद्द कर दिया गया है। भारत में पता नहीं क्यों पध्दता जा रहा है सिंधु घाटी और हड़प्पा की सभ्यता का समय 2700 से 1900 साल ईसा पूर्व समझा जाता है नई खोजें साबित करती हैं कि भारत में सभ्यता का विकास ईसा स काल से कम साठ हजार साल पहल हो चुका था। यहाँ एक विकसित सभ्यता मौजूद था हप्पा सभ्यता का अवसान काल आक्रमण के कारण नहीं प्रकृति प्रकोपों से हुआ वन दिनों पर्यावरण में आक्रमक बदलाव आए वैदिक साहित्य में जिस सभ्यता का उल्लेख मिलता है वह ईसा से 1900 साल पहल तक लुप्त चुकी था यह सभ्यता के परिवर्ण भाग से काट कर वन तक बहरी थी इन्हीं गिनी आकाली यहाँ से बहा टटी।

प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्वान जम्स स्कॉटर को उद्धृत करते हुए डा फ़ालो ने कहा कि भारत में आर्यों के आक्रमण का सिद्धान्त औपनिवेशिक मानसिकता का परिचय है स्कॉटर का सरर्ष नहीं हो तो यह बकान किसी कष्टपूर्ण हिंदू को लग सकता है। उन्होंने साठव शैलिया एथिऑस इट्रॉपियान एट हिस्ट्री पुस्तक में आर्यों के आक्रमण के सिद्धान्त को ध्वस्त कर दिया है। मिनिगन पुनिगिस्टी से प्रकाशित पुस्तक में आक्रमण के सिद्धान्तों के सब्ज सकारित है।

स्कॉटर के अनुसार भारत में आर्यों के बाहर से आने के सिद्धान्त का बहाना देने के पीछे निहित उद्देश्य रहे हैं। इस सिद्धान्त को आधार पर वे भारत में अपने उपनिवेश को जयज उठव रहे थे डा फ़ालो ने कहा कि आर्यों के बाहर में आने या यूरोप में उनका मूल स्थान बताने का सिद्धान्त नाजा इतिहासकारों ने उठाया मने की बात है कि इसकी मबसे "याद बकालत अब कम्प्यूटिड खान बारा इतिहासकार कर रहे हैं।

उन्होंने द इंडो आर्यन आप साठव एशियन का हवाला देते हुए कहा कि भारत से बाहर बहा भी ऐसे कबाल नहीं मिले जा यहाँ के वैदिक आर्यों से भग्न खाल हो। ऐसे प्रमाण भी नहीं मिलते कि वैदिक आर्य प्रागैतिहासिक काल में दक्षिण एशिया या यूरोप में कहा बसत हो। उपमहाद्वीप के भारत पध्दिसत बकालाश और श्रीलंका जैसे देशों में डा फ़ालो का प्रमाण मिलते है डा फ़ालो ने कहा कि वैदिक सभ्यता और आधुनिक सभ्यता में गहर अंतरध्व दिखाई देता है आर्य यदि बाहर से आए तो उन देश की सभ्यता सस्कृति में भा उन्क उपस्थिति झलकती बाहिर था।

भारत में इतिहासविद बका लाल एच गुवा और एस आर राय कई साल स आर्यों के आक्रमण के सिद्धान्त का "नोट द रहे है। उनक प्रागपदना का पुर्वाग्रह स प्रेरित बाला हर रद किया जन्म गृह डा फ़ालो ने कहा कि परि-म में पिन्ड कुछ वर्षों में मयबुद्धी 'स स्थिति हुए निजर्ण को किस अग्रह से प्रेरित कहर्ण कोलिन है। लाल जेम्स में पिछले साल आगत में - एक काग्रमेस में पिन्डो में लब्ध और प्रमाणों के आधार पर ब- कहा। उसे नकार मुम्किल है।

उन्होंने कहा कि जन्म काल आर्यों के आक्रमण पर अर्रे रहा। बालो सिद्धान्त के मत भी बकल रह है। उदाहरण के लिए इस सिद्धान्त की प्रल पध्दत गमिता बापर भी बकली लगा है कि सिंधु घाटी की सभ्यता आर्यों के आक्रमण से नहीं प्रकृति प्रकोपों से नष्ट हुई।

बठिण्डा मे प लेखराम बलिदान दिवस

भरभार प लेखराम का का बलिदान दिवस आर्य समाज बठिण्डा क प्रांगण मे बड़ी धूम धाम के साथ मनाया गया यह कार्यक्रम प्रधान श्री उम भाटिया का क अध्यक्षता मे मन्त्री ब्र बिहारी लाल का मार्ग के सम्बलान 4 हुआ सम्प्रथम हवन थड आय समाज क मन्त्र पुराहित प सुनाल कुमार का साक्षा के अवाकल मे सम्मान हुआ थड प्राध्यापकल श्रीमल लाल मंगल न एक भन्म सुनाया

श्री पुरोहित जी ने बख्क कि श्री प लेखराम जी ने फलगुन सुदी 3 सकल 1953 कि अनुसर 6 मार्च 1897 को रवि के 2 बने नवरा करी को वैदिक धर्म पर बलिदान कर दिया था पुरोहित जी ने सभी को प लेखराम सैस बनने का प्रेरण दा कि किस तरह पण्डित का धर्म के लिए दिए है तो इन भा उम के लिए जीवन लिए

प्रेस भाटिया प्रधान

गान्धी नगर जालन्धर का उत्सव

आज समाज गान्धी नगर 1 जालन्धर का वार्षिक उत्सव व आर्य समाज स्थापन दिवस से 4 जवला 1999 तक मनाया जा रहा है जिसमे कई उच्चबर्गि क विद्वान व नेता गम पक्षर रह है जालन्धर का समाज आर्य समाज के अधिकारी को प्रभाव है कि अपना समाज के सभी सदस्य सहित इस उत्सव मे पक्षर कर अपना सहयोग दे

बृजलाल प्रधान

माडल टाऊन जालन्धर मे यजुर्वेद परायण यज्ञ

अपका यह सूचित किया जाता है कि इसर पिण्ड स्मार्गि ओ वेद प्रकाश का भोलोवा की पहला पुण्य तिथि रविवार 14.3.99 को है इसके उपलक्ष्य मे यजुर्वेद परायण यज्ञ हमारे निवास 280 एल मडल टाऊन जालन्धर मे रविवार 7.3.99 का साव 4 बजे से आरम्भ हो रहा है जिसका पूर्णोद्घाति रविवार 14.3.99 को साव 6 बजे होगी कार्यक्रम प्रतिदिन साव 4 से 6 बजे तक चलेगा

विश्व मल्लोद्या

माता मार्गी देवी का बिथन

आर्य समाज गोविन्दगड जालंधर की प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्रीमती मार्गी देवी का 17.2.99 को देहावसान हो गया। इनका अन्तिम शोक दिवस आर्य समाज गोविन्दगड मे मनाते हुए आ प धर्मदेव जी आर्य श्री प रमेश जी श्री नरेश जी मन्त्री श्रीमती कृष्णा कोल्हट जी मन्त्राणि ने व सैकड़ो उपस्थित लोगो ने उन्हें अपनी भावभीना ब्रह्मजलि अर्पित की। श्रीमती मार्गी देवी जी आर्य समाज के भिन्न भिन्न पदो पर रह कर कई वर्ष तक सेवा करती रही अब भी वह आर्य समाज की सरक्षक थी। उनके पति स्व जगन्नाथ जी आर्य प्रादेशिक समा के महापेशक रहे और कुछ समय साई दास स्कुल मे संस्कृत अध्यापक के रूप मे भी कार्य करते रहे। पकिस्तान बनने से पूर्व श्री जगन्नाथ जी

साहौर मुसलमान कोबडा कलीफिस्तान व गुजरातवाला मे रहे। भारत विभाजन के पश्चात् वह जालन्धर मे आ गए और मोहल्ला गोविन्दगड मे रहने लग गन् 1963 मे उनका देहावसान हो गया। इन दोनों का बच्चा पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। उनका सुपुत्र विश्व प्रिय जी श्री सर्वप्रिय जी सोम प्रिय जी तीनों ही बहुत सुभाव्य है। सग परिवार बहुत हा नेक व श्रेष्ठ है। भ्रता मार्गी देवी जी अपने पीछे बड़े परिवार छोड़ गई हैं। उनका अभाव आर्य समाज मे सज खटका रहेगा। हम आर्य प्रतिनिधि सभा पक्षब को ओर से उन्हें ब्रह्मजलि भेंट करते हुए परमत्मा से उनका सन्मति के लिए प्रार्थना करते हैं।

—धर्मदेव आर्य

सदस्यपरमपद

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी हरिद्वार**का****आंवला, केशर, चांदी व पिस्तायुक्त,****कोलस्ट्रोल रहित****विटामिन 'सी' से भरपूर****अमृत रसायन****उत्तम स्वास्थ्य के लिए****गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी****हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)****की औषधियों का
सेवन करे ।****शास्त्रा कार्यालय :****६३, गली राजा केदारनाथ,****चावड़ी बाजार दिल्ली ११०००६**

आ जिनका दुकान की साथ एडमिनेट मर्यादनी सम्पत्तिक हार बच किन्ड रिटर्न प्रैक्सेरि फिटव जालन्धर से मुक्ति होकर अन्य पक्षक मर्यादनी मुदर पक्षन चौक फिगमपुर जालन्धर से इसकी स्मार्गिने आप प्रतिनिधि सभा पक्षब के लिए प्रकलित हुआ ।

दि० न० 29 J/35

कृष्णवन्तो

ओ३म्

विश्वमार्गम्

दूरभाष

792926



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्रार्थना सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष 48 अंक 50 8 चैत्र सम्पत् 2055 तदनुसार 21 मार्च 1999 दयानन्दवा 174 वार्षिक शुल्क 50 रुपये मजीबान 500 रुपये

महर्षि की सार्वभौमिक उदात्त भावना

ले० श्री महेन्द्र कुमार शर्मा जी 1480 पृथ्वी दलित नई दिल्ली-2

व्यासजी के विषय में हमें ज्ञात है कि वे उन्हीं प्रकार उनके मन में विश्व कल्याण और हिंस की भावना थी। उन्होंने के तन्मो में।

व्यास जी आर्यना देश में उत्पन्न हुए और बसता हुआ स्वयंसेवा के साथ मनुष्य की उन्नति के विषय में बर्ताव हुआ वैसा विश्वविद्यालय के साथ भी तथा सब सम्बन्धों को भी बर्ताव योग्य है।

यह चाहते थे कि जिस प्रकार पूर्व काल में भारतवासियों का देश विदेशों में आता जाता और व्यवहार तथा सम्बन्ध होता था वैसा ही अब भी होना चाहिये।

प्रथम आर्योवर्त देशीय लोग व्यापार राज्य कार्य और प्रथम के लिए सब भूगोल में घूमते थे।

एक समय व्यास भी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पलातल विश्वको इस समय अमेरिका कहते हैं उसमें विचार करते थे कि कृष्ण तथा अर्जुन पलातल में आर्यवर्त अर्थात् विश्वको अग्नि नौका कहते हैं उस पर बैठकर पलातल में जाकर महाशय बुद्धिधर के घर में उपवास करके तो आये थे बुद्धिधर का विचार उपवास विश्वको कल्याण कहते हैं यहाँ की राजपुत्री से हुआ। भाई पाण्डु की रक्षा हेतु का राजा की कन्या थी अर्जुन का विवाह पलातल में जिसको अमेरिका कहते हैं वह के राजा की लड़की उद्योगी से हुआ था।

महाशय बुद्धिधर के राजपुत्र यह प चीन का महाशय अमेरिका का बहु व्यापार यूरोप देश का

विचारता है उन कालों में अपने थे।

महर्षि दयानन्द मनुष्य जाति को एक जाति मानते थे। इसलिए उन्होंने जाति और मनुष्य की परिभाषा प्रस्तुत की।

जाति को जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बनी रहे। जो अनेक व्यक्तियों में एक रूप से प्राप्त हो। जो ईश्वर कृत अर्थात् मनुष्य जाति और बुद्धिधर समूह हैं वे जाति और बुद्धिधर से लिखे जाते हैं।

मनुष्य अर्थात् जो विचार के बिना किसी काम को न करे उस का नाम मनुष्य है। मनुष्य उसी को कहना जो कि मननशील होकर आत्मत्व अन्यो के सुख दुःख हानि लाभ को समझे अन्यायकारी बलवान् से न डरे और धर्माला निर्बल से भी डरता रहे परन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाह से महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यो न हा सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की रक्षा अति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे शत्रुवादी सनाथ महाशत्रुवादी और गुणवन्त भी हो समाधि देनक भास अवनीति और अधिभाषण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके यहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सदा किया करे। इस समय में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो चाहे प्राण भी चले जाये परन्तु इस मनुष्य कर्म से पुण्य कभी न होवे।

मनुष्य को सम्बन्ध दयावीय स्वाभावयुक्त दुःख दुःख हानि लाभ में बर्ताव देते हैं।

मनुष्य स्वयं अपना हितार्थ समझकर सत्यार्थ का प्रहण और मिथ्यार्थ का परिहण करके सदा जानन्द में रहे। मनुष्य का आत्मा सत्यसत्य को जानने वाला है।

जो पदार्थ वैसा है उसको वैसा ही कहना सिद्धता और भावना सत्य कहलाता है।

सर्वदा सत्य की विषय और असत्य की पराजय और सत्य से ही विद्वानों का मार्ग चिह्नित होता है। इस दुःख संकल्प से आत्मन्य से योग्य प्रयोग करने में उदासीन होकर कभी सत्यार्थ करने में नहीं हटते।

महर्षि दयानन्दजी महर्षि ने बहुत उदार अभिप्राय को प्रकट किया।

सर्वसत्य का प्रचार कर सम्बन्धों ऐक्यता से करा देव धृष्टा परस्पर में दुःख प्रीति युक्त करार करके सम्बन्धों सुख स्थापन पद्धति के लिए मेरा प्रयास और अभिप्राय है। सर्वसत्यमान परमात्मा की कृपा सहाय और आभयनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सब धर्मात्मा काम को सिद्धि करके सदा उन्नत होते रहे यह मेरा मुख्य प्रयोजन है।

आप (विद्वान्) जो बर्धार्थ कल्याण देव रहित धर्मात्मा विद्वान् सत्योपदेश सब पर कृपण दुःखी सर्वमान होकर अधिमान्यकार का नाम करके अज्ञानों लोगों के अज्ञानों में विचारपूर्वक रूप का प्रकाश सदा कर उसको आप कहते हैं दयालु दयानन्द की अनिमित्तता थी।

आवकल बहुत से विद्वान् सब मतो में है यह पक्षपात छोड़ सर्वसत्य सिद्धान्त अर्थात् जो सबों अनुकूल सबमें साथ हैं उनका प्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं उनका त्याग कर

परस्पर प्रीति से बर्तें बर्ताव तो आप का पूर्ण हित होवे क्योंकि विद्वान् क विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होता है।

यदि मनुष्य समाज दयानन्द का आत्मा की आकाश की सुनकर आर भावनाओं को समझकर जीवन में अपनाता तो मनुष्य देश विदेश के सभी प्रतिबन्धों को छोड़कर मानव मानव की रक्षा करने वाला हो जाता।

पुमान् पुमान्स परिभाषा विश्वतः वह जो विश्व को एक कुटुम्ब बनाता चाहत है वे सार सत्सत् को एक परिवार मानते थे पशुपुत्र कुटुम्बक

समस्त विश्व को सब मनुष्यों का घर बनाना चाहते थे यत्र विश्व भवत्येकनीडम् विश्व भूमि माता का पौद से जिन्होंने अन्य लिखा है उसकी पौद की सारी दुनिया है इस दुनिया को घर की भाँति हम सब मानते सग तो सम्पूर्ण मानव उसकी रक्षा करने के लिए एक सूर्य में बन्ध कर बन्धुत्व की भावना वाले बन जायें।

उन्मेष्येय ससार का उपकार करना था वह महात्मा का उपकार करना सामान्य का मानव का मुख्य उत्तर्य मान्य है यह चाहते थे कि सर्वका शारीरिक मानसिक और सामाजिक उन्नति हो।

उन महर्षि महाविद्वान् का ज्ञान विद्वान् तर्क प्रमाण साधन विचार सारम्भ पर सत्यता न सत्यता कल्याण हा सकल

सर्वका का मनोभावना स मनुष्य एक बृट बनते उनमें आत्मीयता हाती उनके विचार व्यवहार एक जैसे होते। साधन व्यापकरण में सब सुखी होते

बन्धन से मुक्ति

ले० श्री आनन्द अम्बिकाजी जी ब्रह्मचर्याचार्य स्वामीजी महाराज

मार्गों से आगे

ईश्वर प्रेरणा देता है।

स्वच्छांशुर्ब्रह्म ब्रह्मचर्याचार्य।
शरद्वर्षः शरद्वर्षः शरद्वर्षः शरद्वर्षः
शरद्वर्षः शरद्वर्षः शरद्वर्षः शरद्वर्षः
शरद्वर्षः शरद्वर्षः शरद्वर्षः शरद्वर्षः

कि इम ती वर्षं विषये, ती वर्षं देवैः, ती वर्षं सुते, किसी के अधीन न हो इत्यादि। अथ इम पर निर्भर है कि इस प्रेरणा से हम सात्त्विक जीवन व्यतीत करने की वर्ष बोधना चाहते हैं या शराव में मग्नता अन्य नशीले पदार्थों का सेवन करने के बाद जीवन का पक्षे हो अंत का देना चाहते हैं।

राजिना सुर्ष को भी कहते हैं। सुर्ष भी प्रेरक है। रात के स्वप्नोत्पत्ति होने पर सुर्ष की किरणें जब पृथ्वी पर पड़ती हैं तो हर पदार्थ के अन्दर एक प्रकार की जागृति या प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। सुर्ष किसी भीष का उत्पादन नहीं करता। पदार्थों में जो रात्रि निहित भीष चली गया ठहरी है। नया जीवन आ जाता है। अंग्रेजी का शब्द STIMULATOR अत्यधिक पाथो को टीका-टीका व्यक्त करता है। सुर्ष की किरणें यदि गुलाब पर न पड़ती तो गुलाब न खिलता। सुर्ष की किरणें गुलाब नहीं। सुर्ष से गुलाब नहीं बना। न गुलाब बिना सुर्ष का सुर्ष में लीन होता है। परन्तु गुलाब की आन्तरिक बीज रूप अविकसित शक्तियों को विचारित करने में उद्यत करने से सुर्ष प्रेरक है। विद्युत वर्तन ELECTRIC CURRENT भी प्रेरक है। एक ही विद्युत धारा से पत्ते बल पड़ते हैं। गेटे की बच्चों है निम्न-भिन्न यन्त्र हैं जो किसी को प्रेरणा से चलते हैं। तुष कर्मों पर चलने के लिये जो व्यक्ति दूसरे लोगों को प्रेरणा करते हैं वे उन लोगों को बन्धन से मुक्त करने का एक पात्र करते हैं।

राजिना का अर्थ मां भी है। मां एक बहुत अच्छी प्रेरक है। माता ही सन्तान का पवित्र आश्रय बना सकती और माता उसी सन्तान को पोर और डाकू भी। महात्मन गान्धी को महात्मा बनाने में मां को अला की बहुत बड़ी प्रेरणा थी। पद्मनाभ गान्धी को भी अकेले मां के सत्त्व परभाव करने के लिये न जाते थे। कहते थे

कि हर आता है। मां गुण साथ पाती। माता ने कहा वेदा २ अनेला नहीं। राम प्रेर सख है। इन मांओं ने गांधी को प्रेरित किया और वह राम भक्त बन गये। इसलिये अपने राष्ट्र को, चम्प धूमि, अपनी माता को मातृ माता कहते हैं। वेद को वेद माता कहा गया है।

और सुता मया सरदा वेद माता ब्रह्मोदयनो साधनागी विद्यानाम्। आनुः प्राणं प्रजां पशुं कर्तुं श्रियां ब्रह्मचर्याचार्य। मर्षं धृता ब्रह्म ब्रह्मोदयनम् अर्थात् हम वेद माता की सुति करते और उसे ही प्रेरणा से सख को अनुप्राण प्रजा पशु कीर्ति आदि प्राण हो।

परन्तु प्रेरित करने वाला व्यक्ति स्वयं बचन रहित होना चाहिये। यदि वह स्वयं बंध होगा तो किसी बन्धन को खोल या तोड़ न सकेगा यह असम्भवं रहेगा।

गुरु श्रोत्राचार्य ने कौरवों को प्रेरित किया कि वह पंचदश की ओर नहीं तो पंच गांव दे दें। पर कौरव नहीं माने बन्धीक थे गुरुकार और राजसी लोभ के बन्धन में बंधे थे। भीष्म पितामह ने भी वैसी ही प्रेरणा दी। परन्तु कौरवों ने एक न पाती। परिणाम क्या हुआ। दुर्योधन यदि सब के सब पर्व मारे गये और सेना भी पराजित हुई। इसी प्रकार रावण को उसके भाई परिषद मित्र सने सम्बन्धी सब ने प्रेरित किया कि राम के साथ युद्ध करना उचित नहीं पर उसने एक न मानी और वह प्रेरित नहीं हुआ। क्या कारण है? कारण यह कि वह प्रेरणा देने वाले लोग स्वयं बंध थे पर स्वयं मोह से बन्धे थे और रावण को झोड़ने की उन्ने हिम्मत या शक्ति न थी। गुरु श्रोत्राचार्य या भीष्म पितामह दुर्योधन की राक्षस जीवन की कर्माई के भागीदार थे। वह उसकी कर्माई का अन्त खाते थे। उन का मनोबल टूट चुका था। वह सरासरी हो कर प्रेरणा न कर सकते थे क्योंकि वह अपने आप को गुरु न जान कर दुर्योधन के दरबार का एक सदस्य मानते थे जो कि राजा के अधीन हो कर कार्य करता है।

इसलिये कर्ममुक्त होने के लिये मनुष्य किसी ऐसे अज्ञानक

किसी ऐसे गुरु, किसी ऐसे अज्ञानक का किसी ऐसे चम प्रदर्शनक का मित्र बन बन करे जो स्वयं बन्धनों से मुक्त हो उस की उस की प्रेरणा से मनुष्य बन्धनों से छुटने के लिये स्वयं को प्रेरित कर सकता है।

(२) विष्णु-द्वारे प्रकार के लोगों को विष्णु कहा जाता है। विष्णु का अर्थ है कर्मों में व्यापक। कर्मों के धर्मार्थों को जानने वाले न्यायवीर। ऐसे व्यक्ति जो यह बात समें कि वर्न क्या है अर्थात् क्या है? जो न्याय की दृष्टि से मनुष्य है। मोक्षदास व्यक्ति कभी न्याय नहीं कर सकता। सुवराष्ट्र अंशों से अंश जो या ही पशु मोह ने उसकी ज्ञान रूपी अंश की ओर तो। मुक्ति से परा वृत्त गया। न्याय नहीं कर सका कि पुर्णों का पक्ष अनुचित है। नहीं कर सका कि न्याय पक्षकों के पक्ष में है। पुर्णों को नहीं कह सका कि पंचदश को उनका अधिकार मिलना चाहिये। मोक्ष रूपी बाल ने सुवराष्ट्र को ऐसा संसाधा कि पंच पांश क्या समस्त राज्य भी पशु और साध-साध, राणी के सभी पुत्र भी रत्नधूमि में मारे गये। बगवान् कृष्ण दूध बन कर और पंचदश का संदेश लेकर कौरवों के पास गये पर दुर्योधन बन्धन अवस्था को न समझ पाया। परिणाम हुआ जीवन युद्ध।

केवल प्रेरित होने से काम नहीं बनता। प्रेरक को धर्म-अधर्म, सत्त्व-असत्त्व, न्याय धर्म-अन्याय का भी ज्ञान होना आवश्यक है। केकेई ने प्रेरणा करके महात्मा दत्तार्थ से भारत के लिये राज्य और राम के लिये बन्धन मांग दिया। दत्तार्थ को कैसे प्रेरित किया कि अपने बचन दिया हुआ है कि वो मांगीगी दूना। बासा दिया दुष्कृत रीत सदा चली आई, प्राण जय पर बचन न आई। बचन सच हो कर दत्तार्थ मांग गये। केकेई की प्रेरणा ने पुत्र मोह को त्याग दिया पर केकेई के दुरेणा धर्म पर न्याय पर अन्याय सत्त्व पर अधार्मिक न थी। परिणाम क्या हुआ पति भी खो बैठी और पुत्र का प्यार भी। केकेई की अनुचित प्रेरणा से अयोध्या का रामराज्य १४ वर्ष के लिये विच्छेद गया। राम को बन का कष्ट सहना पड़ा, सीता हरष्य और फिर एक बोधी के कहने पर राम ब्रह्म सीता का त्याग।

इसलिये चम प्रदर्शनक वहां

प्रेरक जो सत्त्व, न्याय और धर्म अवस्था में चलता हुआ मार्ग दर्शन करे।

(३) विश्वे महाशः-धर्म है वह मित्र जो विलसत देने के लिये कहते हैं मत रोना। दूसरों को कान कह सकता है मत रोना-केवल धर्म व्यक्ति को स्वयं नहीं रोता। रोना क्या है-परमार्थ का अनन्त। परमार्थ ने किसी सुन्दर पहाड़, नदी, माते, वनस्पति, फूल-फल बनाने हैं किन्तु अनमोल वस्तुएं कर्माई हैं जो कि दिल सुगाती हैं जो व्यक्ति इन को देख कर रोता है वह अनन्त है। रोना कौन है जो कर्मगोत्र है। क्या कोई किसी से कहता है कि मत रोना तो वह मित्र होने वाले व्यक्ति की सहायता के लिये बचनमात्र हो जाता है और रोने वाले व्यक्ति को एक अला को किरण दिखाने देती है। जब कोई व्यक्ति किसी का रोना नहीं देखता चाहता तो स्पष्ट है वह दान व्यक्ति का कोई दुःख देखना नहीं चाहता। या यूँ कहा जायेगा कि ऐसा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सुख को मानना करता है।

सुखी और बाली के जगहों का निष्पत्ता एक ही हुआ जब भयमान राम ने सुखी के आँसु पीछे। अमेरिका जब पाकिस्तान को धरदार युद्ध सामग्री दे रहा था तो उस ने जग कर भारत के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाया और भारत को सहाय किया। जब कोई व्यक्ति किसी के आँसु पीछे है तो अपनेन का सच पैदा होता है उसको केवल महसूस किच आ सकता है। कहा नहीं जा सकता।

(४) स्वर्ण-स्वर्ण हाव-सु-अर्थ अर्थव्यवस्था लोनों में है। धूम में खड़े होने का सही से बर्क पर बैठने एक पांश पर खड़े होने का, न महाने का या सदा बल में खड़े इत्यादि का नाम धर्म नहीं। यह तो डठ है। सही गर्मी-सही सत्त्व करने में सहार हो इस बात को गरीर का उप अवधार कदा का सकता है। किस व्यक्ति के धर्मार्थरम में गर्मी-सही सुख-दुःख राम-मित्रता काय नहीं डारते और वह इन सख को सहते हुए सख मार्ग पर अवसर होता जाता है वह तपस्वी है। तपस्या मन से सहरी से धर्म कभी से होती है।

(कर्मकाः)

साम्बाधिका-25

25 मार्च को मर्वादा पुरुषोत्तम राम का जन्म विवस सारे भारत वर्ष में ही नहीं सारे संसार में मनाया जा रहा है। यह दिन हमारे देश में सर्व के रूप में मनाया जाता है। इसे रामनवमी का पर्व कहते हैं। चैत्र सुदि प्रथिपदा से हमारा नव सवत्सर आरम्भ होता है और इसके ठीक आठ दिन बाद चैत्र सुदि नवमी को यह पर्व आता है। इस दिन भी राम का जन्म हुआ था। हमारे देश के लगभग सभी शहरों में इस दिन बड़ी-बड़ी शोभा यात्राएं निकाली जाती हैं और बहुत ही हर्षोल्लास प्रकट किया जाता है।

मर्वादा पुरुषोत्तम राम भारत की संस्कृति के एक महान संतम्भ है। रामायण उनकी महानताओं को प्रकट करने वाला एक महान ग्रन्थ है जिसको पढ़ कर पता चलता है कि उस काल में भारत की धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक वसा कितनी उन्नत थी। रामायण की बहुत महान विशेषताएं इस ग्रन्थ के अन्तर विद्यमान हैं।

मर्वादा पुरुषोत्तम राम का जीवन चरित्र बहुत ही प्रेरणाओं से भरपूर है। यह एक आर्य पुरुष है और वह सभी विशेषताएं अपने विद्यमान हैं जो एक आर्य में होनी चाहिए। यह एक आझाकारी पुरुष है। माता-पिता की प्रत्येक आज्ञा को उन्होंने शिरोधार्य माना है। माईयों में बड़ा होने से वे सत्सत् बुद्धिमान होने से महाराज्य वराहावन उनका राजतिलक करना चाहते हैं उन्हें अपने स्थान पर राज बनाना चाहते हैं और इस बात की सार्जनिक घोषणा भी कर देते हैं महाराजी कैकेई जो महाराज्य वराहावन की प्रिय थी उसने अनामक पूर्व दिए गए अपने वो वर राजा से मांग लिए हैं और वे अपने बेटे भरत को राजतिलक और राम को चौधव वर का वनवास। मर्वादा वराहावन राम वनवास की बात सुनकर परेशान हो गए और वह राम को वह न कह सके कि तुम वन में चले जाओ परन्तु जब राम को सारी स्थिति का माता कैकेई से पता चला तो उन्होंने पिता को नमस्ते करते हुए वन जाने की आज्ञा मांगी पिता ने मौन स्वीकृति दी परन्तु राम ने इसे ही शिरोधार्य किया और वह वन को चल दिए। जब वह चलने लगे तो उनकी धर्म पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी उनके साथ चल पड़े। राम ने उन्हें बहुत रोकना बहुत पर वह नहीं रुके।

राम अपने तीनों भाईयों के सहोदर प्यार करते थे और भाई भी राम से बहुत प्यार करते थे। इसी प्यार के बलभूत लक्ष्मण उनके साथ वन में गया और जब भरत नवीहाल से आया और उसे पता चला कि मेरी माता की कुबुद्धि हो जाने से और उसके द्वारा वो वर मांगे जान से राम को 14 वर्ष का वनवास हो गया है और पिता जी का राम के वियोग में स्वर्णवश हो गया है तो आते ही वह वन में से राम को लेने को लौट पड़े। वह अपने अयोध्या वासियों व अपनी माताओं व उच्चवर्षिकारियों सहित बिजुट्ट में पहुँचे जहाँ राम वन में उहरे लगे। उन्होंने राम को वापिस अयोध्या में चलने का आग्रह किया। राम ने स्पष्ट किया कि 14 वर्ष से पूर्व वह अयोध्या में वापिस नहीं जायेगा। इस पर भरत ने भी राज नहीं पर बैठने से इन्कार कर दिया। इस पर निश्चय हुआ कि राम अपनी खड्ग के वे चले राजगद्दी पर रख दिया जाएगा। भरत राजगद्दी पर नहीं बैठेगा परन्तु 14 वर्ष तक राम की अनुपस्थिति में राज्य की रक्षा करेगा। यह बात भाईयों का आश्वासन। एक भाई का दूसरे भाई के लिए त्याग। आज हम कहा खड़े हैं वह जरा

विचार कर देखें क्या आज भी ऐसे भाई कहीं नजर आते हैं जिनमें इतनी त्याग की भावना हो। आज तो एक-एक फुट भूमि के लिए एक भाई दूसरे भाई का वध तक कर देता है। आज राम की मानने वाले रामनवमी का पर्व मनाने वाले राम से क्या शिक्षा ले रहे हैं इस पर जरा विचार करें।

राम एक आवर्ष पति है वन में धोखे से रावण सीता का हरण करके ले जाता है। राम एक राजकुमार है उनके पिता ने तीन विवाह किए हैं वह भी दूसरा विवाह कर सकते हैं परन्तु वह नहीं करते और सीता की खोज करते हैं। जब वह पता चलता है कि लका पति रावण सीता को उठाकर ले गया वह उसकी खोज करवाते हैं और सीता को प्राप्त करने के लिए लका पर चढ़ाई कर देते हैं। इसमें वह अयोध्या से सेना नहीं भगवाते अपनी शक्ति अपने बल पर ही बनर जाति के कुछ सैनिकों को साथ लेकर रावण से युद्ध करते हैं और अपने प्राणों को व लक्ष्मण के प्राणों को सबक में डाल कर भी वह सीता को प्राप्त करते हैं यह है उनका एक परिचित था जिस की जितनी सराहना की जाए कम है।

वह एक सच्चे मित्र हैं जिसको भी उन्होंने अपना मित्र बना लिया उसको पूरा-पूरा साथ दिया। उन्होंने सुग्रीव को अपना मित्र बनाया तो बाली को मार कर सुग्रीव को किष्कंध्या की राजगद्दी पर बिठा दिया। उसके बाद उन्होंने सुग्रीव को अपना मित्र बनाया तो रावण को मार कर उसको लका का राजा बना दिया। वह अपने मित्र के लिए कठिन से कठिन कार्य करने के लिए तैयार हैं। जिसको भी वचन वे दिया उसको पूरा किया।

वह एक श्रेष्ठ राजनैतिक हैं। सीता हरण के परभाव यहि वह चाहते तो रावण से सड़ने के लिए वह अयोध्या से सेना भगवा सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा इसलिए नहीं किया क्योंकि यदि वह ऐसा करते तो रावण भी इसलिए नही किया क्योंकि यदि वह ऐसा करते तो रावण भी अपने प्राणों के लिए अपने सहयोगी राजाओं को बुला सकता था। वह युद्ध की बहुत बड़ी तैयारी करता परन्तु जब उसे पता चला कि राम केवल बनर जाति के लोगों को लेकर युद्ध के लिए आ रहा है तो उसने युद्ध की कोई तैयारी न की वह यही समझता रहा कि लका में आने के बाद वह वापिस नहीं जा सकेगा। परन्तु राम अपनी पूरी तैयारी के साथ लका में गये और रावण जैसे राक्षस को समाप्त करके पृथ्वी को राक्षसों से खाली किया।

राम एक श्रेष्ठ राजा थे। उनके राज्य में कोई दुखी नहीं था वह उठे बड़े सभी का सम्मान करते थे। अपने चारों भाईयों को तो उन्होंने प्रसन्न रखा ही है इसके साथ ही उन्होंने अपनी सारी प्रजा को सुखी रखा।

इस प्रकार राम का जीवन एक आवर्ष जीवन है जो प्रेरणाओं से परा पड़ा है वह सौंदर्य पराक्रम के एक पुज्य है बड़े-बड़े बलशाली राक्षस की उनके सामने नहीं उठर सके उनका वृद्धता से मुकाबला करते हुए उन्होंने उन्हें समाप्त किया।

इस प्रकार 25 मार्च को रामनवमी का पर्व मनाते हुए हमें राम के जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अपने बच्चों को राम के जीवन से प्रेरणा लेने के लिए हमें प्रोत्साहित करना चाहिए। हमें पारिवारिक मर्यादाओं का पालन करने का निश्चय करना चाहिए। आततर्ष्यों और दुष्टों का नाश करने व श्रेष्ठों को ऊँचा उठने का प्रयास करना चाहिए। हम इस दिन केवल राम का गुणगान ही न करें बल्कि उनके जीवन से प्रेरणा लेने का इस दिन व्रत ले लें तभी यह पर्व मनाना हमारे लिए सार्थक होगा।

सर्वदेव आर्य

सह-साम्बाधक

मूहस्याग्रम-वैदिक स्मरण का मूलाधार

ले. श्री अविनाश कुमार सुमर, बरनाला (मेरठ)

गतात् से आने

(६) मूहस्याग्रम से योत्रो का प्रभाव — माता के कुल की कृपा तथा पिता का योग की न हो। कन्या से स्त्री तथा पुरुष का विवाह होना उचित है। जिस प्रकार पाना में पानी मिलाने से विलक्षण गुण नष्ट होता है वैसे एक गोत्र पितृ व माता का पुत्र व विवाह होने से धातुओं में अदल बदल व होन से निर्माण नहीं होता तथा वैसे दूध में उमिरी व सोड आदि वैषम्यों के मिलाने से उष्णता तथा गूँ उसा प्रकार अलग अलग गांजा से स्वाद तथा पुरुष का विवाह नष्टा उत्पन्न है।

(७) स्त्री तथा पुरुष के विवाह में दूरी का प्रभाव — कन्या का नाम दुहितृ इस कारण है कि कन्या का प्रवास दूर देश में होता है जिसको निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है।

(१) जिस प्रकार एक देश का रागा दूसरे देश में जातु तथा खान पान के बदलने से रोग रहित होता है।

(२) किन्तु सम्बन्ध करने में कुछ दूख का आभास तथा विरोध होना भा सम्बन्ध है जबकि दूर देश में विवाह करत प्रसन्नता रहता है।

(३) दूसरे देशों के पदार्थों की प्राप्ति भा दूर देश में विवाह होने पर सहजता से होती है।

(४) कन्या का पिता के कुल में दूरिदा भा हो सकती है। कन्या का विवाह निकट होने पर कन्या जल्दी जल्दी आवेगी तब भी उसके मरिद, पिता का कन्या को कुछ न कृत्त दना होता।

१) यैत्रो का स्वभाव प्रायः नाश्वर तथा मृदु होता है और जब स्त्री तथा पुरुष में आपस का वैमनस्य होता है तब पिता का कुल में चला जायगी। तत्सक कारण वमनस्य बनेगा।

(८) स्त्री तथा पुरुष का विवाह किस कुल में न हो — ना पुत्र सत्किण्य से होना सत्पुरुष से गहवत अदाय्यन से वायुवत शरार पर उक्त बहू नाम ब्यासात् दमा मरुणा रवत कुष्ठ व गलित हस्तकृपा हो ता उन कुत्रो में कन्या व घर के साथ विवाह नहीं होना उचित ब्यापि व सब दुर्गुण और गग विकल करने वाम के कुल में प्रविष्ट हो जाय त तस्यैव उक्त

कुत्रो में स्त्री तथा पुरुष का विवाह नहीं होना चाहिए।

(९) स्त्री तथा पुरुष का विवाह किस कुल में हो — जिस कुल में स्त्री से पुरुष तथा पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहते हैं उस कुल में आनन्द लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है तथा जहाँ विरोध कलह होता है वहाँ दूख दूरिदा और निम्न निवास करती है विवाह को सुखमय बनाने के लिये स्त्री तथा पुरुष दोनों को विद्या विनय सौल रूप अनु बल कुल शरीर का परिचाय आदि बधा योग्य होना चाहिए। जिसके अन्य उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

(१) सब और से यक्षोपवीत तथा ब्रह्मचर्य सेवन उत्पन्न शिक्षा तथा विद्या से युक्त सुन्दर कस्य धारण होने पूर्ण ज्ञान होकर विवाह होता उत्पन्न है।

(२) जो किसी से दूरी न हो बाल्यकाल से रहित सत्य प्रकार से उद्यम व्यवहार से परिपूर्ण कुमारवस्था का उत्थान करने वाली नवीन नवीन शिक्षा तथा पूर्ण बल्यन होके स्त्री तथा पुरुष का विवाह होना उत्पन्न है।

(३) किस तरह का सारारिक कन्या से विवाह करे जिसका चरल सीधे अंग हो जिसका नाम सुन्दर हो इस हस्तिन के सुव्यवस्थित बाल हो सुव्यवस्थित लोभ वाली हो लम्बे लम्बे केसर तथा दात युक्त हो जिसके सव अंग कोमल हो वैसे स्त्री के साथ विवाह करे।

(४) किस तरह की शरीरीरिक्त कन्या से विवाह न करे — पीले रंग वाली पुरुष से अधिक लक्ष्मी पीली तथा बलवान् रोगी लोभ रहित अधिक लोभ वाली अधिक बोलने वाली तथा भूरी नेत्रो वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए।

(५) किन नाभो वाली कन्या से विवाह न करे — अश्विनी भरणी रोहिणीदेवी रक्षसीवर्षा विष्वादी मन्थर नाम वाली दुर्गुणिया गेया पुरुष कन्या आदि बुद्ध नाम वाली गंगा यमुना आदि नदी नाम वाली वादाली

आदि अन्य नाम वाली कन्या हिमलया चरली आदि पर्वत नाम वाली माधोदली मीरदासी आदि पुष्प नाम वाली और भीमकुमारी चण्डिका काली आदि पीषण नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिए। यक्षोप वसुध आदि नाम वाली कन्या का साथ विवाह करना चाहिए।

(६) विवाह किन्तु अश्वीन होना चाहिए — लक्ष्मी व लक्ष्मी के आधीन विवाह उत्पन्न है। जो माता पिता कभी विवाह करना विचारते तब भी लक्ष्मी तथा लक्ष्मी की प्रसन्नता के बिना नहीं होना चाहिए। क्योंकि एक दूसरे का प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है तथा सन्तान उत्पन्न होती है। अग्रसन्तान के विवाह में मित्य कलेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन पर तथा कन्या का है माता पिता का नहीं। क्योंकि आपस में प्रसन्न रहने में सुख तथा अग्रसन्तान रहने में दुःख होता है।

(७) विवाह के प्रकार — विवाह आठ प्रकार के होते हैं।

(१) ब्राह्मण — पर तथा कन्या दोनों पञ्चाशत ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् धार्मिक तथा सुशील हो उद्यम परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना ब्राह्मण कहलाता है।

(२) वैश्य — विस्तृत यज्ञ करने में अधिकतम कार्य करते हुए ज्ञानता का अलंकार युक्त कन्या को देव दैन्य विवाह कहलाता है।

(३) क्षत्रिय — वर से कुछ लेके विवाह होना प्रार्थ विवाह कहलाता है।

(४) ब्राह्मण्य — जब वर तथा कन्या का विवाह धर्म को वृद्धि करने के लिए होता है तो ऐसे विवाह को ब्राह्मण्य विवाह कहते हैं।

(५) आसुर — वर तथा कन्या को कुछ देके मिलने जाते हैं ऐसे विवाह को आसुर विवाह कहते हैं।

(६) गन्धर्व — अनियम तथा असमय दोनों की इच्छापूर्वक वर तथा कन्या का परस्पर संयोग होना गन्धर्व विवाह कहलाता है।

(७) राक्षस — लक्ष्मी करने के बलात्कार अर्थात् जैन क्रूरपट व कष्ट से कन्या का विवाह होना राक्षस विवाह होता है।

(८) यौगं दूई तथा नखो से बुरा प्रणाल कन्या से बलात्कार संयोग करना वैशाहिक विवाह कहलाता है।

(१८) विवाह की मुद्रा

रीति — जब यक्ष वर्ष व क नख ब्रह्मचर्यसेन और विद्या पूरा होना में लगे रहते तब कन्या का प्रतिविम्ब कन्याओं का। कन्यात्मिकता के परत तथा कुमार के प्रतिविम्ब कुमारों के अन्वयक के पास भेष देवें। जिस जिस का रूप मिल जाये उस उस के प्रतिविम्ब अर्थात् जन्म से लेके उस दिन तक उसकी (जन्म पारित्र पुस्तक) अन्वयक लोग भगवा के देखे जब दोनों के गुण कर्म तथा स्वभाव लक्षण हो तब जिस जिस के साथ किस किस का विवाह होना योग्य समझें उस उस पुरुष व कन्या का इतिहास कन्या व वर के रूप में देखे इसमें जो तुल्यता अधिकतम हो तो इनको विहित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाने तब उन दोनों का समवायन एक ही समय में होवे। जो तब दोनों अन्वयक के समर्थ विवाह कन्या चाहे तो कहा नहीं तो कन्या के माता पिता के वर से विवाह होना योग्य है। जब वे समर्थ तो तब उन अन्वयक व कन्या के माता पिता आदि पक्ष पुरुषों के सामने उन दोनों का आपस में ब्यापारिता सत्यार्थ कन्या और जो भी गुण स्वभाव पूरे वह भी सभा में लिखकर एक दूसरे के हाथ में देकर प्रहोचन कर लवें सन्तुष्टी होने पर दोनों को परस्पर विवाह उत्पन्न उत्पन्न है।

(१६) विवाह की स्वयवर रीति — आर्यवर्ष दश में स्वयवर कन्या तथा चली आ रही है जा सबसे उत्तम रीति होती है।

(१७) विवाह से पूर्व वर तथा कन्या का एकान्त में मिलना चाहिए — कन्या तथा वर का विवाह से पूर्व एकान्त में मिलना चाहिए। क्योंकि युवावस्था में स्त्री तथा पुरुष का एकान्त साथ दृश्य कारण है।

(१८) कन्या के विवाह का उत्तम समय जिस दिन कन्या रक्त्वसा होकर सुदृढ हो तब वेदा और मन्थर रव के अन्त क्षणम्प्रादि द्रव्य तथा शुद्धि का होना करन चाहिए तथा विद्वान् पुरुषों तथा सिद्धा का साथ योग्य संस्कार करन चाहिए।

शास्त्रार्थ का खुला चैलेंज

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर स्त्रियों को
अपमानित होने से बचाने का सकल्प

अनुराधा अग्रवाल (अमृतसर)

गत 8 मार्च 99 का अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर महिलाओं को और अधिक सम्मान एवं अधिकार देने का सकल्प ध्यान 2 पर लिया गया। वैदिक सस्कृति में तो आदिकाल से ही स्त्रियों को अत्यंत श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। गाम्भीर्यपूर्ण मुद्रा धारण न करने कितनी विदुषी महिला हमारे नज़र पर चमक रही हैं। राष्ट्र उन्मान में महिलाओं का स्थान किसी भी दृष्टि से न्यून नहीं है यही कारण है कि स्त्रियों को सर्वदल में भी 33 प्रतिशत आरक्षण का व्यवस्था पर गहन चिन्तन हो रहा है।

परन्तु दुर्भाग्य है कि जिन सङ्गठित सक्तीय अवैदिक विचारों ने हमारी वैदिक सस्कृति को कातराई है, उनका कुप्रचार किया जा आज भी कुछ तत्व उस दिशा में प्रयत्नशील हैं। उन्होंने इतिहास से कुछ सीखा, वहीं कि हम किमना भवका परिवर्तन भुगत चुके हैं। ऐसा ही एक बुद्धि कुप्रचार गठ दिने हमारे नवदीर्घ की अमान्यता पर यमुनागढ़ के सूर्य चन्दर के कथा समारोह में देखने को मिला जिसका आयोजन ब्रह्मचारी अखिलानन्द जा ने किया था। हमारे का सत्य के साथ प्रमुख शक्यार्थ भी यहाँ उभरिपत थे। विद्वानों ने यहाँ एक बड़क शस्त्री जिन्हे वालस भ भटक शाली कहना अप्यादा म्यादीपित है। यह भी प्रवचन करता था। विद्वानों पाण्डाल से बोधना कर दी कि स्त्रियाँ वेद मन्त्र नहीं कात सकती गायत्री मन्त्र बोलने का भी उन्हें अधिकार नहीं इतना ही नहीं उन्होंने चैलेज की शैली में कहा स्त्रियों का ओ३म् नहीं बोलना चाहिए। ओ३म्, नम तिस्य नमो स्त्रिया केवल नम तिस्य का सकलत हैं। आर्यों ने भी ओ३म् मन्त्र अग्राह्य को भी जब 'गन्दीश' करे। उनका सात प्रथा को भी उल्टा कर दिया कि कात कर सब कुप्रचार की बकालत की और प्रेरित किया कि स्त्रियाँ इस सति प्रथा को अस्वीकार भास से देखें। उस अवसर पर का मत के अधिकार को सिद्ध

करने के लिए कोई वैदिक शास्त्रीय प्रमाण न होते हुए भी उन्होंने जिस निर्लज्जता से सब कुछ कहा सामान्य श्रोता (स्रोत) को सुनते रह उनकी तो कोई प्रतिक्रिया न हुई परन्तु विवेकशील स्वाध्यायी सामाजिक समजाल के समर्थक वैदिक जनो को इस प्रवचन से मानसिक पीडा हुई यह तो विलम्बित ठठे जिस नाति का तो गा का स्थान देते हैं उसका चोर अपमान। बात बकते फैलत आज समाज के लोगो व गायत्री परिवार के लोगों द्वारा गायत्री को सब सैकड़ों की सख्या में पाण्डाल स्थल पर गायत्री मन्त्र बोलते हुए पृथुचे जिनका नेतृत्व महिलाएँ कर रही थीं वो उच्छ स्वर से वेद मन्त्र गायत्री मन्त्र व ओ३म् बोलती जा रही थीं। पाण्डाल से पकूने ही वे कि पुलिस ने चारों ओर से घेरा डाल कर जाने से रोक दिया। कात कर अनुरोध करने के बावजूद भी भटक शास्त्री की बहुर सडक पर पथरी। वैदिक विद्वानों ने (बहुत नाम है) स्थानापाय के कालन नहीं लिख रहा) श्री शस्त्री जी से अनेक प्रश्न किए परन्तु एक प्रश्न का भी युक्ति पूर्ण समाधान वो नहीं कर पाए। गायत्री परिवार के महानुभावों के प्रत्यक्षीय योगदान से पुन वेद के 2 मन्त्र विद्वानों ने प्रस्तुत किए कि इसमें स्त्रियों को भी मन्त्र पढ़ने का अधिकार है आप कोई प्रमाण दें। जिसमें निषेध हो। परन्तु वो कोई प्रमाण न दे सके काफ़ी विचार विनिमय हुआ परन्तु कोई सन्तोष जनक समाधान प्रस्तुत न कर पाए धीरे से पाण्डाल को लौट गए। हलन्तपात अनेक बार प्रमाण देने के बावजूद वो सार्वजनिक विचार विमर्श के लिए तैयार नहीं हुए। वष से स्त्रियों में मानसिक पीडा अपमान भावना एकी जाति का सार्वजनिक अपमान का कुकुल मन्त्र बन सक यह केवल नाटक बन कर न रह जाये।

इतिवृत्त जैसा उन्होंने पृथ्वी कार्यक्रम आयोजित कर एकी जाति का सार्वजनिक अपमान का कुकुल कतमा है उस पाप के निवारणार्थ श्री शस्त्री की (बुद्ध) से आर्य विद्वानों का खुला शालार्थ कहा स्वाध्याय का निषेध काफ़ी प्रमाण केवल 'वेद' हो जिन्हे आर्य समाज

ऋषि दयानन्द को याद करो

ने प मन्त्राचार्य विमर्श सिद्धांत शस्त्रीय मन्त्रोपलोक कात व वेदिक बहिर विचार कल्लिखन (इतिवृत्त)

आर्य श्री जगत गुरु ऋषि दयानन्द को याद करो।

करो वेद प्रचार विश्व में समय न अब बर्बाद करो।

नव सतसर आ गया जग में नव सन्देश लिए।

स्वामी विरजानन्द के सच्चे शिष्य धर्म के लिए जिए।

ऋषि वर दयानन्द ने सचमुच जीवन भर उपकार किए।

वेदामृत पिलाया जग को स्वयं मयकर जहर लिए।

वयानन्द के शीर सेतिका निर्बल हो सिंह नाद करो।

करो वेद प्रचार विश्व में समय न अब बर्बाद करो।

आज जगत में वेद विरोधी पाखण्डी है जोरो पर।

मानवता तो विलख रही है घूम रहे हैं दुष्ट निडर।

मासाहारी और शराबी बढते जाते हैं पापर।

यवन और ईसाई पापी मस्ती में हैं रहे विहर।

कुत्रा बनी लो वक्र सुदर्शन मन में नहीं विशाद करो।

करो वेद प्रचार विश्व में समय न अब बर्बाद करो।

याद रखो इस दुनिया में जो भले काम कर जाता है।

अबला चीन अन्धधो को जो अपने नैसर्गता है।

विघ्न और बाधाओं से जो कभी नहीं रहता है।

धन्य उसी का तो जीवन है जग में आधार पाता है।

स्वामी श्रद्धानन्द बनी तुम श्रीराम प्रभाव करो।

करो वेद प्रचार विश्व में समय न अब बर्बाद करो।

युवक-युवतियाँ विगत गए हैं गन्दे गाने गाते हैं।

गीता रामायण वेदों को कलित श्रवण बताते हैं।

स्वास्थ्य-वर्धन दिया तो पणले निर्बल हो दुख पाते हैं।

राम लक्ष्मण से ब्रह्मा अब कही नजर न आते हैं।

अर्जुन भीम नकुल सी पैदा फिर से तुम जीलाद करो।

करो वेद प्रचार विश्व में समय न अब बर्बाद करो।

अगर मलाई वाहो तो तुम नियम एक ये अपनानो।

कथनी करनी एक बनाओ दुनिया में इच्छत पाओ।

वेदों का स्वाध्याय करो विद्वान् अनूठे बन जाओ।

अपने प्यारे आर्यावर्त को भूमडल पर बमकाओ।

पाखण्डी के बधन ठोको जम-जम को आजल करो।

करो वेद प्रचार विश्व में समय न अब बर्बाद करो।

मन्दिर अमान्यलुर यमुनागढ़ से प्रार्थना करता है कि वह अपने को कोई प्रमाण न दे सके काफ़ी विचार विनिमय हुआ परन्तु कोई सन्तोष जनक समाधान प्रस्तुत न कर पाए धीरे से पाण्डाल को लौट गए। हलन्तपात अनेक बार प्रमाण देने के बावजूद वो सार्वजनिक विचार विमर्श के लिए तैयार नहीं हुए। वष से स्त्रियों में मानसिक पीडा अपमान भावना एकी जाति का सार्वजनिक अपमान का कुकुल मन्त्र बन सक यह केवल नाटक बन कर न रह जाये।

इतिवृत्त जैसा उन्होंने पृथ्वी कार्यक्रम आयोजित कर एकी जाति का सार्वजनिक अपमान का कुकुल कतमा है उस पाप के निवारणार्थ श्री शस्त्री की (बुद्ध) से आर्य विद्वानों का खुला शालार्थ कहा स्वाध्याय का निषेध काफ़ी प्रमाण केवल 'वेद' हो जिन्हे आर्य समाज

व स्वयं श्री बुद्ध शास्त्रा जा न स्वीकार किया है। तस्कारों का उर्वस्विति में समारोह प्रवृत्त सत्य अस्तित्व के निर्णय इतु शस्त्रार्थ हा किसी कदुता या इष स हम ऐसा नहीं कर रह वेद प्रमाण से जा सिद्ध निर्णय हो उस सब स्वाकार को सति प्रथा पर भा तम शरार्थ का खुला निमन्त्रण देते हैं। अगर सप्रमाण सिद्ध नहीं कर सकत ता ब्रा शास्त्रा को मन्त्र से तमाम मन्त्रिःओं से धंधा माने।

नै समकाल हू स्त्रियों का हम अगर इस भेद भाव अपमान व पुन सति वैसी बुद्धि से बच पाये तब ही अन्तराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया सार्बक होत।

नैशनल कलेज ऑफ नर्सिंग स्कूलों में पर्यावरण दिवस

23 99 को नैशनल कलेज ऑफ नर्सिंग स्कूलों (निल होस्पिटल) में पर्यावरण दिवस बहुत उत्साह और उत्साह से मनाया गया। इस शुभ अवसर पर शहर के गणमान्य कुटुम्ब लोग व ओकका आर्य पुत्री पाठशाला सीनियर सैकेण्डरी स्कूल का स्टाफ और ग्रीनीपल भी अपने हुए थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के महामन्त्री श्री जयिन्दी कुमार जी शर्मा किसी कारण नहीं पहुँच सके इसलिए मुख्य अतिथि के रूप में श्री मनोहर लाल जी अहिष्कार साहित्य विभाग ने सभा की ओर से भाग लिया। कालेज और स्कूल की मैननेज कमेटी के सदस्य और मेनेजर श्री हसना की सफाई बैन साहित्य डा कोमिन्ग सिंह डड बन्धेदार श्री हरिसिंह जी एन सी गबदीवाल सरकार सम्पूर्ण सिंह जी Retd BDO आदि बहुत से सदस्य बहा आये हुए थे। ग्रीनीपल श्री धर्मसिंह भी सहयोग डा कोमिन्ग सिंह डड आदि ने सभाका बहुत फायदा दे स्थापन किया। इस कालेज में लड़कियों को पढाई के साथ सिलाई कढ़ाई और कम्प्यूटर की शिक्षा भी दी जाती है। श्री मनोहर लाल जी ने यहां कालेज की प्रगति का ज़रूरत दिखाने पर सभा के लिए भी कुछ पर्यावरण पर लिखी पुस्तक का विमोचन किया।

ग्रीनीपल वर्क सिंह जी ने कालेज की वार्षिक रिपोर्ट पेश की। यह कालेज लोगों के दान से चलता है इसको किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती है। लोग बाहर के लोगों से इलेक्ट्रिक केबलें खरीदें यह सब ग्रीनीपल की की मेहनत और लगन है हिम्मा है जो कि इस कालेज को चला रहे हैं। 135 छात्रों

मनोरंजन प्रस्तुत किया जिसका लोगो पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस पर डा डड साहित्य और सरदार सम्पूर्ण सिंह Retd BDO ने बहुत प्रशंसाती वक्तव्य दिये। पत्नी को और दया को इन कैसे सुदृढ़ रहे इस पर श्री हरि सिंह जी एन सी ने बहुत सुन्दर वक्तव्य दिये।

गणम प्रोग्राम के हर दो में अच्छे काम करने वाली छात्राओं को पुरस्कार दिये गये। पर अपने पर सम्मानित किया गया छात्रों के साथ और भी सभी छात्राओं को विमोचने इस कार्यक्रम ने भाग लिया को सम्मानित किया गया। इसके साथ ही प्रतिष्ठित महामन्त्री को भी सम्मानित किया गया। अन्य में श्री मनोहर लाल जी ने सभको सम्बोधित करते हुए कहा कि आर्य सभा का शिक्षा क्षेत्र में महान योगदान है। स्वी शिक्षा के लिए आर्य सभा ने बहुत कार्य किया है। इस कालेज का पढाई में छात्रा भी है इसीलिए सीनियर सैकेण्डरी स्कूल और नैशनल कलेज आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की देख रेख में चलाने का रहे हैं। ग्रीनीपल वर्क सिंह सहयोगी की का भी धन्यवाद किया जो Retd सरकारी ग्रीनीपल हैं। इस स्कूल और आर्य सभा को उन्होंने जीवन दान दिया हुआ है यह वही वेष के काम करते हैं। अन्य रिप्रेजेंटेटिव को बाहर से पैसे मंगवा मंगा का इस कालेज को चला रहे हैं।

—जयिन्दर लाल आर्य

वैदिक सिद्धान्त शिविर सम्पन्न

अब आर्य सभा आर्य गुरुकुल सी 33 में महर्षि दयानन्द सिद्धान्त वैदिक सभा की ओर से 14 दिवसीय वैदिक सिद्धान्त प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ जिसमें आर्य जगत के महान स्वामी उपसवी महामन्त्री नेजली ने भाग लिया किन्तु सांवेदिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी योगानन्द की सरस्वती स्वामी जगदीशचरण दास सरस्वती स्वामी लक्ष्मणचरण सरस्वती आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के प्रधान डा शिव कुमार

रावठी दर्शन विमन में भारत सरकार से सम्मानित दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री प्रभा कुमार और डा वीरपाल विद्यालंकार आदि ने भाग लिया।

पच कर्मठ कार्यकर्ताओं ने वाचस्पत्य सेकण्ड अपने आर्यको आर्य सभा व राष्ट्र को समर्पित किया और देश के कोने कोने से अपने हुए 80 शिष्यादिधियों ने वैदिक सिद्धान्त का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

—आर्य मुनि



ईसाई मिशनरियों को धर्म परिवर्तन से रोका जाए

आर्य सभा सैक्टर 9 पञ्चकुला की अंतरंग सभा अपनी बैठक दिनांक 12 99 तथा रथिपरीम अधिवेशन की साधारण सभा दिनांक 7 99 सर्वसम्मति से भारत सरकार से माग करती है कि भारत में ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन के कारण उत्पन्न बन आक्रोश और ईसाईयों द्वारा दाने पड़काने की पुनरुत्पत्ति को रोकने के लिए भारत सरकार निम्नलिखित कानून बनाए।

1 भारत के साधारण में धारा 46 तथा 51 ए (एन) के अनुसार भारत सरकार का यह साधननिष्ठ कार्यक्रम है कि सम्पूर्ण भारत में धर्म जाति को अनुसूचित जातियों और धर्मवासियों की संस्कृति को रखा को जाए। ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन द्वारा उनकी संस्कृति नष्ट की जा रही है। इसलिए ईसाई मिशनरियों को इस प्रकार की गतिविधियों पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाए।

2 इस हेतु विदेशों से सभा सभा स्वास्थ तथा शिक्षाप्रसार के नाम पर प्राप्त धन का दुरुपयोग ईसाई सभाएं धर्म परिवर्तन के लिए कर रही हैं और देश के उत्तर पूर्व में आर्य समाज को प्रोत्साहित कर रही हैं। इनकी इस प्रकार की गतिविधियों पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाए।

3 यह सभा उन सभी विदेशी राजनीतिक दलों को निन्दा तथा भर्तन करती है जो अन्य सभकों के बोट के लोभ में ईसाई मिशनरियों का समर्थन कर रही हैं और बिना सभाओं के बिना बिना दुष्कार कर रही हैं उनकी जानकारी के लिए महामन्त्री आर्य ईसाई मिशनरियों के बारे में लिखें गए विमन नीचे दिए जाते हैं :-

"If instead of confining themselves purely to humanitarian work such as education, Medical

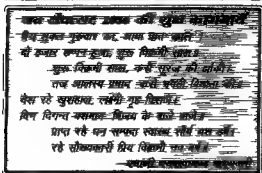
services to the poor and the like they would use these activities for the purpose of proselytizing I would certainly like them to withdraw. Every nation considers its own faith to be good as that of any other. Certainly the great faith held by people of India are adequate for the people." (M.K. Gandhi) Foreign Missionaries" (New India April 23 1931 Page 83)

अर्थात् - यदि यह ईसाई मिशनरी सभाएं जैसे शिक्षा स्वास्थ इत्यादि द्वारा विदेशों की सहायता करने के स्थान पर अपनी इन गतिविधियों द्वारा धर्म परिवर्तन करते हैं तो मैं निश्चित रूप से कहूंगा कि यह चले जायें। अपने राष्ट्र के पास अपना धर्म होता है और यह अपना ही बेश होता है जिसका किसी दुसरे का। निश्चित रूप से भारत के लोगों का ऊंचा धर्म तथा विश्वास भारत के लोगों के लिए पर्याप्त है।

यह हिन्दू विदेशी राजनैतिक दलों को कि अपने को महामन्त्री या को अनुयायी मानते हैं उक्त विचारों पर ध्यान दें और हिन्दू विदेशों को त्याग दें।

पारित हुए प्रस्ताव को एक प्रति प्रेषित की जाए भारत के राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री गृह मंत्री सूचना एवं प्रसार मन्त्री राज्यपाल हरियाणा/राज्य/हिमाचल प्रदेश मुख्य मन्त्री हरियाणा/राज्य/ हिमाचल प्रदेश सभी राजनीतिक दलों के प्रधान Administrator Chandgarh Deputy Commissioner Panchabula, प्रधान केन्द्रीय आर्य सभा चण्डीगढ़ आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब/हरियाणा लार्डरिश्म सभा नई दिल्ली।

यह प्राप्त आर्य मंत्री



आर्य समाज नवाकोट का उत्सव

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी ऋषि बोधोत्सव (महाशिवरात्रि वर्ष) आर्य समाज नवाकोट अमृतसर में बड़ी श्रद्धा व धूमधाम से मनाया गया। बच्चों ने ऋषि दयानन्द के जीवन पर भजन गाये, पंडित जगत वर्मा जी के मनोहर भजन हुए व महोपदेशक पंडित निरजन देव जी इतिहासकारी ने प्रभावशाली उपदेश दिया व ऋषि को बताने हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इस सभा की अध्यक्षता श्री सुभाष या भाटिया प्रधान आर्य समाज कक्षा

श्रद्धानन्द ने की व समाज की भलाई के लिए 11000 रुपये आर्य समाज श्रद्धानन्द कक्षा का ओर से दान दिया। अन्य ने अर्द्ध ऋषि सागर भी चित्रित किया गया। इसमें रहित नगर आर्य समाज हरिपुरा आर्य समाज लक्ष्मणसर आर्य समाज माऊल टाऊन आर्य समाज व रामदास आर्य समाज का भी अमृतपूर्व सहयोग मिला।

—बालकृष्ण

दयानन्द पब्लिक स्कूल में श्रम

27 फरवरी रविवार को दयानन्द पब्लिक स्कूल दोपहर सितमा रोड लुधियाना में प्रातः 11 बजे एक बृहद श्रम का आयोजन किया गया। यह आयोजन गौरी दत्तजी क्लास के विद्यार्थियों ने मिलकर किया। दत्तजी क्लास के उन सब विद्यार्थियों जिन्होंने अपना वार्षिक परीक्षा में कैंटन है वह श्रद्धापूर्वक यत्नमान बने।

स्कूल के प्रबन्धक श्री अरुणानन्द आर्य जी ने विधिपूर्वक यह सम्पन्न करवाया। इस अवसर पर आर्य सीनियर स्कूल के प्रबन्धक श्री ओम

प्रकाश जी एडवर्ड एम्स दयानन्द पब्लिक स्कूल का प्रबन्ध समिति के मनवीर सदन श्री ओम प्रकाश या गुप्ता एम्स श्रीमान विनोद शर्मा जी ने बच्चों को स्मृति चिन्ह प्रदान किए। गौरी दत्तजी क्लास के बच्चों ने दत्तजी क्लास के बच्चों का अलविदा पार्टी दी।

दत्तजी क्लास के बच्चों ने अपनी अभ्यासिकाओं एम्स प्रबन्ध समिति का आभार प्रकट किया। एम्स उन सब को उत्तम प्रदान किए। —सुनील पतिका

आर्य समाज कटुआ का चुनाव

आर्य समाज कटुआ (चम्पू और कर्मभार) का वार्षिक चुनाव दिनांक 21.2.99 को हुआ जिसमें निर्गतिरहित पदाधिकारी सर्व सम्मति से चुन गए। श्री परतप भूषण महाजन सरक्षक श्री करम चन्द महाजन सरक्षक डा. दुष्पन्त डबल सरक्षक डा. कुलवीर कुमार महाराज प्रधान आ राम धन कार्यकारी प्रधान श्री विजयेश्वरी लाल महाजन आ सरदारी लाल उपप्रधान श्री सुरेन्द्र लाल बजाज महामन्त्री श्री ओम प्रकाश गुप्ता मन्त्री आ विजय लाल भारती प्रचार मन्त्री श्री सुभाष डबल कोषाध्यक्ष श्री सुमेश कुमार पुरोहितलयाध्यक्ष श्री मनोहर लाल ट्योरवीर श्री मदन लाल रैना श्री दुर्गा दास श्री गायत्री प्रसाद सदस्य आचार्य — ओम प्रकाश गुप्ता मन्त्री

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी हरिद्वार

का

आंवला, केशर, चांदी व पिस्तायुक्त,

कोलस्ट्रॉल रहित

विटामिन 'सी' से भरपूर

अमृत रसायन

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

की औषधियों का सेवन करे।



शास्त्रा कार्यालय :

६३, गली राजा केदारनाथ,

चावडी बाजार दिल्ली-११०००६

श्री अरविजी कुमार या श्याम एडवोकेट महामन्त्री सम्पादक द्वारा वर्ष हिन्दू रिटिग प्रेस/एडिटेड रिटिग व जालन्धर से मुद्रित होकर अब मकादम कालास मुद्रित भवन चौक किसानपुर जालन्धर से इसकी स्थापना आर्य प्रतिनिधि सभा पत्रिका के लिए प्रकाशित हुआ।

में प्रवृत्त होते हैं किन्तु समस्या (शेष पृष्ठ 4 पर)

समापदकीय -85

पुण्य भूमि हरिद्वार का उत्सव

गुरुकुल कांगड़ी का स्वामी भद्धानन्द जी महाराज ने पित्त स्थान पर हरिद्वार में सर्वप्रथम आरम्भ किया था जो बिजौनर रोड पर कांगड़ी ग्राम के समीप गया की धार के तट पर स्थित है उस स्थान को पुण्य भूमि कहा जाता है। वहा स्वामी भद्धानन्द जी द्वारा बनवाया गया विद्यालय का भवन अब तक विद्यमान है। सोच भवन गया की धारा में बह गए है। गैराला का भवन फार्मसी का भवन तथा दूसरे कई भवनों का कहीं नाथों विमान नहीं है परन्तु विद्यालय भवन सुरक्षित है। यह तक सुरक्षित है कि इस भवन की ओर गया की धारा को बहता हुआ वैद्य कर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इसकी रक्षा का वायित अपने ऊपर ले लिया था। साथ ने गया की धारा के बहाव को कम करने के लिए व विद्यालय भवन की ओर से गिटटी के कटप को रोकने के लिए कई ठोकरें लगाईं इससे गिटटी का कटप रुक गया और इससे यह भवन तो सुरक्षित हो गी गता है इसके साथ ही पुण्य भूमि का कटप भी रुक गया तथा यह भूमि भी सुरक्षित हो गई। अब यह स्थान एक टापू सा बना हुआ है इसके लोगों ओर गया की धाराएं बहती है बीच में यह स्थान है। यदि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब परबरो की ठोकरें न बनवाती तो यह पुण्य भूमि व विद्यालय भवन कभी का गया की धारा में बह गया होता।

इस भवन के कई कमरे गिर चुके थे खेत लग गए सभी कमरो की टूट चुकी थी दूने का पलस्तर दीवारों को जोड़ चुका था खिड़कियां बरकाजे तब लोग उठा कर ले गये थे यह एक पण्डित मान रह गया था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री हरवस लाल जी शर्मा ने इसकी सुरक्षित की जिम्मेवारी अपने ऊपर ली और इस सारे भवन की सुरक्षित करवायी आरम्भ करने की गत दो वर्षों में सुरक्षित का कार्य पूरा हुआ है। अभी भी कुछ कार्य रोह है। इस भवन की सुरक्षा के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने वहा एक व्यक्तित्व को अपने व्यव पर रखा हुआ है जो भवन और भूमि की देख भाल करता है।

मान्य पण्डित हरवस लाल जी शर्मा का इस भूमि से विशेष लगाव है जहा इसकी सुरक्षा के लिए उन्होंने बहुत सा व्यय किया है वहा प्रति वर्ष वैशाखी के अवसर पर 12 अप्रैल को पुण्य भूमि में एक दिन का उत्सव किया जाता है। इस अवसर पर भा बहव ऋषि लगर किया जाता है जिसने जगदगो स्त्री-मुकुष भोजन करते है आस पास के गांव के लोग भी वहा ऋषि लगर में पहुँचते है। इस ऋषि लगर पर जितना भी व्यय आता है वह सारा प हरवस लाल जी शर्मा स्वयं वहन करते है। गत कई वर्ष से यह यह व्यव करते आ रहे है। योगी फार्मसी कनजल के अधिकारी भोजन का सारा प्रबन्ध पण्डित जी की ओर से करते है। प्रतिवर्ष पंजाब से भारी संख्या में वहा आर्य महानुभाव पहुंचते रहे है और इस उत्सव को सफल बनाते रहे है। गत वर्ष भी पालनवर सुधियाणा लभुत्तर बरिष्ठा बुरी बननासा योग नवाहाहर तथा पम्पौगव आदि कई स्थानो से भारी संख्या में लोग हरिद्वार पहुंचे थे।

प्रतिवर्ष की नाति इस वर्ष भी वैशाखी के अवसर पर एक दिन का उत्सव पुण्य भूमि में किया जा रहा है। इस उत्सव में पंजाब से बहुत सारे महानुभाव गत वर्ष की नाति वहा पहुंचने चाहिए। पति निवच ठहरने की व्यवस्था गत वर्ष की नाति गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय में होगी। मेरी पंजाब की सभी आर्य समाजों के अधिकारियों से प्रार्थना है कि पुण्य भूमि के उत्सव में अवश्य पहुंचे। पुण्य भूमि की रक्षा सुरक्षा व उसकी रक्षित का वायित आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने ऊपर लिया हुआ है क्योंकि इसके सम्भालन स्वामी भद्धानन्द जी

महाराज पंजाब के रहने वाले थे और इस भवन के निर्माण में पंजाब के लोगों ने अपना महान योगदान दिया है आज भी इस भवन में लगे पुराने तमपेटों को देख कर पता चलता है कि कितना आर्थिक सहयोग पंजाब के लोगों ने इस भवन के बनने में दिया है।

इस स्थान पर अभी बिजली की व्यवस्था नहीं है कांगड़ी ग्राम तक अब बिजली पहुंच चुकी है गया की धारा जो कांगड़ी ग्राम के पास से बहती है उसका बहाव बड़ा तेज है और उसका गत भी बहुत चौड़ा हो गया है इस कारण पुण्य भूमि तक बिजली पहुंचने के लिए खन्ने लगाने में कठिनाई आ रही है। परन्तु हमारा प्रयास है कि किसी प्रकार इस समस्या का हल करके वहा बिजली भी पहुंचाई जाए जिस समय इस स्थान पर बिजली पहुंच जाएगी उस समय वह स्थान बहुत दमनीय व उपयोगी बन जाएगा।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब अपने कार्य का पालन कर रही है परन्तु अन्य भी ऋषि प्रेमी महानुभावों को इस ओर ध्यान देना चाहिए यह यह स्थान है जहा पर महर्षि दयानन्द का गुरुकुल खोलने का स्वप्न पुण्य स्वामी भद्धानन्द जी ने वहा गुरुकुल खोल कर पूर्ण किया था। सारे भारत में सर्व प्रथम यहा गुरुकुल की स्थापना हुई थी यह स्थान वर्षों बीरान पड़ा रहा परन्तु अब इसे फिर आबाव दिया जा रहा है। इसे उन्नत करना केवल प हरवस लाल जी शर्मा व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का ही कर्तव्य नहीं है यह प्रत्येक आर्य समाजी का कर्तव्य है। हमें इस ओर ध्यान देना चाहिए। आर्य भाई बड़ने इस कार्य को सन्तुष्ट करने के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अपना सहयोग दें।

मैं फिर पंजाब के सभी आर्य-भाई बहनों से प्रार्थना करता कि यह पुण्य भूमि हरिद्वार के उत्सव में अवश्य पहुंचें और इस उत्सव को सफल बनाएं।

अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट
सभा महानगरी

आर्य मर्वादा का शुल्क भेजें

मैंने पहले भी लिखा था पुन फिर लिख रहा हूँ जिन ग्रहक महानुभावों ने 1999 का अपना शुल्क अभी तक नहीं भेजा वह शीघ्र अति शीघ्र बैंक ड्राफ्ट या मनी ऑर्डर द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम सभा कार्यालय में भेज दें सभा कार्यालय से इसके लिए पत्र भी लिखे जा रहे है। नैतिकता इसी में है कि ग्रहक महानुभाव स्वयं बिना लिखे ही अपना शुल्क भेजें। शुल्क वार्षिक 50 रुपये है जो आसानी से भेजा जा सकता है। यदि आप 500 रुपये भेज दें तो आप आजीवन सदस्य बन जायेंगे इससे बार-बार शुल्क भेजने का झझट ही समाप्त हो जायेगा। आर्य समाजों व शिक्षा संस्थाओं को तो आजीवन शुल्क 500 रुपये अवश्य भेज देना चाहिए। आशा है बार-बार न लिखना पढेगा आप अपना शुल्क शीघ्र भेज देंगे

अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट
सभा महानगरी



स्त्री आर्थ समाज मोहल्ला गोविन्दगढ़ जालन्धर का उत्सव

स्त्री आर्थ समाज मोहल्ला गोविन्दगढ़ जालन्धर का वार्षिक उत्सव फरवरी मार्च 99 से 7 मार्च 99 तक बड़ा सुप्रभास से मनाया गया। आचार्य अखिलेश्वर जी के प्रह्लाद ने समवेद परावन यज्ञ पहली मार्च 99 से प्रारम्भ हुआ। 1 मार्च 99 के मुख्य वक्तामान श्री चरित गोपाल एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती किरण गोपाल द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया गया। श्री चरित गोपाल की पुष्प माला की शायरी रचयत्री श्रीमती (प्रधान स्त्री आर्थ समाज अन्तु होशियापुर) भी साथ पधारी। अथर्व पञ्चमना की। श्री चरित ने प्रतिनिध ज्ञात पत्नी सहित यज्ञ में पधार कर यज्ञ का शांता बढाई। प्रातः यज्ञ भवन प्रचमन 6.30 से 8.30 तक प्रतिदिन होता रहा। सायंकाल यज्ञ 4 बजे तक जिसमें सायंकाल आचार्य अखिलेश्वर जी का प्रवचन माला पर होता रहा। प्रातः पहला मार्च से 7 मार्च तक 5.30 से 6 बजे तक सायना मा अखिलेश्वर जी करवात नह सायंक सायको न समय पर पधार कर सायना का साध उठाया बढ पाठ करवात नह सायको न किया। प्रतिनिध भवन आ जगत धमा भजनापदेशक आर्थ प्रतिनिधि सभा पञ्चाङ्ग के दानो समय होता रहा। पू स्वाभा सुपना बति सन्नायिन (सुधिषाभा) ने पधार कर यज्ञ का शांता बढाई। शनिवार 6 मार्च 99 का माहला सम्मेलन 2.30 बजे से 5.30 बजे तक मनाया गया। महिला सम्मेलन का अध्यक्षता श्रीमती स्वर्ण का यत (मिलान) ने की। इस सम्मेलन में लुधियाना से श्रीमति कमला 'ना आर्थ व स्त्री आर्थ समाज लान कावात स्त्री आर्थ समाज साहजु नगर स्त्री आर्थ समाज माहल्ला टाउन की बहने ने समय पर पधार कर हमारा उत्साह बढाया एवं उत्सव में शांता बढाई।

मा स्वर्ण यत (मिलान) के मध पर पधारने पर उनकी स्वागत आभावाद सहित स्वाभा सुपना बति 'ना न किया मा सुपनायति जा का आभावाद सभा में प्राप्य किया।

उत्सक परचात् श्रीमति कमला या बदा (लुधियाना) अध्यक्ष पञ्च का

लुधियाना श्रीमती उषेश वर्मा प्रचन किया आर्थ सभा लुधियाना शायती इन्द्रमोरी गौतम (बन सहर श्रीमति सरला भारद्वाज प्रोफेसर एस डा कालेश जालन्धर श्रीमति सत्यधामा या एवं बहन कुन्ना की करवात पुर श्रीमति सुरीला भगत एवं श्रीमति कमल कान्ता आनन्द भादल टाउन जालन्धर श्रीमति सन्तोष पवन प्रचन स्त्री आर्थ समाज मोहल्ला गोविन्दगढ़ जालन्धर श्रीमति सायबजी अग्रवाल सराधिका श्रीमति आनन्द पुती एवं अन्य बहने ने फूल मालाओं से श्रीमति यत का स्वागत किया जिसमें कुमारी सन्तोष सूरी ने कमला आर्थ पञ्चाङ्ग का भी सम्मिलित थी। माहला टाउन लुधियाना की बहने न मा स्वागत किया।

महिला सम्मेलन का उद्घाटन भाषा मा स्वामी सुपनायति जा ने किया। श्रीमति कमला अर्वा (लुधियाना) श्रीमती सरला भारद्वाज जी राधेश्याम मन्दिर की सन्नायिका मा दमयन्ती जा ने अपने अपने विचार बढे ही अजब बने से रखे। मा आचार्य अखिलेश्वर जा ने गीता पर प्रवचन दिया। मध का सवालन श्रामति लुधियाना नागपाल (कोषाध्यक्ष) स्त्री आर्थ समाज माहल्ला गोविन्दगढ़ ने बढ ही सुचारु रूप से किया। भवन आ जगत स्वर्ण जी एवं श्रीमती आनन्द भगत के हुए। भवने में इतना रस था कि सभी बहने बढे जालन्धर की लगभग सभी स्त्री आर्थ समाजों ने माग लिये पधारल जगल्लख भरा हुआ था। अन्त में श्रामति स्वर्ण यत जी ने अध्यक्षता पञ्चमना में कहा कि हमें वेद प्रचार के कार्य और अधिक बढाना चाहिए। वेद का प्रचार पर एवं अन्यत्र होना चाहिए। धन्यवाद एवं शक्ति पाठ के परचात् महिला सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सम्पन्न प्रसाद बाँटा गया एवं जलपान करवाया गया।

रविवार 7 मार्च को प्रातःकाल 7 बजे यज्ञ प्रारम्भ हुआ पूर्णहृति 9 बजे दायी गई।

यज्ञ इवन कुण्ड पदारल में लगाए गए उठा पधारलाने से था। 6 हवन कुण्डों पर चारों ओर चबमनो ने बैठकर यज्ञ किया। सभी ने गल में पीत यज्ञ डाले हुए से समय बढा ही सुझावना व सुन्दर लग रहा था। सभी ने बढे ही शानता वातावरण से इवन यज्ञ किया। पूर्णहृति के परचात् मा आचार्य अखिलेश्वर जी यज्ञ के ब्रह्मा एवं स्वामी सुपनायति जी न सभी वक्तामनों की आशीर्वाद दिया कुल्लो की बर्षा की गई सभी को आशीर्वाद के फल दिए। पूरे दत्त बने ध्यवरोहण श्री चरित गोपाल जी ने सपरिवार किया। सब से प्रथम आचार्य अखिलेश्वर जी एवं पू सुपनायति जा ने आशीर्वाद दिया। इसके परचात् सरसक श्री एम प्रसाद जी प्रधान आ मुनीराल जी काषाध्यक्ष श्री भास्करदेव धवन एवं श्री गुरेश जा यन्त्री सभा इन आर्थ समाज माहल्ला गोविन्दगढ़ के अधिकारियों ने चरित गोपाल जी का पुष्प मालाओं से स्वागत किया व हरसल लाल जी शर्मा प्रधान (आर्थ प्रतिनिधि सभा पञ्चाङ्ग) ने भी समय पर पधार कर गोपाल जी का स्वागत किया और कहा कि इसी प्रकार जीवनानो में उत्सह होना चाहिए श्री चतुर्भुज जी मिलल मन्त्री गुरुकुल विरकाण्ड स्मारक उन्कोने करवात पुर आ राम कोहली प्रधान सत्य नायक मन्दिर ने भी श्री चरित गोपाल जी का स्वागत पुष्प मालाओं से किया। बहने ने श्रीमति स्नेह अग्रवाल श्रीमति कमला आर्वा श्रीमति सन्तोष धवन श्रीमति राज मोहन तोषी श्रीमति सुरीला भगत श्रीमति सत्य धामा तथा अन्य बहने ने भी पुष्प मालाओं द्वारा स्वागत श्री चरित गोपाल जा का किया ध्वजगीत करवात पुर के छात्रों ने गाथा जयधाम बहुत लगाए गए उसक परचात् सभी का प्रारंभ एव प्रसाद बाँटा गया।

अगत कार्यक्रम में लगभग 11 बजे सब से प्रथम प्रधान व हरसल लाल जी शर्मा के मध पर पधारने पर स्वागत किया गया भवन आ जगत धमा तथा श्री चरित कुल्लख

साथी के हुए। मा प्रधान जा न स्त्री आर्थ समाज को 5100 रुपया दान दिया और अपने विचार बनना के सामने रखे। मध मा प्रधान व हरसल लाल शर्मा जी के बहुत आभारी हैं जो कि उन्कोने अपने अमूल्य समय ने से हमें समय देकर हमारा उत्साह बढाया और हमारी प्रार्थना पर पञ्चवन का स्वीकृति है।

मा सुपनायति जी व धर्मन्व आर्थ सभा कार्यालयस्थल आ मा चतुर्भुज मिलल जी आचार्य नररा का प्रोफेसर दोआबा कालज जालन्धर श्रीमति सरला भारद्वाज जी की कि कानवाडा न कचरस आर्थ सब न अपने सुन्दर विचार बनना के सामने रखे मा सतिमगया परासर जा न था अपने विचार दिए। कच्चा क भवन एवं गुरुकुल करवात पुर क बहने न भवन पाए। अन्य ने मा आचार्य अखिलेश्वर जा ने गीता पर प्रवचन दिया। बचनों का जतिरितिक दिवस गया दो बहना को सम्मानित किया गया श्रीमति प्रवेश जी एवं श्रीमति सुपना जा (माहल्ला सत्य सिंह नगर) आर्थ समाज माहल्ला टाउन अहमदा होशियापुर रेतन कालीदा भट्टा गुजा भार्गव नगर गाथा नगर कानवाडा स जी प्रावर जी एवं दयानन्द भट्ट डन मोहल्ला आदि के लताभग सभी आय साना न अधिकारियों न पधार कर अपने सदस्यों सहित जा उत्सव का शांता बढाई बहने का उत्साह था बढाया। श्रामति रेणु मिलन क्रामान स्वराट मिलल श्रामति निरा एव माहल्ला लता सिंह नगर का बहने ने पूरा समाह बढे 'डड कर भग लिये आर्थ सभी काय व सहायता दिया स्त्री आर्थ समाज न सभ अधिकार बहना व सदस्या न न बडा ब्रह्मा व मन स काय 'किय अन्य में 24 व धन्यवाद व श्रान्त पठ के परचात् श्राव 'नगर क कार्यक्रम शुरू हुआ श्राव नगर सायंकाल 4 बजे तक चलता रहा श्री चरित गोपाल एवं क्रामान कच्चा माहल्ला न पूरा साथ दिवस उन्सव प्रत्यक प्रकार से सज्जन रहा उपरिस्थल बहने न अन्ता रहा

कृष्णा काष्ठन भवा

हरपाल नगर सुविधाना में 21वां वार्षिक आयोजन महाधन सम्पन्न

प्रति वर्ष की गति इस वर्ष भी हरपाल नगर वेलफेयर सोसायटी सुविधाना की ओर से गुलमोहर होटल के विशाल प्रांगण में 14.3.99 को प्रातः 9 बजे से 1 बजे वाह दोपहर तक एक विशाल वेद परम्परा यज्ञ का आयोजन किया गया।

3 कुशों के गिर्द 12 यजमान सपरिवार बैठे हुए थे। उनमें अधिक जोड़ें थे वे बिनका तुष विवाह द्वितीय वर्ष हुआ था। चक्र के ब्रह्म पं. बाल कृष्ण जी शास्त्री पुरोहित अर्ध सप्ताह बाजार नगर से उनका यात्रा प योगदान की शास्त्री पुरोहित अर्ध सप्ताह हवीकन दे रहे थे।

सबसे पहले सभा के प्रधान श्री धनराज बापर, मन्त्री श्री जयदेव लाल भट्टारी, कोषाध्यक्ष वेद प्रकाश गुप्ता, अर्ध सप्ताह साहनेवाल के प्रधान श्री खजीर चन्द शर्मा, श्री राजेन्द्र बेरी, श्री बुजोहन अरोड़ा, श्री निधान ने पुष्प मालार्पण पहना कर विद्यार्थी को सम्मानित किया।

प्रसिद्ध उद्योगपति श्री सुरेन्द्र कुमार जी सन्तोषी नगर वालों ने श्रेष्ठि प्रबन्ध की और इस कार्य के लिए 2100/- एवं चक्र के लिए एक टीन देखी की का दिया।

यज्ञ के प्रबन्धक श्री आना नन्द जी अर्ध ने समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा कि आज से 21 वर्ष पूर्व हमने वार्षिक यज्ञ आरम्भ किया था। दो तीन वर्ष तो हमें काफी परीक्षण करना पड़ा। परन्तु अब तो यह समारोह सारे नगर का समारोह बन गया। जन्मा बड़े पाप से इसकी प्रतीक्षा करती है और ब्रह्मा एवं उमाशिव दिखती है।

यज्ञ के ब्रह्म पं. बाल कृष्ण शास्त्री ने यजमानों की मनोपरीत इलावा एव यह की कार्याह्वय करम्मा। शास्त्री जी मनो का सरास अर्ध ही जन्मा को बता रहे थे प योगदान की शास्त्री बड़े सुरेन्द्र गं प ने वेद पाठ कर रहे थे बीच में वेद

मन्त्रों की व्याख्या एवं विद्यार्थी के भाषण भी होते रहे। सप्तम वार्षिक प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान प्रसिद्ध कथा वाचक ने अपने भाषण में कहा कि अद्य मैं देख रहा हूँ कि चक्र में मेरी जन्म की बसाव मैत्री हैं और वेद मन्त्र पढ़ रही हैं। यह सब महाशक्ति दयानन्द एवं अर्ध सप्ताह की कृपा है। इतने बड़े यज्ञ में अपने पर गुरु महत खुशी हुई। हमारे जुगुर्ग श्री अश्वानन्द अर्ध सुविधाना में कई स्थानों पर चक्र करवाते हैं और हम सबको यह व वेद प्रचार के लिए प्रेरित करते रहते हैं मैं उनका आभार प्रकट करता हूँ।

पुष्प स्वामी बलमुनि जी महाराज मुनक्कननगर वालों ने अपने एक घण्टे के भाषण में यज्ञ के लाभ एवम् श्रेष्ठि-दयानन्द की विचार धारा पर ओजस्वी भाषण दिया किसे जन्मा ने बहुत पसन्द किया। एक बड़े चक्र की पूर्णाहुति इसी गई जिसमें सैकड़ों स्त्री, पुरुषों ने गरिष्ठ सप्तरी इत्यादि ढाल कर भाग लिया। इस समय सब पर अर्ध प्रतिनिधि सभा पंचम के कार्यलय अध्यक्ष पं धर्मदेव जी अर्ध, प्रसिद्ध उद्योगपति श्री सत्यनन्द मुन्नाल, श्री मदन लाल चौपड़ा प्रधान मन्दिर कमेटी एव कई संस्थानों अर्ध सप्ताहों के अधिकारियों ने भाग लेकर समारोह की शोभा बढ़ाई उसके चरचात हजारों लोगों ने भण्डारे में भोजन किया इस समारोह को सफल बनाने में गुलमोहर होटल के मालिक श्री सुनील कुमार बापर तथा उद्योग परिवार, जयदेव लाल भट्टारी वेद प्रकाश गुप्ता, श्री राजेन्द्र बेरी, श्री बुजोहन अरोड़ा एवं अतिथि निधान ने अल्पत सहयोग प्रदान किया।

आयोजन अर्ध यज्ञ प्रबन्धक

लौकिकी में वार्षिकोत्सव सम्पन्न

बिहार राज्य के समग्रत विस्तार लौकिक नगर में स्थानीय अर्ध सप्ताह का उत्सव-उत्सव वार्षिकोत्सव के रूप में मनाया गया। 11, 12, 13, 14 एवं 15 मार्च 1999 को यह उत्सव सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर अर्ध जगत के मुख्य विद्यार्थी स्वामी अग्रज नालदा, श्री मुनि इन्द्र कवि सरच,

श्री सदानन्द शास्त्री वैरागिना, श्री राम चन्द्र ब्राह्मिकारी नेपल, पं. रामकृष्ण लखनऊ तथा स्थानीय प्रभारक हुए की एवं परत नाम जी के प्रोग्राम होते रहे।

हजारों की संख्या में लोगों ने उपस्थित होकर कार्यक्रम से लाभ उठाया।

आयोजक अर्ध

मुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 240999 प्रवेश सूचना 1998-2000

विज्ञान वादकर्मों में प्रवेश हेतु अभ्यर्थन एवं आवेदनित हैं :-

मास्टर अर्ध सप्ताह (रसायन, जीवविज्ञान, गणित, महाकोमपोलोनी, पर्यावरण विज्ञान, द्वितीय, छात्राध्यक्ष वादकर्म)

आईएल :- एम.एस.सी. - (सभी विषय)

बी एस.सी. (विषयविशेष) द्वितीय श्रेणी तक सम्मिलित विषय/वर्ग में 50 प्रति अंश (अ.वा.ज.ब.का.गु.का वि.वि. के स्तरों के लिए 45 प्रतिशत)

सीटी की संख्या :-

एम.एस.सी. :- (सभी विषय)

अर्ध वर्ग 20 (+10 प्रायोगिक/सह. भारतीय)

अर्ध वर्ग 20 (+10 प्रायोगिक/अर्ध भारतीय)

अभ्यर्थन कैसे करें :-

प्रवेश परीक्षा के लिए अभ्यर्थन एवं तथा अन्य जानकारी विज्ञान पत्रों पर पृ. 100/- (प्रायोगिक/अर्ध सम्मिलित के लिए पृ. 250/-) चक्र-मुगलाना छात्र 30 अंश, 99 तक प्राप की जा सकती है। एक छात्र अधिकतम के नाम प 130/- का बैंक ड्राफ्ट (प्रायोगिक/सह. भारतीय सम्मिलित के लिए 280/-रुपए) प्रवेश परीक्षा के लिए अभ्यर्थन एवं तथा अन्य जानकारी विज्ञान पत्रों पर ही 20 अंश तक भेजकर प्राप्त की जा सकती है। अन्तिम वर्ष की अर्ध परीक्षा दे रहे अभ्यर्थी भी प्रवेश परीक्षा में बैठ सकते हैं।

एम एस सी छत वर्ग : द्वितीय, विज्ञान महाविद्यालय, गु.का.वि. हरिद्वार।

एम एस सी छात्रार्थ :- प्रभारी कन्सा मुकुल महाविद्यालय, रुद्रकी रोड, ज्वालामुख, हरिद्वार।

अभ्यर्थन एवं तथा करने की अन्तिम तिथि-30 अंश, 99 है।

प्रवेश परीक्षा तिथि :-

एम.एस.सी. (जीवविज्ञान एवं पर्यावरण विज्ञान) : 5-6-99 (8.00 बजे से 10.00 बजे प्रातः)

एम एस सी. (गणित एवं महाकोमपोलोनी) : 5-6-99 (11.00 बजे से 1.00 बजे तक)

एम एस सी. (रसायन शास्त्र) : 5-6-99 (2.00 बजे से 4.00 बजे साय)

परीक्षा केन्द्र :-

1. विश्वविद्यालय भवन, मुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार- (छात्र वर्ग-एम.एस.सी. सभी विषय)

2. कन्सा मुकुल महाविद्यालय, रुद्रकी रोड, ज्वालामुख, हरिद्वार- (अर्ध वर्ग-एम एस सी सभी विषय)

3. दिल्ली - (अर्ध व छात्र वर्ग एम.एस.सी.)

नोट :- अभ्यर्थियों की संख्या वांछित-स्तर से कम होने पर दिल्ली केन्द्र हरिद्वार अथवा देहरादून स्थानांतरित किया जा सकता है।

(डा.एस एम सिंह) कुलसचिव

सुविधाना अर्ध सप्ताह सप्ताहना दिवस मनाया गया

अर्ध सप्ताह महर्षि दयानन्द चबमानो की संख्या बहुत होने के कारण एक हफ्ता कुपट और लगाया गया। समारोह को मुख्यवक्ता डा. बाल कृष्ण जी शास्त्री एम.एस.सी. एच डी ने अपने सम्मोचन में कहा हम सब को महर्षि के कार्य की अने ज्ञाना चाहिए। महर्षि ने जो उपकरण किने उन्होंने संक्षिप्त चर्चा किया ब्रह्म पं. महात्मा सुपनमति की सा सारे कार्य को सफल करने में हमें पूरा आशीर्वाद प्राप्त रहता है सविन्य षट के परम्परा सबको चबुरीय किस्तिर किया गया।

-महात्मा चन्द अर्ध प्रधान

सम्पादकीय

आज भी धर्मान्तरण होता है

आज से जब हम एक लो या दो तीर्थ या उत्सव पीछे की अपने देश की तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि देश की युवाओं के साथ भारत यात्रियों की क्या स्थिति थी। मुस्लिमों ने लगभग 700 वर्ष हमारे देश पर राज्य किया और इसका कारण था हमारे देश के छोटे-छोटे राज्यों में शासक की मृत्यु। कई राजाओं ने अपने पड़ोसी राजा से दुश्मनी मित्रता के लिए हमलावर युद्धों का साथ दिया और हिन्दु राज्यों पर उनका कब्जा कर लिया। बाद में मुगलों ने उस राजा को भी हारने उनके साथ दिया था वह कह कर उसे भी तलाश कर दिया कि जो अपने का नहीं हो सका वह हमारा कैसे बन सकता है। ऐसे एक बाद मुसलमानों और मुसलमानों के बाद तीसरे राज्य पर मुगलों ने अधिकार जमा लिया और इस प्रकार सारा देश उनके अधीन हो गया। इस काल में लाखों हिन्दु स्त्री पुरुषों को गजनी के बाजारों तथा दूसरे मुस्लिम देशों में एक-एक यौनो उन्हें बेच दिया गया। उन्हें मुस्लिम बनाया गया काल दिया गया और भारत में तत्काल के जोर से धर्मान्तरण करने हमारा हिन्दुओं को मुस्लिम बनाना गया। तत्काल की जोर पर धर्मान्तरण में सबसे अधिक धर्मान्तरण किया।

इसी कारण ईसाईयों ने अरबों के भारत में जाने से पूर्व से अपना भारतीयों को ईसाई बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया था परन्तु अरबों के काल में जब हमारा देश उनके अधीन हो गया तो भारतीयों को ईसाई बनाने का काम बहुत तेज हो गया। मुस्लिमों ने तत्काल के जोर पर धर्मान्तरण किया और ईसाईयों में इन वेकन अन्य वेकन देवा देवता, गैरकर्मिक वेकन तीर्थ के बहाने से लोगों को मुस्लिम कर आता बनाकर उस लोग तत्काल वेकन धर्मान्तरण का कार्य आरम्भ कर आता वेकन चल रहा है। देश की युवाओं के अन्तर पर मुस्लिमों ने ईसाईयों द्वारा धर्मान्तरण का कार्य जोरों से चलता रहा। इसी के परिणाम स्वरूप भारत में ईसाईयों ने मुस्लिमों की तुलना गिराकर रखी है। आज की के बाद यह कार्य एक जान पहिचान था परन्तु नहीं रहा। मुस्लिमों के द्वारा धर्मान्तरण का कार्य इस काल में कम हुआ परन्तु ईसाईयों ने देश की आबादी के बाद अपने कार्य को और अधिक तेज कर दिया। मिश्रण में ईसाईयों की वर्तमान तत्काल के बारे में सभी को पता है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में निर्वाण लम्बा ईसाई पावरी इसलिये फिर चले रहे हैं। ऐसे के चलते पर और देश के नाम पर गणतन्त्र मिश्रण अन्तर्गत गणतन्त्र सिद्धि मिश्रण मिश्रण आदि प्राणों ने वेकन प्रसिद्ध हिन्दु ईसाई बनाए जा रहे हैं। इस कार्य में नवर टैला का सब से बड़ा हाथ रहा है।

वि तालेंट के सम्बन्ध में लिखा है कि नवर टैला देश के नाम पर व्यापार करती है। परिणाम का इस्तेमाल करने की बजाए उनकी सारा पर प्रार्थना करती है। देश के नाम पर हिन्दुओं को ईसाई बनाने का कार्य करती है। इसी स्पष्ट होता है कि हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए नवर टैला ने की कोई कसर नहीं छोड़ी। प्रत्येक ईसाई मिशनरी उस दिन हिन्दुओं को ईसाई बनाने में लगा हुआ है। इसके विरोध में कुछ प्रतिनिधि भी हुई जो हमें स्पष्ट है। आखिर कब तक हिन्दु लोग आगे बढ़ करके यह ईसाईयों का तत्काल वेकन रहें। अब तो ईसाईयों ने अपने प्रचार का उन ही बदल दिया है यह कई प्रकार के आन्तरिक रूप कर हुआ-उन्होंने के बलकार दिया कर लोनों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। कई चले बने लोगों को बहका कर मुस्लिम कर कई प्रकार के सम्बन्धन किया कर लोगों को प्रभावित करते हैं और उन्हें ईसाई बनाने का प्रयास करते हैं। इसके साथ ही ईसाईयों द्वारा जो विचार तत्काल प्रचारों जा रही है। उनमें ही ईसाई तत्काल का प्रचार बड़े अनेक हाथ से किया जा रहा है। तत्काल के कार्य की विचार प्रचारों द्वारा मुसलमानों ने धर्मान्तरण में हिन्दु जनताओं को बाई-बाई में रखा कर एक पासा (पासी) दिया और उसे बरने के लिए कहा गया। इस पासी (पासी) में लिखा गया था कि

यिहु मेरा मुक्ति वाला है। इस पासी में कबूल करती है और विश्वास करती है कि प्रभु यिहु की मेरे पासे के कारण वेक तन्त्र पर प्रभु हुई और मुझे ग्लासी सिद्ध करने के लिए वे तीसरे दिन सजीवन हुए। इस लिए मैं उनको अपना व्यक्तिगत तन्त्र हार ग्लासी करती हूँ। इसके नीचे प्रत्येक लक्ष्मी को तत्काल करने के लिए कहा गया। इस प्रार्थना को बर कर अपित करने के लिए कहा गया परन्तु जब लक्ष्मीयों के अभिप्रायों को इस बात का पता चला तो उन्होंने विचारण में जा कर इस का कड़ा विरोध किया। इस विरोध को भी कई अन्तर्गतों में गत वेग से प्रचारित किया। जो कार्य ईसाई करते जा रहे हैं उनकी कार्रवाई अन्तर्गतों वाले नहीं जाय रहे परन्तु विश्व हिन्दु परिषद और मुसलमान हिन्दु धर्म सम्बन्धन तत्काल के सम्बन्ध कई अन्तर्गतों बाते जानी जा रही है। ऐसा करने यह लोग देश सेवा नहीं कर रहे बल्के देश को हाथ पट्टा रहे हैं। ईसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ हमारे देश में बढ़ती जा रही हैं। यदि इसी प्रकार इनका यह धर्मान्तरण का कार्य चलता रहा तो यह दिन दूर नहीं जब कि कई प्रदेशों में ईसाईयों का बोल-बाला हो जाएगा। भारत में बाते का राज्य है इस आधार पर यही व्यक्ति एक एल ए या एन की सभा जिसको ईसाईयों का बोल मिलेगा और वेत देकर ईसाईयों उत्ती व्यक्ति को आगे सारने को उनकी बाते मानेंगे। जो सकता है ईसाई मत बाल व्यक्ति को ही वह एल ए ए एन ही बनाए। ऐसी स्थिति में उस प्रदेश में यही होगा जो ईसाई मिशनरी चाहेंगे।

ईसाई मिशनरी अपने साक्षरों के द्वारा प्रचार साक्षरों के द्वारा ईसाई मत का प्रचार बड़े जोरों से कर रहे हैं। आज तो टेलीविजन पर भी व्यक्ति की कक्षाओं के नाम से ईसाई बर्त का प्रचार किया जा रहा है। कल ही जब मैंने डी टी वी सार्वजनिक का बटन बजाना तो देखा कि विम के माध्यम से व्यक्ति से शिक्षित सुविधि उपलब्ध होई जा रही थी। आमत का खुश हारा ऐसा करण उनकी सतती से औरत का बजान योनों का बौद्धि बूझ के फल जाना और खुश हारा उन्हें बर्ती पर नेकन आदि दिखाना जा रहा था। आज तो टेलीविजन को भी ईसाई अन्तर्गत में बोल के लिए प्रयोग कर रहे हैं। सामान्य बुद्धि के स्त्री पुरुष इनके बाते में जल्दी का जाने हैं और ईसाई लोग इस अनजानी का लाभ उठा रहे हैं। सामान्य लोगों की बुद्धि यह निर्णय नहीं कर सकती कि ठीक क्या है और गलत क्या है? जिसल ईसाई मत का प्रचार स्वरूप भारत में हो रहा है उनका परिणाम भारत में भी नहीं हुआ। जब अरबों का अपना राज्य था तो उस समय जो ईसाई नहीं कर सके वह आज स्वरूप भारत में बड़े बहाल से कर रहे हैं। यदि कोई हिन्दु सत्य या हिन्दु इतका विरोध करता है तो हमारे राजनैतिक लोग उसे सामाजिक तन्त्र या सामाजिक व्यक्ति कह देते हैं और सारा बोध उसी के लिए पर नष्ट किया जा रहा है। जो अपने देश की सत्तुति की रक्षा के लिए कार्य करता है और अपने देश की रक्षा करना चाहता है।

यह योर्टी की राजनीति आज हमारे देश के लिए मातृक सिद्ध होती दिखाई दे रही है क्योंकि छोटे के लिए राजनीतिक लोग प्रत्येक व्यक्ति को बुरा करने का प्रयास करते हैं प्रत्येक सम्बन्धन को प्रतारण में रहे हैं उनकी प्रत्येक बात को मनने के लिए तैयार हो रहे हैं चाहे वह कल को देश के लिए मातृक हो सिद्ध क्यों न हो।

गण 50 वर्षों के ईसाईयों द्वारा सत्य हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया गया और आज भी यह करते जा रहे हैं परन्तु कोई भी राज नैतिक पाटी इसके लिए कोई विचार नहीं कर रही कि आगे चल कर यह धर्मान्तरण हमारे देश के लिए किसनी बड़ी हानि देता कर देगा। पहले ही धर्म के नाम पर देश के दो दुर्काल पाकिस्तान और बंगला देश बन कर भारत में अलग हो चुके हैं। अब आज चल कर ईसाईयों का भी नाम हो सकती है इससे देश दुर्काल-दुर्काल हो जाएगा। तरकार का जो चेतो की ही हिन्दुओं के धर्मान्तरण को रोकना चाहिए ईसाईयों की उन गतिविधियों पर प्रतिक्रिया लगाना चाहिए जो हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए वह कर रहे हैं। भारत की जनता को भी तत्काल रहन चाहिए। प्रत्येक देश देशी व देशी हित विचार को धर्मान्तरण को रोकने के लिए प्रयास करना चाहिए।

अन्तर्गत अर्ध
सप्ताहिक

दिनांक 19/01/55

कृष्णन्तो

ओ३म्

विश्वमार्गम्

दूरभाषः

☎ : 292926



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्राचीनान्ध मर्यादा पत्रिका का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष 49 अंक 2, 29 वैशाख 2056 शक्राब्द 8/11 अगस्त 1999 दशमनाम्न 175 वार्षिक मुद्रक 50 रुपये आविष्कार 500 रुपये

महिलाओं की सम्मानना करने के उद्देश्य से अतिथि

शास्त्रार्थ की खुली चुनौती

रुद्राक्षर वेद, पुस्तकी सम्पादक मण्डी मार्ग, नवगुरुवाड़ा-150001

सूर्यकुण्ड, अमादासपुर वि
समुदाय के एक कार्यक्रम में
8.2.99 को सम्पन्न की गयी। इस
कार्यक्रम में श्री माधव आश्रम,
संस्कृतार्थ की उपस्थिति में कथा-
ज) महिमाओं को यह
अधिकार नहीं है कि वे ओम्कारों
को उपदेश करें।
आ) माधव मंत्र के पठ करने
का भी उन्हें अधिकार नहीं है।
इ) ओम्कारों को नहीं चाहिए।
फ) जो कोई भी कथन को
गलत सिद्ध करना चाहता है, उसे
मैं मंत्र पर सख्त कार्य के लिए
आग्रह करता हूँ।

प्राचीन परिवार व अर्थ समाज
के कुछ सदस्य व विद्वान 11.2.99
को जब कुछ महिलाओं को आने
रुक्मिणी तथा स्थल पर गए तो ग
केवल वहाँ इन्हें पण्डित की ओर
जाने से रोका गया अथवा प्रकाशों
व कार्यकर्ताओं ने उनके आगमन
को रोक दिया। वहाँ उपस्थित पुलिस
ने साक्षरों से समझाते हुए अधिक
पुलिस व प्रशासन के अधिकारियों
को बुलाने के लिए कहा। ऐसा किया
ही किया गया और देखते ही देखते
2-3 बहोनों में पुलिस के उपस्थितियों
व और कार्यकारी भी आ गए। इसने
उपस्थितियों से निवेदन किया कि
इस रूप से महिला व साक्षर विरोधी
भावां का प्रचार किया जा रहा है व
साक्षरों के लिए उत्साहपूर्ण गया।
हम तत्काल कार्य के लिए आग्रह
आय है परन्तु उत्साहपूर्ण कथा इनका
विद्वान् अपनी योग्यताओं से ही मंत्र
पर नहीं बुला रहा। उपस्थितियों
ने उपदेशकों की बहुत शक्ती को
साक्षरों को कहा। उस उम्र का
आना पड़ा व पण्डित के आगमन
पर विद्वान् किसी निर्भीक के समान
दस्तावेजों की उपस्थिति व पुलिस के

अधिकारियों के संरक्षण में लघु
सम्बन्ध आगम हुआ। तीन बार मैं
प्रश्न किया कि आप हमें अब मंत्र
पर क्यों नहीं लेकते चलो? इसका
कोई उत्तर नहीं दिया गया, बल्कि
होकर वहाँ रुक्मिणी करना पड़ा।
मैंने निम्नलिखित लघु वेद मंत्र तीन
बार पढ़ा कर पूछा कि इनके आधार
पर किसी को संरक्षण करने व फल
धारण करने का अधिकार है :-

1. यथेष्टं यत्नम् कथम्पि
आचार्यमन्यम् (अनुसूचित 26/2)
अर्थात् मैं (ईश्वर) यह वेदमंत्र
मनुष्य मात्र के सम्बन्ध के लिए द
रहा हूँ। शिष्ट है किसी भी प्रकार
के वर्ण, सिंग व देश-काल के वेदमंत्र
के विना। फिर किसी वेदमंत्रों का
पाठ क्यों नहीं कर सकते हैं?

इस का उत्तर बहुत शक्ती ने
कुछ नहीं दिया। अतः एक और
वेदमंत्र का प्रमाण दिया गया :-

2. धीमा साक्षात् साक्षात्सम्
उपस्थितिः (उप० 10/109/4)

अर्थात् वेदपट्टी वेदमंत्रों की
पत्नी यथेष्टीयत करण करने के ल
करा वाली बन्नी है। इससे स्पष्ट है
कि स्त्री भी यथेष्टीयत धारण कर
सकती है। यथेष्टीयत विद्या प्रण
करने का प्रतीक है। विना वेद पाठ
के स्त्री विद्यामयी कैसे बनती? वेद
पढ़ने का उसे पूर्ण अधिकार है।

इस प्रमाण का भी कोई उत्तर
नहीं दिया गया व अंतर्गत नहीं ही
कही नहीं। हम बार-बार प्रमाण
देकर उसे रोकने से अपनी ईश्वर-उत्तर
की अंतर्गत बर्तन कर रहे हैं। अब
मैं वे और उनके स्त्री-सम्बन्धी हो-
इसका करते हुए पण्डित की ओर
कहा गया।

प्रमाण तो और भी हैं परन्तु
इस लेख में अब हम दो प्रमाण
उदाहरण के प्रस्तुत करते हैं :-

3. सा क्षीयसम्पन्न इत्यादि विषय
उपलब्धता।

अर्थात् बुद्धिमान स्म तदा
मन्त्राक्षरवत्प्रवृत्तिः॥

यह वास्तविक रामायण,
अथेष्टा काव्य, बौद्धों द्वारा के 15वें
शताब्दी का प्रमाण है। इसके अनुसार
विषय व्रत-परायण माता कीर्तिका
अपने पति के विना महल में सम्पन्न
के सम्बन्धित की घोषणा के बाद
देवामी बरत भारण फिर हुए
मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अंगीकार कर
रही थी। हमारा प्रश्न है कि यदि
माता कीर्तिका अंगीकार कर सकती
थी, यथेष्टता कर सकती थी तो
हमारी आज की माताएं क्यों नहीं
कर सकती?

4. सम्बन्धितात्मना - इत्यादि
सुवर्णमयी वाक्य।

यहाँ वैदिकसाहित्य सम्बन्धों
वर्तमान हैं।

यह भी उदाहरण का ही प्रमाण
है। जब हनुमान सीता की कीर्तिका
में लंका में गए तो इस-उत्तर पट्टक
व अस्तरण रहने के बाद अनेक
वाक्यों में एक पेट पर चढ़कर स्वयं
को विना विषय व सोचने लगे-यों
सीता को वहाँ देख रहे हैं। प्रा-
साधं दोनों साथ-साथ करने वाली
नर्तिका तथा सुन्दर वस्त्र धारिणी
वाक्य में (विना नदी के) स्वयं
जल में स्नानार्थ व संवत् करने अथवा
आपसी इस स्नान पर। हम पूछते हैं
कि कब सीता सम्बन्ध कर सकती थी
तो आज की स्त्रियाँ को सम्बन्ध
करने का अधिकार छीनने वाली ये
संकराचार्य व इनके स्त्री-साथी सीता
की व राग के अनुयायी कैसे कहला
सकते हैं?

इन प्रमाणों के आधार पर मनुष्य
मात्र को मंत्र बोलने का अधिकार
है। संसार में पहले भी वाक्य-सी
विद्वान् वैदिकों हैं हैं किन्तु नहीं,
अद्वितीय, लोकप्रिय, अनेकी, मैत्री
आदि के नाम हैं।

बाईको और बहनों। अब हम
मौखिक गीत के कुछ प्रमाण अपने
कथन प्रारम्भ में प्रस्तुत कर रहे हैं :-

1. ओम्कार ज्ञातो स्मर
(यजु 40/15)

हे प्राणी! ओम्कार का स्मरण कर।

2. ओम्कार इति एकाक्षरम् ब्रह्म
(गीता 8/13) को मनुष्य ओम्कार
ऐसे एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण
करता है।

उपरोक्त स्पष्ट प्रमाणों के बाद
भी श्री बुद्धिमानों की मंत्र और
ओम्कार का उच्चारण करने का
अधिकार महिलाओं को नहीं देते।
अब हम के कथन को साक्षर मान
लिया जाये तो :-

3. सत्ता के बहुत बड़े वर्ग
को मंत्र पाठ से वंचित रहना पड़ेगा।

4. महिला उपदेशिकाओं को
उपदेश करने से रोकना होगा।

5. अन्य सामान्य महिलाओं को
अनपक रोकना होगा।

6. हमारी स्त्री-पुंरिचय अक्षरों
व पूर्ण होगी।

क्या हमारा समाज साक्षरी
आत्मता, निर्मला देवी का सुनीति
देवी, उमा भारती, मेधा देवी, का
साक्षरी देवी, कक्षा कमलेश भारती,
सुखी कुसुम तथा अम्मा विद्या व
सुनीति देवी आदि के उपदेशों से
वंचित होना चाहेगा? क्या ऐसी
देवियाँ इन प्रायक प्रचारकों की
तानाशाही को चुपचाप सहन करींगी
या हमारी तरह इनको साक्षरों के
लिए लक्ष्य करेंगे? समय व शक्ति
इन प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक होगी।
इन संकराचार्यों के विरुद्ध विद्वानों
को स्वयं यथेष्ट संजलन होगा।

हम सभी बुद्धिमानों को एक
सर्वसाधारण को आग्रह करते हैं
कि ऐसे प्रवृत्ति व सामान्य उपदेशकों
का नामा जोड़ कर व अधिकार
कैं। हम ऐसे विचारों वाले किसी
भी उपदेशकों को साक्षरों के लिए
खुले चुनौती देते हैं। वे पूर्ण निर्भीक
स्वभाव, समग्र पर साक्षरों के लिए
आप उचित स्व-आग्रह कर निर्भीक
सम्बन्धित हो सके।

विश्व को श्रेष्ठ बनाना है या इसाई

ले० श्री विष्णु बाबासाहेब लंगोकेकर, जिल्हा

अर्थात् धनवान् भी वे हीन हान्ते ।
यह किताब हमें बहुत हान्ने लाने
की कृपा करने विचार्यो । अर्थात्
हरे भूय हान्ने दानवान् की जो
कान्तरान् की शक्ति हान्ने समर्थ
हान्ने । अर्थात् धनवान् के हान्ने हान्ने
लाना चाहिये । विषय के नान्तरिक
की त्रेण कान्ते का अन्वयान किच
हान्ने दान हान्ने लाने । अनेके दान
अन्वयान के विचारकान् हान्ने हान्ने
समान भूय का हान्ने कान्तरिक
किताब हान्ने हान्ने प्रमाण कान्तरिक
लाने । त्रेण अन्वयान कान्ते की हान्ने
प्रमाण के अर्ध समान वे हान्ने की
युवाचार चासी का मानवान् चासी
कारणान् चासी किच हान्ने हान्ने हान्ने
किचि स्मयन न हान्ने दान हान्ने हान्ने
कोहान्ने कान्ते कि हान्ने हान्ने हान्ने
की चायेगी जो अर्ध समान का सन्दर्भ
माना या किचि विषय प्रशिक्षण के
प्राप्त वे बोधित कान्ते कि हान्ने
दानवान् की माना है अनेके हान्ने
लाने है वा हान्ने अन्वयान किचि
प्रशिक्षण का परिणाम लाने । अर्थात्
समान वे हान्ने की मानवान् हान्ने
समान वे हान्ने की अन्वयान हान्ने
हान्ने हान्ने वे अर्ध सन्धिगी ने
कान्ते किचि हान्ने हान्ने हान्ने की
कान्तरिक हान्ने हान्ने हान्ने हान्ने

दूसरी तरफ किसी की नय
मलायन का भगवत का नाम आती
ही एक ऐसे प्रतीक का योगदान
होसरी मिलावट में उपलब्धि है जिससे
उपलब्धि का जगह ही व्यक्ति स्वयं का
नय नय का भाव है जो स्वयं स्वयं का
है। इस दोष के लिए वे नय और
मनजहबी ही उपलब्धि का वे ऐसे
व्यक्तियों को प्रतीक करते हैं।

आजकल चर्च बहुत चर्चा में
है। चर्चा का नय आती ही एक नय
प्रत्यक्ष किसी की भारतीय राष्ट्रवादी
के मिलावट में उपलब्धि का प्रतीक है
कि किसी व्यक्ति स्वयं का स्वयं का
चर्च की भाव हो रही है। भाव पर
एक नय दो दसक पहले हिन्दुओं की
सम्मान नय की संस्थाओं की सम्मान
नय ही और भाव नय सम्मान का
खेल कहा नय प्रतीक है। दूसरी
विशेष चर्चा चर्च के साधन उठा
इस नय ही है कि चर्चा का नय
प्रत्यक्ष विवेक का उपलब्धि का नय

नागरिछे के मध्य ही क्यों है ?
उपर स्पष्ट है-पर्व के भूवैज्ञानिक
किस्से कहानीया पर्व शिखर शीर्षों
को फुलता यहाँ घाटों। दूसरी पर्व
के प्रलोभन की गरीबों में ही नगर
सिद्ध होते हैं।

हमें ही अगर तब कुछ जानना है कि कितने से करोड़ असभ्य रूप से प्रवास करने वाला वर्ष भरत को प्रसक्तो मुक्त उन्मत्त रूप से जाने वाले अनुदान को भी बहुत कड़ी मश्रा में हड़प रहा है। इन समास्थो के आवरण मुक्त मननहारा या नबरहस्ती पैदा की गई अनन्यस्मार्थो उद्योग करके यह दिखाने का प्रयास किया जा रहा है कि भारत में ईसावी की आत्मा खरबों में है। जब कि वास्तविकता कुछ और है।

विगत माह फिर एक सम्प्रदाय सुर्विधो मे आया कि ठहीसा मे कुल ईसावयो के घर बला दिये गए।

इससे पूर्व एक विदेशी मिशनरी
की हत्या के कारण भी तुलना
का हवाला दिया था। केन्द्र प्रमुख
ने सावधानी के रूप में सावधानी
की थी भी यद्यपि केन्द्र प्रमुख
ने एक अग्रणी भी गिरफ्तार किया
था। इस अग्रणी की रिपोर्ट ने बाई
हॉल के कार्यकर्ता को भी झनझनी
होती तो स्पष्ट ही बाबाजी की
मिसमिथियों के विरुद्ध स्वाभाविक
रूप से आक्रोश व्यक्त होना
है और विदेशी प्रचार विभाग
की नीचांकी इस प्रकार तुलना
के अनुसार इस मुकाम के विरुद्ध
पहले से ही स्वाभाविक अन्तरा
गत प्रतिक्रिया में निष्पत्ति दर्ज की
प्रतिक्रिया के अभाव में नहीं करती

तो जनता को स्वयं पहचान कर
पकती है इसी को सीधी कार्यवाही
कहा जाता है। इस विदेशी मिशनरी
की हत्या से पूर्व के तथ्यों पर
उड़ीसा के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री
पट्टाभायक ने भी अपना बयान
दिया था।

सोनिया गांधी की अध्यक्षता में चल रही कांग्रेस नामक खिसियानी बिल्ली ने पटनावाबाबू को ही नोब इलाक़ और नमूना मुख्यमंत्री गिरधर बाबू को गिरफ्तार किया। मुख्यमंत्री कोई भी

इन्द्राक्षी काशान्या त्रयि का देहावसान

श्रीमान्. हमारा के प्रविष्ट व कर्मट कर्मकर्ता श्री अविजय सिंह जी के निधन की खबर पढ़ी श्रीमती कौतुकता अवि. का 29.3.99 को रात्रि में देहावसान हो गया। 30.3.99 को हमारा अन्त्येष्टि सम्पन्न हुई। निधन की वृत्ति से वे पण्डित जी थे।

शेनारी नारायण, इन्द्र प्रकाश शुक्ला जी, गणेश्वर शर्मा जी, जय-
 राम के आचार्य जी, यह पूर्व जन्मे शरीरों की। एही जन्मे अनेक कथाएं साध-
 यों की हैं यह अनेकरी शरीरों। उनमें जहां अनेक अनेक कथाएं
 कहते हैं उस समय लोक के कई जगहों में अनेक शिखरों पर सदा उल्लास
 के शीर्ष में जगने की थी। अनेक प्रेम विहारी जी, यह सदा उल्लास
 करती थी। उनके पहले जगने से जो स्थान छासरी हुआ है उसकी पुष्टि
 अत्यन्त है। उनके पहले लोक के जहां परिकर को जगने का क्या हम सब
 को भी है। उनके अनेक शरीरों के ३५७० को प्रमत्ता गंगा में
 गंगाधर शर्मा के शरीरों में। हम सब अनेक शरीरों के अनेक जन्म
 मनुष्य धारणियों की ओर से जन्मे अनेक अनेक शरीरों में हुए हुए
 किन्तु वेलाका से अनेक प्रमाण हैं कि वह उस देश केलाका को पराजित
 प्रमाण कई और भी अनेक प्रमाण कि जो सब जन्मे परिकर को
 जन्मे विषयों को साधन साधों कि कि प्रमाण हैं।

इत्यंश लखल नर्मा
सभा प्रधान

किराओडर झार में रामनवमी पर विशेष शोभा यात्रा

स्वर्ण सम्पन्न रात्री या गाथा

फिनोक्सुन सहर में अवर्ष सप्ताह
स्वास्थ्य दिक्कत सिधि 18.3 99 से
राम नवमी सिधि 25 मार्च 1999
एक प्रतिदिन विशेष बच्च की
व्यवस्था की गई जिससे कई
बच्चानों और अवर्ष बच्चों ने बच
कर भाग लिया और पूरे 8
दिन बच्चों की व्यवस्था को सुनिश्चित
किया।

अर्थ समाज स्थापना दिवस के गीके पर अर्थ समाज को 21 वर्ष बाद जीर्णोद्धार करने विशेष रूप से सच्चा और सकारण कर्म जैसे तो इस अवसर पर इस समाज को रक्षरजाय के लिए बहुत से अर्थ प्रेमियों ने दान दिए परन्तु 500 लाख और नब्बे शीक के

प्रशासनिक चर्चों से मुह फेरना किसी भी समझदार राजनेता को रास नहीं आवेगा।

यही कारण है कि पर जलाने वाले घटनाक्रम पर प्रतिक्रिया जमाव करते हुए इस घटनाक्रम मुख्यमंत्री को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि विन ईसाईयों के पर जलाने गये थे उन्होंने स्थल पहले हिन्दू परिवारों पर हमला किया था। प्रिन्सल और फ्रांस की लड़ाई हिंसक रूप में आँख

यदि जले अर्ध प्रेमियो की सृष्टि
इस प्रकार है :

श्री ओम सुनि जी -1111 00
 श्री डी अर गोपल-1100 00
 ओम प्रकाश बबन-1100 00
 श्री एच एल शर्मा-1100 00
 श्री सन्तोष कुमार-1000 00
 श्रीमती सन्तोष कुमारी-500
 श्री विजय कुमार गलोत्रा-500
 श्री सुधाश चन्- 500 स्वी गज

सन् १९३०-३१ के लिये
 राज्य न्यायी के लिये अन्तरिम प
 तनायन धर्म युक्त सन् १९३० के लिये
 लक्ष के लक्ष्य से अर्ध सप्ताह
 की छुट्टी से शोध प्राप्त में इक
 पक्ष तथा अन्तरिमिक गन्तव्य कर
 हुए सारे लक्ष्य को सुगन्धित व
 पवित्र वातावरण दिया गया।
 सन् १९३० के लिये शोध (मन्त्री)

200 200 200 200

विश्वास है क्योंकि हर स्थान पर
पहली गलती क्रॉस के द्वारा
होती है। त्रिभुज का प्रयोग
सम्बन्धित होती में किया जाता है।
यदि क्रॉस का वास्तविक लक्ष्य
साधित की स्थापना करना है।
उन्हें वास्तविक तथ्यों के दृष्टि
अज्ञानपरकता करने चाहिए।
कमबलसी कमबलसी की नीति
यह रोडकान लगनी चाहिए।

अंग्रेजी से भारतीयता को खतरा

बी. राजकमल सिंह महात्मा जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

देश की अस्मिता के लिए उसकी भाषा बड़ा महत्वपूर्ण होती है उसका सम्पूर्ण एक संस्कृति की वाहिका अपनी भाषा ही होती है। अपनी भाषा के प्रति गौरव की भावना का दर्शन भारत स लुप्त होता जा रहा है। भारत जैसे देश में 'गङ्गा साक्षरता' आज भी एक नग्न-६ जना सरकार आकाङ्क्षों के अनुसार देश का आभादी के रूप 2 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते एक समझते हैं यहाँ अंग्रेजी को सरकारी भाषा की बजाकर बोलने वाले कहा जा सकता है उन्माद कर रहे हैं यह विचार का विषय है अपने राष्ट्रहित और स्वाभिमान को गिरवी रखकर ये लोग का अपना मातृभाषा का उपमान करते हैं क्या ये कभी 'गङ्गा' का भला कर सकते हैं? जा लाग अपनी मातृ भाषा छोड़ देत हैं व दशरथी हैं और जनता के साथ विश्वासघात करते हैं हिन्दी का प्रथम श्रेणी राजनीति के कारण ही उन्माद हुआ है अन्तर्गत हिन्दी केवल देश में ही नहीं विदेशों में भी सम्पूर्ण रूप का दायित्व पूरा करती है किन्तु भारतीयता भलेविचार जोड़न ईसाक सिन्हापुर जैसे अनेक देशों में भा दैनिक अवस्थानकालों की पूर्ति न सहस्यक हिन्दी डा है यूरोप के विद्वानों में स्वतंत्र चिन्तन की होइ है भारतीय विद्वानों में अनुकरण का अन्धा प्रतियोगिता का समावेश है उनमें भाषावी स्वाभिमान है जबकि भारतीय विद्वानों में भाषाई दासता (अग्रवा की गुलामी) छाई हुई है

मेज की एकमात्र ये बाधाएँ

M.J का क प्रति नाकारना का व्यवहार देखकर ऐसा लगता है कि मेकाले बात गया और हम अब भी पुराण में खसल जाया का तबाय का नहीं है समाल आग्रह का प्रति मोह का है। अपने ही भाईयो पर अंग्रेजी के सारे हुकुम करने वाले अजवा मे ही सोचने वाले काल अंग्रेजी को पैदा करने वाली मेकाल की शिक्षा नाति भारत पर इस लिए थोपी गई थी कि ये अंग्रेजी के गान्त पुत्र भारत का संस्कृति को नष्ट करने

अंग्रेजी देश में एकता नहीं लाती देश का विभाजन करती है। हिन्दी का विशेष मात्र संस्कृति दृष्टि और राजनैतिक कारणों से हो रहा है यदि सभी भारतीयता सके पहले देश का भित्त लोभे देश की उन्नति सर्वोपरि माने और राष्ट्रीय एकता में सहित का दर्शन करे उसी में सन्निहित कल्याण को देखे तो यह भाषा विवाद स्वयमेव समाप्त हो जायेगा।

शोषण का द्विचक्र

भारतीय भाषाओं से समीपता का दृष्टिकोण अपना कर ही हिन्दी को स्थापित किया जा सकता है। अद्वैतवाद ही सत्तावाज के गदर का विरोध करने वाले मुद्दी भर अंग्रेजी परस्तर बाणु लोग आज भी नीकलासी के प्रतिनिधि बनकर हिन्दी का विरोध कर रहे हैं। कोई भी देश एक विदेशी भाषा के आधार पर उन्नति नहीं कर सकता एक विदेशी भाषा आम जनता की भाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजी ने देश को दो भागों में विभाजित किया है। एक वर्ग शोषक है जो अंग्रेजी के माध्यम से दूसरे भारतीय भाषाभाषी शोषित वर्ग का शोषण कर रहा है यह देश की प्रगति के लिए बाधक है।

एक और अपारलैंड है जो इंग्लैंड के समीप होते हुए भी अपनी भाषा अविरत गम्पाए हुए हैं और दूसरी ओर इजरायल है जो अपनी मातृभाषा हिब्रू को अपनी राष्ट्रभाषा घोषित कर व्यवहार में लाने की क्षम्य रखता है तो क्या भारत इतना कमजोर है जो आजादी के ५२ वर्षों के बाद भी अपनी राष्ट्रभाषा हिन्द की व्यवहार में लाना तो दूर देश की सभा उच्च नीकले की प्रतियोगी प्रतिभाओं में अंग्रेजी को अनिवार्य बनाए हुए है।

राष्ट्रीय अस्मिता का इन्धन

जो पब्लिक स्कूल सभी भारत में अपनी भाषा एक संस्कृति की उन्नत बनने के लिए मुक्त किए गये थे यहाँ स्कूल आज देश में अधीनस्थ के गङ्गा बनकर राष्ट्रीय अस्मिता को मिटाने में लग हुए

हैं। अकड़ों के संघर्ष में यह प्रमाणात कर दिया है कि कोई भी नीकला शोषक (प्रतिभासली) इन अंग्रेजियों के गङ्गा पब्लिक स्कूलों से देश को नहीं प्राप्त हुआ। प्रतिभा की होइ से अवरोधक इन पब्लिक स्कूलों में एक ऐसे अधिकांश वर्ग को जन्म दिया है किन्हीं भाषा अवरोधी है। अंग्रेजी के हा बल पर यह वर्ग सरलता से चुनौती पाया है। इसीलिए जैसे भी हो अंग्रेजी को बनाए रखने के लिए यह वर्ग हमेशा कोशिश में लगा रहता है। प्रतिभा मूल्यवान की खुली दौड़ में इस वर्ग का स्वयं पर विश्वास नहीं है। इसी कारण प्रतिभा मूल्यवान में खुली दौड़ का यह वर्ग हमेशा से विरोध करता आ रहा है।

देश का निर्माण भारतीय

भाषाओं से ही

अंग्रेजी के प्रभुत्व का शिकार अनेकों हिन्दी की नहीं है सभी भारतीय भाषाये अंग्रेजी की दासी बनकर रह गई हैं। हर प्रदेश में अंग्रेजी भाषी अधिकांश वर्ग ने उच्च सरकारी पदों पर कब्जा बना रखा है। इन्हीं भूमिका अंग्रेजी की तरह फूट डालो और राज करो की साम्राज्यवादी भूमिका से अलग नहीं है। सस्तर में कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसने अपनी मातृभाषा को घुसाकर किसी विदेशी भाषा के माध्यम से प्रगति की हो स्वतंत्र भारत के नागरिक भाषा के नाम पर रचे गये अंग्रेजी के बहपूर को पहचान कर ही अस्मिता की रक्षा कर चयेगे। भारत का स्वाभिमान भाषाई मुक्त होये पर अतिम सले गिन रहा है जिसे व्यवहार का अनुस रिलाकर अमर करने के लिए देश की युवा शक्ति को स्वाभिमान

पूर्वों से प्रेरणा लेकर करणों को बाधको अपने धर्मों में लेने की अन्तर्गत अवस्थानकाल है। राष्ट्रीय एकता रूप नीक की भाषावादिनी हो ही स्वतंत्रता के अन्दोलन की परिधिगत एक गूत बाया था अधुनिक भारत का निर्माण अंग्रेजी से नहीं भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही संभव हो सकता है समग्रता को सम्पूर्ण की शक्ति दे अखिल भारतीय भाषा सारक सभन में इस मर्म को समझा है इन्हींलिए देश की सर्वोच्च नीकले प्रतियोगी प्रतिभाओं में भारतीय भाषाओं को लागू करने एक अंग्रेजी की अनिवार्यता समाय करने के लिए सस्तर के दोनों द्वारा सर्वसम्मति से परिश्र ससदीय सक्त्प (18 जनवरी 1968) को लागू करने के लिए पिछले ग्यस वर्षों से सच लोक सेवा अयोग बनन के मुख्य द्वार पर धन देकर सचर्च कर रहा है सचर्च के इस दौर में कोई अन्ध व्यवहृतपूर्ण प्रतीक्षाओं से अग्र हो कर अनिवार्यता समाय करने में तो सस्तरता प्रवृत्त हुई है किन्तु सर्वोच्च नीकले पर अपने प्रभुत्व बनाए रखने वाले अधिकांश वर्ग ने अंग्रेजी की प्रतिभाओं से अंग्रेजी का वर्चस्व समाय करने की दिशा में कोई ठोस कार्यवाही नहीं की है जो कि भारतवा भाषा भाषियों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है इसीलिए हम सभी भारतवासियों का आस्थावकाल है कि भारतीय भाषाओं की अस्मिता की रक्षा का लिए आप आगे आए और और सभन को इस सचर्च में शामिल होकर अधुनिक भारत का निर्माण करने में सहभाग्य बन

सत्य के प्रचारार्थ

प्रतिमा 1600 9500 PVC फिल्म

राजित्वा 9500 मकड़ा

मृत्युार्थ प्रकाश

घर घर पहुँचाएँ

सकल कामज सुन्दर खप्राई

मुक्त सत्कर्मण विवरण करने वाली के

अकार 23 x 38 16 गुट 100 ही दूर लिए प्रचारार्थ

मिफर 24 PVC फिल्म 24/ खपार 24

आव साहित्य प्रचार ट्रस्ट

ऋषि दयानन्द के सराहनीय कार्य

ऋषि दयानन्द की कौन सी बात आपको सबसे अच्छी पड़ेगी ?

1 ईश्वर : अर्थ समाज एक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करता है। ईश्वर सच्चिदानन्द तथा सृष्टिकर्ता है, एक ईश्वर को सारा संसार मानता है। कोई मंत्र, मन्त्रवैद्य एक ईश्वर का विरोध नहीं करता। मनुष्य मात्र को एकता का प्रतीक एक ईश्वर को मानना ही है।

2 वेद : वेद ईश्वर की वाणी है। वेद ईश्वर का पहला धर्मग्रंथ है। किसी एक गण या सम्प्रदाय के लिए नहीं बना मनुष्य मात्र के लिए ज्ञान का अथकार है।

3 शिक्षा : शिक्षा के निमित्त स्कुल, कॉलेज, गुरुकुल खुलवाये विद्या शिक्षा हो, उनमें भी शिक्षा का प्रचार किया। मात्र विद्यान को फैलाया। मनुष्य मात्र ज्ञानवान् अर्थात् तर्क, वाक्, समाज, परिवार का उद्धार कर सके।

4 विधवा : विधवाओं की सुश्रुता करने समाज परिवार के दुःखों का निवारण किया। आज आर्ष समाज की सारा देस सरक्षण करता है। विधवा स्त्री के दुःखों पर महत्व लगाई। विधवा आश्रम बनाया।

5 अनाथ बच्चे : बे-घर, बेसाला अनाथ बच्चों को सारा दिया किन्तु कोई न पूछे उन बच्चों के लिए अनाथाश्रम खुलवाये।

6 महिला : महिलाओं को शिक्षित किया। पुरुष का अर्थात् अंग बताकर समाज में मान दिलाया। मातृश्रुति का नाम दिया। काल विहास, स्त्री प्रथा का विरोध किया। आज महिला विरोध होकर उभरे ऊँचे पदों पर उन्नतधार्मिक सहायक रहते हैं। गुजरात व देश की प्रथममंत्री तक बनीं।

7 बुद्ध : बुद्ध, बुद्धों बड़ों की इज्जत और मान बढ़ाना और कहा, ईश्वर को बनाई वाक्य सुनिये जो उपसन्त करी। जीवन पर देखा करो। जो सुख-दुःख अनुभव करता है। बुद्धों का मने के बाद श्राद्ध करना वर्ज्य है। जाँच्यों की पूजा सेवा करने से भय कर कोई पूजा नहीं।

8 सन्तानप्रेम : अर्थ समाज वेदों को मानता है। वेद ईश्वर की वाणी है। वेदों को पढ़ने भासा वैदिक नहीं है। वेद ईश्वर के ज्ञान

का, स्मृति के अन्तर्गत से पढ़ता ग्रंथ है। वेद ज्ञानान्त है। आर्ष समाजी उसी एक ईश्वर को मानता है जिसने वेदवाणी उगावन की। ईश्वर सत्य है, सत्यत्व है इसलिए हम अर्थ समाजी सत्यता, सत्यता धर्म हैं।

9 उपासना : उपासना व भक्ति एक ईश्वर को करो। सत्यता, वडा, गायत्री मंत्र, महागम का जाप करो यह ईश्वर की प्रकृति व ज्ञान है। बातों वेदों में इसका गुणगान है।

10 आर्ष समाज : आर्ष समाज केवल एक ईश्वर की भक्ति व उपासना करता है। कुछ लोगों को निराकार, एक ईश्वर की भक्ति अच्छी नहीं लगती, इसलिए वह निन्दा करते हैं। पूजा करो तो एक ईश्वर की करो और किसी को पूजा ईश्वर पूजा नहीं है। ऋषि दयानन्द ने कहा मान दो, सम्मान दो, इज्जत दो। देश के मतापुत्रों के उपदेशों पर बल। अर्थ : बुद्धिजीवियों। सत्य को सत्य कहो। देश का, समाज को आगे बढ़ाओ।

11 धैर्यभाव : खूब धैर्य, जात पात, ऊँच-नीच का भेद भिदाया। मनुष्य को मानव का दर्जा दिया। खुन का रंग सक्ता एक है। मरुदन सक्ते दिलों की एक है। मनुष्य मात्र का ईश्वर एक है। तब एक होकर रहो। एकता को बढ़ावा दिया।

12 मांस : ऋषि दयानन्द ने मांस खाने को चाप कहा है। मांस खाने वाला खमरित नहीं होता। ब्रह्मद्वय अर्धदी कमजोर का मांस नहीं खाता अधिपू कमजोर की मदद व रक्षा करता है।

13 भाषा : देश भक्तवासियों की यादगुणा दिनी है। मातृभाषा माँ है, देश पिता है जैसे माता-पिता अनेक बच्चों को एक साथ पालते हैं इसी तरह भाषा ऊँचे से लेकर बड़े तक अपनाई से लेकर बड़े तक देश के हर वर्ग को जोड़ती है। देश को बच मेरा कहते हो तो देश पर पर धिये, कुर्बानि होने, बलिदान होने, सहोदर होने को तैयार रहने है।

भारत में जी लाकर चर्च बनाने का लक्ष्य

ईश्वरों को योजना का पता चलता है ईश्वरों के लिए चारों मिलन मीट (आजपण) से। मिलन मीट पृष्ठ 447 'हमारा लक्ष्य भारत के प्रत्येक गाँव (घर में घास लाव गाँव है) में और राहों की प्रत्येक कालोनी (बस्ती मोहल्ले) में कुल भिता कर नी लाव चर्च निर्माण करके उन बेघो में ईश्वर को मानने वाले समुदायों का निर्माण करने का है।'

मिलन मीट में ही मिलनियों द्वारा किए जा रहे कार्यों का खुलासा इस प्रकार है—

पृ 471 नागपुर का फेडरेशन आफ एवेन्जलिस्ट चर्च अपने 2,60,000 रुपये के वार्षिक बजट के द्वारा प्रति वर्ष 700 लोगों को ईसाई मत की दीक्षा देता है।

पृ 470 चेन्नई की क्रेण्डस मिलनरी प्रेजर बैंड प्रतिवर्ष के अपने 145 करोड़ रुपये के बजट के द्वारा 3400 लोगों को ईसाई बनाता है।

पृ 475 नई दिल्ली की इण्डियन एवेन्जलिस्ट टीम अपने 40 लाख रुपये के वार्षिक बजट के द्वारा प्रतिवर्ष 2000 लोगों को ईसाई बनाती है।

ऋषि दयानन्द ने कहा भाषा और देश मा बाप है।

14 गाँव : गाँव हमरी माता है। क्योंकि गाँव से मिलने वाली हर चीज हमारे लिए लाभकारी है। गाँव का दूध पूर्ण अहार है, गोबर से ईंधन मिलता है, मूत्र से औषधियाँ बनाई जाती हैं। यहाँ तक कि मरगोपराय भी गाँव की हर चीज का आगम है।

15 श्रुद्धि : मेरा धर्म ईश्वरीय ज्ञान है सारे ससार को मानने का अधिकार है। अपना वेद ज्ञान सारे ससार को सुनाओ, अर्थ बनाओ। पाकिस्तान नहीं बनात अगर बुद्धि की होवी। विल्ले मुसलमान, औरंगजेब ने बनाये उन सबको चापित अगर लिखा होता उनको बुद्ध कर दिया होता, वो न पाकिस्तान बना व अगर भाषा कटती। आज भी देश

पृ 477 पंजापुर का राज-धानी इम्फल का कुकी करिश्चन चर्च 20 लाख रुपये के अपने वार्षिक बजट के द्वारा प्रतिवर्ष 100 लोगों को ईसाई बनाता है और कुकी चर्च ने आगामी दस वर्षों में 100 वर्ष बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

पृ 476 अमृतपुर के मन्ना पुरा गार्सेल मिनिस्ट्रीज अपने एक करोड़ रुपये के वार्षिक बजट के द्वारा प्रतिवर्ष 3000 लोगों को ईसाई बनाती है। विगत चार वर्ष में उसने 15 हजार लोगों को ईसाई बनाया है।

खेत (उजमगा) की एमेन्स्यू अल काउन्सिल इन्स्टीट्यूट अपने 70 लाख रुपये के वार्षिक बजट से प्रतिवर्ष 4 हजार लोगों को ईसाई बनाती है।

आखिर ये मिलनरिया भारत का ईसाई राज्य क्यों बनाए चाहती है? इसका उत्तर मिलता है मिलन मीट के इस भाष्य से कि 'आज वाले सन् 2000 तक भारत में बहुत बड़ी संख्या में प्रजा ईसा के अनुयायी बनेंगे और भारत में साम्यवाद व राजनैतिक जीवन में अपना प्रभाव स्थापित करेंगे।' भारत के राजनैतिक नेता जो ईसाईयों को प्रोत्साहित दे रहे हैं वह इस रिपोर्ट पर विचार करें।

ये किन्तुओं की आबादी घटाने की चेष्टा कर रहे हैं। लाखों करोड़ों रुपये दूसरे देशों से आ रहा है। देश के नौजवानों, देश के धनवानों होशियार ह। जाओ फिर दोबारा पाकिस्तान बनने की गलती न होने पाये।

16 ऋषि दयानन्द : ऋषि दयानन्द ने कहा, मेरी मूर्ति न बनाया मेरी पूजा ना करना। मैं ईश्वर का भक्त हूँ। मेरी पूजा सत्य का कल्याण है। ऋषि दयानन्द ने अपने लिए कोई मन्दिर, समाधि धर्मार्थी नहीं बनायी, दीलत खजाने इकठ्ठे नहीं किए। ऋषि दयानन्द ने जो कुछ कहा बुद्धि से समझी ज्ञान विज्ञान से परखो। जो सत्य हो उसको मानो। अंध विश्वास से बचो। ज्ञान सत्यता हो तो अर्थ समाज में अच्छे। आशा स्वागत है।

ज्येष्ठ प्रकाश सन्ता आभ,

आर्य समाज स्वामी श्रद्धानन्द बाजार लुधियाना
में आर्य समाज स्थापना दिवस

[illegible][illegible][illegible]

-जीम प्रकाश टण्डन महामन्त्री

आर्य समाज अजनासा का उत्सव सम्पन्न

अर्थ समाज अकादमी (विल्ल
अमृतसर) का वार्षिक उत्सव बड़े
समारोह से 21.3.99 से 28.3.99
तक मनाया गया। इ. अमृतसर पर
28.3.99 को नव निर्मित यज्ञ शाला
का उद्घाटन किया गया। इस
यज्ञशाला को बनाने में माथा
प्रकाशचंदी जी स्वी अर्थ समाज
के सदस्य व पुरुष अर्थ समाज के
सदस्यों का विशेष सहयोग रहा।

28.3.99 को इस समारोह में
 आर्थिक केन्द्रीय सभा अमृतसर आग
 समाज शक्ति नगर अमृतसर आर्थिक
 समाज सम्पन्नसर आर्थिक समाज
 ब्रह्मचर्य बाजार अमृतसर आर्थिक
 समाज पाठल टाऊन अमृतसर के
 सभी अधिकारियों व सदस्यों ने भाग
 लिया। आर्थिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब
 के महोदयश्री श्री विजय कुमार
 जी साहू व श्री साहू जी साहू
 मण्डली के उपदेश व प्रवचन हुए।

संगरूर में रामनवमी पर्व

अहर्ष समाज मन्दिर सगस्कर मे
मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी
का जन्म दिवस (रामनवमी)
दिनांक 25.3.99 दिन बरखात प्रातः
8.00 बजे से प्रातः 10.00 बजे
तक बड़े ही उत्साह एवं धूमधाम
से मनाया गया।

इस अवसर पर सर्वप्रथम वडा किया गया जिसमें मुख्य वडामान श्रीमति माधुरी शर्मा पुस्तकालयिका लाजपत राय आर्य कन्या विद्यालय सगरपुर थी। वडा के ब्रह्मा श्री प दशानन्द कुमार जी आर्य पुरोहित आर्य समाज सगरपुर थे।

अनुसर से पक्षरे केन्द्रीय सभा के प्रधान श्री दर्शन लाल जी श्री दिनेश जी सुपुत्र श्री सरस्वपाल पणिक के भजन श्री नरदेव राज जी तथा दूसरे कई महानुभावों ने अपने विचार प्रकट किए।

अमृतसर की सभा आर्य समाजो ने आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया और उत्सव की सफलता के लिए भी पूर्ण सहयोग दिया। दयानन्द धाम अमृतसर से पन्धरी माता जगदीश रानी का भी पूर्ण सहयोग रहा।

इस अवसर पर अर्वा समाज अखिलेश्वर की तरफ से अमृतसर से पधारे महानुभावों तथा कई स्थानीय महानुभावों को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम हर प्रकार से सफल रहा। अन्त में बृहद् श्रद्धा सगर हुआ। राम पब्लिक धर्म

बड़े के परभाव महाशय श्री
महेश कुमार जी प्रचार मंत्री धर्म
समाज सङ्कर श्रीमती राजराजा
जी अध्यापिका श्रीमती सीता गर्ग
जी अध्यापिका आर्य कन्या
विद्यालय सङ्कर श्रीमती कमलेश
राणी जी मन्त्री स्त्री धर्म समाज
सङ्कर एवं अवतार मोडला जी
के रामनवमी पर बड़े ही सुन्दर
प्रभावशाली भजन हुए।

पश्चात् श्रीमान् मास्टर धर्मवीर जी द्वारा मर्वादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी के जीवन पर बड़ा हास्यपूर्ण ज्ञानवर्धक प्रवचन हुआ।

संस्कृत-भाषायां

मोगा में रामनवमी

अर्थ सम्भाव योग्य ये दिनांक
25.3.99 दिनांक बुधवारमार्फत प्राप्त है
ये 9 बजे सप्त रात्रयुक्ति पर्यंत बड़े
हैं। हवाईसेल पर ये समाचार गये।
संस्थान बन गया है कि समाचार गये।
परचात सत्ताग्न भवन में मंत्रीद्वारा
पुनर्वाचित की गयी है कि ये जीवित
है। पुनर्वाचित की गयी है कि ये जीवित
गर्भवत सुनियोग रूप से समाचार गये।
गर्भवत सुनियोग रूप से समाचार गये।
प्रत्येक व्यक्ति परीक्षा और समाचार
को समाचारद्वारा समाचार गये।
पर बोध दिया। की प्रियवर्त देव की प्रियवर्त
प्रियवर्त देव की प्रियवर्त देव की प्रियवर्त

गामाग्रय की मुख्य चटनाओं पर
अलोकपात्र करते हुए तत्कालीन
राजनैतिक सामाजिक दृष्टि का
उद्घाटन करने के लिए राम
बनवास का कारण बताया। स्वामी
सच्चिदानन्द जी ने ब्राह्मण
जी के जीवन वर्णन के साथ
सामाजिक के अन्य पक्षों का
संक्षेप में भी अपने गहन विवेचन
का प्रस्तुत किया।
‘सच्चिदानन्द के परभाव’ सम्मेलन
ने उत्कलजन ग्रहण किया।

सत्य प्रकाश ठण्डे
(माला)

गुरुकुल करतारपुर में प्रवेश आरम्भ

अपने बच्चों को सुस्तस्वर सम्पन्न
बनाने का इच्छुक अभिभावक को
सुचित किया जाता है कि श्री गुरु
विजयानन्द गुरुकुल नरारजपुर (दिल्ली)
जालन्धर पंजाब का मध्य रात्रि
बुन से प्रारम्भ हो रहा है। जहाँ स्कूलों
तथा छात्रवृत्तियों में प्रवेश लेने के
लिए इच्छुक विद्यार्थियों की प्रवेश
पराक्षा सत्र चौदह तथा इम्प्रीस बुन
का होगा। यदि अपेक्षित छात्र सख्या
सतत या चौदह बुन की परीक्षा में पूरी
जा गाइ तो इच्छुक बुन को परीक्षा
नहीं होगी। प्रवेशार्थियों को पूर्ण परीक्षा

जी सफरता का प्रमाण पत्र (जिसमें जन्म तिथि भी अंकित हो) लाया आवश्यक है। विद्यापीठ (समक्ष इष्टर) विद्यालय (जी ए) कक्षाओं में प्रवेश चाहने वाले सम्बन्धित ऊन प्रमाण पत्रों सहित बुलाई के प्रथम सप्ताह में पावे।

इस गुरुकुल में अन्नपास सिद्ध एवं भोजन की सुविधा नि:शुल्क उपलब्ध है। अतिरिक्त अन्य काम को चहान करना पड़ता है।

आचार्य

लूथियाना में शहीदी दिवस

आय सन्तक म्हावि दमानद भाजर
(दाल म्हाजर) सुविधान ये 23.3.99
को हाविदेम भगत सिंह बा उम
गुल जी सुमदेवी जी का लहीवी दिमस
आय सन्तक ये मन्वा। इस अवसर
पर श्री प सुदेन कुमर जी सास्वी
श्री रजवीर का भविदे मन्वात कन्द
आय श्री आत्म प्रकाश का आय
म्हामनी आय सन्तक भगत जन्क
राना जी अमल श्री रामेन जी लार
श्री कुलदीप सय जी आय ये दम म्हा
म्हामनी देन भक्तो जी मन्वाभीमो

पर प्रभवत भवति। इन सहीदों की कुर्बानी के कारण ही देश स्वतन्त्र हुआ यह सहीद आर्य सम्प्रदाय की देन थे। इन सहीदों के प्रेरणा स्रोत महर्षि दयानन्द की महाराज्य थे।

आज देश की सदाचारी परिग्राम नेतृओं की अमरशक्त है। सभी सम्मनों ने बहुत प्रशंसापूर्वक इन राहियों को प्रशंसा अर्पित की।
यसमान बन आर्य (प्रधान)

दिनांक 15/07/55



कृपवन्तो

ओ३म्

विश्वमार्गम्

पृष्ठ नं०

292926

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्रतिनिधि मन्त्रा पंजाब का प्रमुख माप्ताहिक पत्र

पृष्ठ 49 अंक 3, 5 वैशाख सम्मत 2056 सप्तदशर 15/18 अगस्त 1999 दयानन्दम् 175 वार्षिक मूल्य 50 रुपये आजीवन 500 रुपये

त्याग एवं सेवा की प्रतिभूति- महात्मा हंसराज

□ 20 सप्टेंबर 1972, कलकत्ता, बंगाल, भारत-भारत

अतीत की हमने देखा तो नहीं, किन्तु उससे सम्बन्धित एक कहानी सुनते हैं कि इस विषय देव के प्रधानमंत्री महामहिम चणक्य एक रात्रि में अपनी कुटिया में बैठे दीपक के प्रकाश में राजकीय कर्तव्यों से सम्बन्धित कागज देख रहे थे। एक व्यक्ति उनसे मिलने आया। ज्यों ही आगन्तुक ने प्रश्नानुसार बैठ कर अपनी बात कहनी प्रारम्भ की, आचार्य चणक्य ने उस दीपक को तुला कर दूसरा दीपक जला लिया। आगन्तुक ने इसका कारण पूछा तो महामहिम ने जो उत्तर दिया, वह आज भी हमारा मार्ग प्रशस्त करने वाला है। आचार्य बोले : 'अब तक मैं राजकीय कार्य कर रहा था, मैं अपनी राजकीय दीपक जल रहा था। अब व्यक्तिगत वार्तालाप होगा, इसलिए उसे बन्द कर के निजी दीपक जलाया गया है।' क्या अर्थार्थ या इस देव के प्रधानमंत्री का, कारा, आज के राजनेता इसे अपने जीवन में उतार सके।

आर्य श्रुति-मते भारत महान के सर्वमान्य महत्त्व को महान व्यक्ति है। उनको इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति ही कहा है। हाँ, स्वामी दयानन्द के एक शिष्य ने उनसे अपने जीवन में उतारा। इसका नाम था महारथ हंसराज। सुना है कि इनके पास सिक्खे के लिए

स्याही की दो दस्तानें होती थीं। कार्यालय का कार्य एक दस्तान की स्याही से किया जाता था, तो निजी कार्य के लिए दूसरी दस्तान प्रयोग में लानी जाती थी। महारथ जी ने अपना पूरा जीवन निःशुल्क पहले स्कूल की, तथा बाद में डी० ए० बी० कॉलेज को अर्पित कर दिया। त्याग का यह अनूदा उदाहरण था। इसी का परिणाम था कि प्रिंसीपल के पद पर सन्ने समय तक रह कर भी महारथ जी न तो अपने लिए कोई कोटी ही बना सके, न ही २ गज भूमि उसके लिए खरीद सके।

छात्रवृत्ति-महारथ हंसराज महायज्ञ समझ कर ही लोगों समय सम्पत्ति करने में विवशित रहे। इसके साथ ही प्रतिदिन स्वाध्याय कर ही उनका ज्ञान था। यही कारण था कि उनका जीवन संयमित, संतुलित एवं ईश्वर पराधन था। ऐसा ईश्वर भक्त ही अपने पुत्र बलराज को सरकार द्वारा युक्तियों में फंसा देने पर शिक्षा सम्पत्ति है : 'यदि तुम योगी हो, तो तुम्हें दण्ड भुगतना चाहिए। यदि निर्दोष हो, तो शासन तुम्हें यों ही छोड़ दे। क्षमा मांगने का प्रश्न ही नहीं उठता।' आज हमें महारथ जी की नियम-पराधनता तथा ईश्वर भक्ति से शिक्षा लेनी चाहिए।

आपके इस भुक्ति जीवन से उस समय के विख्यात सन्

स्वामी सर्वदानन्द जी इतने प्रभावित थे कि वे महारथ हंसराज से मिलने उनके घर चले जाते थे, जहाँ अन्य व्यक्तियों के पास वे केवल मिलने के लिए नहीं जाते थे। निर्लोभ भाव से महारथ जी ने २५ वर्ष तक अत्यन्त दक्षता पूर्वक कालेज के प्रधानाचार्य का पद सम्भाला तथा इसके बाद उन्होंने इस पद को छोड़ दिया। यद्यपि उस समय उनकी आयु ५० वर्ष से भी कम थी। आज तो लोग ६०-६५ वर्ष तक भी पदों पर विप्रेते रहते हैं। न केवल इतना ही, अग्रिष्ठ आयु पर्यन्त ही उनकी इच्छा इन पदों को छोड़ने की नहीं होती।

कुर्बान, एवम् कर्मणि-कालेज से सेवामुक्त हो कर महारथ हंसराज न तो निष्क्रिय बैठे, तथा न ही कहीं अन्यत्र सेवा करके धनार्जन का यत्न किया, जिस कि आवश्यक हम करते हैं। उन्होंने इस पद से मुक्त हो कर सौध सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज की सेवा के लिए ही अर्पित कर दिया। जिस समय मैं इस प्रकार के त्यागी, तपस्वी, निःस्पृह व्यक्ति होते हैं, वही समय उन्मत्त करता है। वही है वास्तव में आश्रम मार्गता कि ५० वर्ष तक गृह कार्य, नौकरि आदि करके सौध जीवन को समाज एवं राष्ट्र की सेवा में लाय दे। आज समाज में इन मर्यादों का लोप होता जा रहा है।

शरीर से भी सम्पन्न नहीं-महारथ हंसराज ने दयानन्द कॉलेज को जीवन दान केवल भौतिक रूप में नहीं दिया था, अपितु वह दान दे कर अपने शरीर पर से अपना मोक्ष भण्ड, अधिकार भी हटा लिया था। यही कारण है कि कर्मयोग के कारण रोगी होने पर जब उन्हें स्वास्थ्य लाभ हेतु पहाड़ पर जाने का परामर्श दिया गया, तो वे बोले : 'यह जीवन मेरा नहीं है। इसे मैं कालेज को सौंप चुका हूँ। सम्पूर्ण का कैसा अनुदा उदाहरण है। आज तो अनेक जीवननृत्ता इस प्रकार की संस्थाओं एवं राष्ट्र से सभी प्रकार की उन सुविधाओं का उपयोग करते देखे जाते हैं, जो उन्हें जीवन दान के बिना उपलब्ध न हो सकती थी।'

कर्मणि कर्मणि-महारथ जी की कर्मता तथा कर्त्ता ने एक कर्मता थी। आज मनुष्य के जीवन में इसकी महती आवश्यकता है। अपनी कालेज सेवा के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण कर्मों के लिए भी महारथ जी स्मरण किये जाते रहेंगे। मलकाओं को पुनः हिन्दू बनाने में उन्होंने विशेष कार्य किया। इसी प्रकार कागदा, स्वेत तथा बिहार के भूकम्प पीड़ितों की सेवा, उद्यमान तथा गृहस्थ के अकाल पीड़ितों की सेवा ये भी आपका अविस्मरणीय योगदान था। महारथ हंसराज बहुआयामी व्यक्ति थे। आर्य समाज का कार्यक्षेत्र अति विस्तृत है। श्रुति, सेवा, शिक्षा, प्रचार आदि ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें साथ साथ से कर चुकने से ही आर्य समाज का स्थायी प्रभाव जनता में हो सकता है। ईसाई सेवा एवं शिक्षा के माध्यम से ही तो हमारे भाइयों को ईसाई बना रहे हैं। यदि हम म० हंसराज जी जैसे सेवाप्रेमी बन सकें, तो इनका मुकामला किमा जा सकता है।

विवेकानन्द और ईसाई मिशनरियां

Q33 कम्पल डिप्लोम बोयबका

[illegible]

स्वामा विवेकानन्द सम्भवतः
पञ्चभारतीय धर्मन्याय अमरीका
नया युरोपाय न पत्राकर हिन्दु
युवक अन्तर्गतका पत्राभिमता

[illegible]

विश्वेकानन्द धर्म की सत्ता न
आस म दखते हैं न धर्मो म
और न सार्विक विवेक म ये अ
का स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि
धर्म का अर्थ है ब्रह्मचर्यव्रत का
आम तना उसका प्रथम अनुष्ठान
प्राप्त कर लना और तदनुष्ठान
लाना (विश्वेकानन्द साहित्य
खण्ड ३ पृ 248 व धर्म को
धर्मो स्पष्ट मता वक्त परिचित नहीं
करत (विश्वेकानन्द साहित्य खण्ड
३ पृ 323 नवविश्वो ये पता है
कि जब सार्विक धर्मो के कारण
विचार और रचनापत्र होता रहे
ये कहते हैं कि ईसाई धर्मो
का सत्य मानने और प्रसलमान
मुक्त का और ऐसी स्थिति न
कथन स्पष्ट - इसका विवेक देना

रक्षित है। अतः ग्रन्थ धर्म प्रमाण नहीं बन सकते (विश्वकानन्द साहित्य खण्ड 2 पृ 279) और इसीलिए हमें स्वाकार करना चाहिए कि इन प्रयोगों से पर कहीं ऐसा तत्व है जो अधिक सार्वभौमिक है जो संसार में प्रचलित नीति संहिताओं से भी अधिक उन्नत है और जो विभिन्न राष्ट्रीयों के अन्तः स्फुरण का कक्षकण क्या निम्न करन से सम्बंध है (विश्वकानन्द साहित्य खण्ड 2 पृ 279)

सर्वधर्मार्थी तत्व
सर्वधर्मार्थी इत्येव सर्वधर्मार्थी
 तस्य का उक्ति कृतं हि और जो
 है कि हिन्दू धर्म में एसी
 सर्वधर्मार्थी विधान है
 है मगर ये एक भाष्य में कृतं हि
 इन्द्रा यो (हिन्दू धर्म)
 सर्वधर्मार्थी है इस इन्द्रा इन्द्र इन्द्रा
 इन्द्रा इन्द्रा इन्द्रा इन्द्रा
 आदरों को आदर पूर्वक प्रणम
 कर सकता है वन्दन भी करी
 अपना विचार तत्त्व जाओ को
 फेलाकर फेलाको इन्द्रा से नगा
 लोका (विश्वकानन्द साहित्य
 खण्ड ५ पृ १४६) इसमें मेरी
 हमारा वादाप्यन्त हि इन्द्रा वादाप्यन्त
 जायन प्रवाह (विश्वकानन्द
 साहित्य खण्ड ५ पृ ६८) और
 अन्य तत्त्व तथा धार्मिक विश्वको
 के प्रति साहित्य (विश्वकानन्द
 साहित्य खण्ड ५ पृ २३२)
 त्वेकधर्म सन् १८९६ में तत्त्व में
 एक वक्तव्य में बुद्धि कृत है कि
 हिन्दू धर्म हिन्दुओं का कर्म कर
 नही चुकता है इसका एक एता है
 है नही साथ धर्म शक्ति और
 साहित्य का साथ है तत्त्व
 मुसलमान अपना तत्त्व हत्या और
 सब तत्त्व पर तत्त्व और सब
 साहित्य का साधन या इन्द्रा का
 साहित्य का अत्यन्त कर सब
 तत्त्व का उक्ति कृत है और सब
 अर्थ था है भारत वास्तविक
 शक्ति मुसल का उद्धारक शक्ति
 है (विश्वकानन्द साहित्य
 खण्ड ५ पृ २३२) इस सर्वधर्मार्थी
 का कारण है अर्थ सब तत्त्व
 करते है भारत का सब तत्त्व
 व्यक्ति एक प्रत्येक एक सब
 भारतीय नही है है सब मुसलमान
 विद्वान को लता है शक्ति
 सब कुम्भ बुद्ध है सर्वधर्मार्थी
 और सब को इन्द्रा और मङ्गल
 मङ्गल मङ्गल (विश्वकानन्द
 साहित्य खण्ड ५ पृ १९२) किन्तु
 का यह विधिधत्ता का उद्धार
 सर्वधर्मार्थी भारतीय है

विश्वकानन्द अपनी बच
प्राप्ताओं के स्वयं अनेक का पत्र
माराहा का इस्तर मार्यै पुत्र
तथा सन्तरावाहक हात का
अवकाश मल्लार्थ है व सन् 190८ म
अमराकाल म ईश्वर ईसा प्र मय
स्वरूप म है और ईसा फ निव
पुत्रक का अनुवाद भी करता है
अब धामु पन्नाधार के अरु सांसार
क्रान्तर हा बात है ता व इस
दिन मयुख कहत है ता व इस
स्वरूप का कोटो मे खत ह
(विश्वकानन्द साहिब खण्ड २ पु
274 तथा खण्ड ७ पु 193)
अस्ति व कृष्ण बुद्ध और मुमुक्षु
ऐसि को हा बीसो को म गतत
हैं और सावक हा प्रत्यक्ष मनुष्य क
भा. कवीरि उक्तो दुम मात है क
यदि ये इस्वर पुत्र म आत मगार
है तो हम भा खरी ह मी "द्वितीय
हम सकल लला मारिहा तम
म पैपकल भागवत का सन्दर्भाहक
इस्तर पुत्र हा गहा स्वय ईश्वर
स्वरूप बुद्धा विश्वकानन्द साहिब
खण्ड २ पु १९३ उक्त
विश्वरूप है कि वो दिव्य सुकृण
तथा दिव्य ज्ञान इत तथा मारिहा
का हुआ व सा विस्तर क किता
भा अर्थिक का हो सकता ह
ईसविषय विश्वकानन्द ईसा स पुत्र
ईस के बाद तथा भास्वरूप मे जन्म
नेन वले ईश्वरमा अवतार का
सम स्वाकार करत ह व इस
ईश्वरमा पुत्रा और सम्यका का
सोमयक ना करना गतत और
प्रत्यक्ष मारापुत्र का लना ईश्वर
को विधिनि अनुविध्याकर करत ह
(विश्वकानन्द साहिब खण्ड २
पु 230)

विष्णुकानन्द ईसा मसाहक महान
उपदेशक वि. शिक्षाका का ब
का साथ साथ करते ह प्रा
बार ईसा क इन उपदेशों का य
करते ह प्रस्तुत रहन इसका राम
अन्यतया साथ ह जनक
अन्यतया पवित्र ह अन्य
परावी को सख कुछ न न कर
नये अनुसरण करते ये ईसा क
उपदेशों में निहित प्रेम वा
सदयता आदि का शिक्षा का जग
ये पवित्र तथा ईश्वरताम सन्त
माते ह ठक प्रणय क
(विष्णुकानन्द साहाय्य क
191 तथा खण्ड 8 पृ 3 34
पृ 152) पत्तन ये अमराका म
पाषाण दत्त ह (कंठस्थ)

याचजन्म से म्याङ्गल

समाजकीर्ति 45

महान तपस्वी महात्मा हंसराज

गुरु का ज्ञानम न बहुत बड़ा महत्त्व है। बहुत स लोग अपने जीवनम नपन्या का धारण करत ह और उन तपस्या क द्वारा कुछ लोग परमणिता परगया का पात्रा पावत ह इसक लिए वह कठो जल मे खड़े कही तपस्या करत ह कभी एक ठाग क भर छोड़ और तप करत है वा कही अपन खारा भार अगि जला कर तप करत है परन्तु यह फिर भी एसा तपस्यान स परगया का नही प्राप्त कर सकत और कइ लोग धन सम्पति एव एतथज का पात्रा चाहत है और इनके लिए अपना नीद भी हराम कर नत ह परन्तु फिर भी कुछ प्राप्ति नही हाता परन्तु कुछ लाग ऐसे भी होत — आ पवन त्याग और तप म कवल अपन हा उदार म करक दत्त जाति ध मयाज का कल्याण कर जत ह उनम से हा एक मे महात्मा हंसराज जी नवम्बर 1883 का महर्षि दयानन्द सरस्वती के देशव्रतान परभावत जब माहोत्र मे एक लोक सभ हुइ ता उनमे विमर्षण किन्तु गया कि महर्षि का म्युति म उनको भावनाओं क अनुकूल एक शिक्षा सस्था की स्थापना की जाव और यही ठक म — ग पदार्थविद् होगी। यह त्रिवच 8 नवम्बर 1883 का जनसभ मे हुआ और दयानन्द एला वदिक स्कूल खोलन का विमर्षण हुआ और बाद मे इस आरम्भ कर दिया गया। 31 जनवरी 1886 का पर्वधित रूप स दयानन्द एला वदिक कालज की स्थापना हो गई। इस प्रकार क स्कूल मे कालज का चलन क निम्न किसी त्यागी तपस्वी और कान्त पद लिख नोक्वान की आवश्यकता थी इसके लिए महात्मा हंसराज आ विरुजान उस समय प्रथम श्रया म रह कर एम ए पास किया था और जा किस्सा — पा मकारा साकरा का बडा आसना से प्राप्त कर मयात मे उकाग यह पापणा कर दा कि मे इस सस्था की अपना सारा ज्ञानम दत ह और यह विदुल्लेख ज्ञानम पर इसम अभ्यापन का काय करत।

यह पापणा मुन कर बहुत स लोग सारा हा गय कि बिना कुछ लिए यह नोक्वान हंसराज किस प्रकार स इस सस्था का काय कर सकत मयकि ज्ञानम निवाह क लिए प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक बालु का आवश्यकता पडता ह और सभा आवश्यकताएँ धन क द्वारा पूर्ण होती ह नम महात्मा हंसराज आ इस सस्था मे विदुल्लेख पक्षधारी और कोइ वेतन नाल लाग तो एसी आवश्यक म उनका म उनक परिवार का जीवन निवाह कस हाता परन्तु यह पापणा महात्मा हंसराज आ न अपने धर्म मुलखराज जा स विचार विमर्त करन क पश्चात कां थं उनक भाई मुलखराज जा भा बड — पागो तपस्वी व्यक्ति मे वह 60 रूपए वेतन लेत थे। उनका अपन पतन म स 40 रूपए प्रति माह थी हंसराज आ क निवाह क लिए एन स्वीकार कर लिया था इसलिए भा हंसराज आ अपन जीवन निवाह की गरप स निरिचय थे नम हम महात्मा हंसराज आ क त्याग और तप का वच करत ह यहा हम भा मुलखराज जा क त्याग और तप का कभी भूल नही सकत स्वाकि यह जीवो पर अपना अधा वेतन महात्मा हंसराज आ क परिवार क निवाह के लिए उक रत रहत।

महात्मा हंसराज आ न जब दयानन्द एला वदिक स्कूल मे कालज का कार्यभार सम्भाला ता उनक परभाव इस कालजे की चलने के लिए उनक साथ कई और कमाओ और त्यागी तपस्या आध्यापक बुड गय जिसके क लज केवल पत्राभ मे हा नही सारे भारत वष मे प्रसिद्ध हो गया और प्रत्येक व्यक्ति का यह पछा होत लाग कि उसका पुत्र इस कालजे की अन्य नारा मे भा दयानन्द एला वदिक स्कूल मे दयानन्द एला वदिक कालज खुलन आरम्भ हो गय। इन कालजे मे नम गकारा स्कूल कालज की परह शिक्षा दा जाती थी यहा इसके साथ मयकारा शिक्षा और सामाजिक शिक्षा मे तपस्वियों की शिक्षा दी जाता था। दत्त का मयकारा क लिए काय करत बल नोक्वान पर जब हंसराज दृष्टि डालत ह तो उनम स कई डा ए बी स्थाओं की देख दिखीं एत ह। यदि उस समय मे डा ए का कालज मे डा ए बी स्कूलों की स्थापन न हाता तो हा सम्भल था कि हंसराज दत्त इनका जल्द स्थापन न

होता। डा ए बी सस्थाओं मे आज समाज का अन्य शिक्षा सस्थाओं न नोक्वान मे दैत प्रेम की भावना मे दत्त भवित की भावना रेत की।

इन सस्थाओं मे सब से बडा काय यह किया ह कि उस समय हमारे हमारे दत्त म जा राजनीतिक धार्मिक मे समाजिक परिस्थितिया चल रहा थी उनका बहुत प्रभावत किया। डा ए बी सस्थाओं म यह नोक्वान प्रत्येक दिना मे काय करत लाग नम एतन्वित काय का नोक्वान कर रहे थे यहा धार्मिक मे मार्गाधिक काय भी कई नोक्वान न अपन हाथों मे ले लिय थे विमर्षण काय अग्रज का यह मयामा पुर नही हा सका कि सारे भारत का लौक शास्त्र शिक्षा का कामय स इसाई बना दित जाव। क्याकि इन सस्थाओं मे विदुल्लेख का जतरन प्रचार किया और सरकारी शिक्षा सस्थाओं म पढन क कारण स पन लिखे नोक्वानों का "ग रुज इसाईवत का और बन" रहा था उन तप शिक्षा सस्थाओं मे रोक दिया समाज सवा के कार्यो क माध्यम म ज इसाई मिशनरी अपना कृत्रचार कर क लोगों का इसाई बना रह थे नरुनकन क लिए यहा आय समाज क कायकताओं म भी मिल कन समाज सुधार का काय आरम्भ कर दिया अकान पीछन भुक्त्य पीडित मे दूसरा दैवी अपर्पितो क आन पर आय मयाज क कायकन आग कड कर काय करत लाग इनस पूव इसाई अकाल पांडित इत्यदि लोगों को अपन सवाभाव से प्रभावित कर क उनस अनुचित लाग उट रह थे इसके साथ हा जात पात मे नूअरुत का एक चपन सा हमरा दत्त मे फल हुआ था उस भा इन सस्थाओं मे पढन वाला व्यक्तिना ग लाड दिया क्याकि इन सस्थाओं म सभा जायति का पदार्थों पन लाग और सबको समान शिक्षा दा जात लाग।

प्रारम्भिक काल म हमारा डा ए बी सस्थाओं म जितन भा प्रियापन अन्धायक मे प्रथ्यापक हुइ ह सभा मे त्याग और तप की बहुत वन भावना मे क्याकि उन सब के आदर्श महान तपस्वी महात्मा हंसराज आ थे उनक त्याग और तप का प्रभाव अन्य प्रियापना अध्यापक मे प्रथ्यापक पर भा पड बित्त नाहा। सरसित कवल गौरव म हा नम सार ससार मे डा ए बी सस्थाओं का नम गुरुन लाग आज भा भारत के अतिरिक्त कई अन्य न्हा म डा ए बी पब्लिक स्कूल मे डा ए बी कालज चल रह है परन्तु आज जब हम अपन अध्यापक मे प्रथ्यापक वष पर दृष्टि डालत है और उनका पुरान अध्यापक मे प्रथ्यापक को मुकाबल करत ह ता उस अवस्था मे आज हम देखत कि आ ग अध्यापक वष मे बहुत सारी दुर्गिया आ गइ ह और इस कारण स शिक्षा का यह स्तर अब नमर डा ए बी स्कूल कालजे मे नमर रहा जा चलत हुआ कस था। आज इन सस्थाओं के अधिकांश इस आर ध्यान द

19 अप्रैल 1864 को बख्तवाडा (राजस्थानपुर) मे महात्मा जा का जन्म हुआ जा प्रथिवष हम 19 अप्रैल को महात्मा जा का जन्म दिवस मनात ह

आज 1) भोल का मन्थ डा ए बी सस्थाओं म आर आय समाज मे महात्मा "सरज जी का जन्म दिवस प्रथिवष का भवित मनात हुइ हम सन दिन लखा जावा बर ज्व 1886 स लकर 1912 तक महात्मा हंसराज जा डा ए बी कालज के प्रिंसिपल रह। उस काल म हमारा सस्थाओं का मर केस था कस प्रथ्यापक मे प्रथ्यापक हात मे और 1912 स लकर 1947 तक अमरा दत्त का स्वयंभवा कस कास ता और 1947 स लकर 199 तक अम हंसराज सस्थाओं का शिक्षा दत्त कस प्रकार का है। इस पर सभा मुद्विजायिना का ये प्रश्न्य समितिना के अधिकारिना का विचार करना चाहिये। जब गमगीला स सारा समिति पर विचार किया जायता ता पता चलता कि हम शिक्षा क क्षेत्र म अंग तो बड ह लेकिन आय समाज क विद्वानता की दृष्टि स बहुत पात हइ गइ ह। यह ठाक ह कि हमारी आज की शिक्षा सस्थाओं क प्रियाप अध्यापक मे प्रथ्यापक महात्मा हंसराज जी ता नही बन सकत परन्तु यह अपना शिक्षा सस्थाओं के स्तर का ऊचा ता कर मकरत ह

आज हमारा शिक्षा सस्थाओं और सरकारी शिक्षा सस्थाओं म न अनर नही हा। जब कि यहा बहुत अनर हाता थं आज आवश्यकत ह कि हमारा अध्यापक प्रथ्यापक वष ग प्रिंसिपल महापुत्र नम महात्मा तपस्वी त्याग की सहात भूति सल्लाह स सदाग क अवतार धन दालत सुख सम्पदा पाव एतथज न महात्मा त्यागी महात्मा हंसराज जा के जीवन स कुछ डा ग शिक्षा ग्रहण कर। उनका कस एक खुला कियाम ह जिसका पढन स हमे अपने जीवन का टटालन का अक्सर मिलता कि हम कहा ठाक उनके पर चिको पर चल रहे ह।

धर्म देव आर्य

सह सम्पाक

क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट

क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट
क्रिस और धर्मधर्मिकों के बीच का फाट

ब्रुट नं० 1
राजकोट के बाईबल जलपायी गई
दश का कुछ समाचारपत्रों में
यह समाचार प्रकाशित हुआ था
कि मुजरात के राजकोट जिले में
जुलाई 1998 में बजरंग दल के
कार्यकर्ताओं ने मिसन को एक
विधालय में बाईबल का प्रतिया
जलाया

सच यह निकला
राजकोट के जहाँ भी मिसन
मार्च हाई स्कूल में अभ्यासकाओं
न हिन्दू छात्रों को बाईबल में
रख कर भया दिया और उसे भनक
का जलप कहा। इस परचे में लिखा
गया था कि 'वीरू मरा मुक्तिदाता
हू' इस बात में कलुल करती हू
और मैं विरासत करता हू कि प्रभु
याहू का मर पायी के कारण
बसलता पर प्रभु हुई और मैं प्रभु
न्यास सिद्ध करन के लिए व तासक
दिन सभावन हुए इस्त्रिए मैं
उन्को अपना व्यक्तिगत तारणार
स्वाकार करता हू जब छात्रों को
क अभिभावकों को यह बात पता
गया तो उन्होने विधालय जाकर
'सका कटा वरोध किया फिर
विरय इन्दु परिषद से सम्पर्क
किया परिषद के विरोध का उक्त
प्रकार से प्रचारित किया गया

ब्रुट नं० 2
झुमबुआ में नये से बलात्कार
समाचार छप कि झुमबुआ में
नया स बलात्कार हुआ और
जलात्कार करन वाला बजरंग दल
क कारकता था

सच यह निकला
नये से आक्रमण करन वाला
सह का जगसाथ में इन जनजाताय
'नाग' व अंगकासा इसी थे। यहाँ
'नग' इन्दु परिषद और बजरंग
दल का काई अस्तित्व नहा है।
इसके कुछ दिन बाद हिन्दुस्तान
गान्धे में सुखीयता में छप झुमबुआ
गान्धे में इन झुमर वाला हरिषण्य
क झुमर व इसी नाग साथ यहाँ
" नग झुमबुआ में हुआ था
बाद में 'नग'नस एण्ड
पब्लिशिंगल अन्धकार के पत्रकार

का दल जब झुमर झुमरा तो नये
स बातचीत में उन्हें बताया कि
उनके साथ बलात्कार या दुर्घटना
नहीं हुआ असली मुद्दा यह था कि
ये नये सिलाई कढ़ाई का जो केन्द्र
पत्तातो वी उसने सामान बेचने के
माध्यम पर हाकड़ा हुआ था।

ब्रुट नं० 3
उड़ीसा में आस्ट्रेलियाई मिसनरी
और उसके दो बेटों को बिना
जलाया

24 नवम्बर को देशभर के
समाचारपत्रों में बड़े बड़ शीर्षकों
में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि
अस्ट्रेलियाई मिसनरी और उसके
दो बेटों को उड़ीसा के मनोहर पुर
गांव में बिना जला दिया गया। ये
हरसर बजरंग दल के कार्यकर्ताओं
को बलात्कार नेहल दण्ड सिद्ध
कर रहा था।

एशियन एन ने टैटल की
पत्नी गेलीस का बचान दुर्घिनी
में छापा कि मेरे पति और पुत्रों
का हत्या में राष्ट्रीय स्मथसेवक सच
का हाथ है

सच यह निकला
एशियन एन ने उक्त रपट
प्रकाशित होने के अगले दिन सभी
समाचारपत्रों में टैटल की पत्नी
गेलीस का बचान छाप मैं किसी
का टैटो नहा ठहराती। जाच से
पता चला कि हत्याओं का बजरंग
दल स कोई लेना देना नहीं था
हत्या के आरोपी छह लोगों में स
पाच के सम्पर्क किसी न किसी रूप
में काग्रेस स रहे हैं। मुख्य आरोपी
दारा सिंह भी स्थानीय 'विधायक
और उपाय सकार' में यही जपदेव
जैना क काफ़ा निकट रहा है

ब्रुट नं० 4
बायीपट में नग से बलात्कार
6 फरवरी को राष्ट्रीय सहाय
सहित हिन्दी अग्रेजी के सभी
समाचारपत्रों में मुख्यपृष्ठ पर छापा
उठाया व मधुप्रज जिले के बरीपट
में 10 वर्षीय एक लड़क साथ
अज्ञात बदमाशों ने कार में बलात्कार
किया व बदमाश महिलाओं का

पेस धारण किए हुए थे। कार के
बरीपट करने से बाहर निकलने
पर नग को पता चला कि कार में
महिलाओं के चेहरे में घुस रहे हैं तो
यह सोर मचाती इससे पहले ही
बदमाशों ने उसका मुँह दबोच दिया।
बैरिया के घस बालक ने जब कार
रोकी तो नग किसी तरह उनके
घुसल से बच निकली

सच यह निकला
13 फरवरी को इडिचन
एक्सप्रेस और हिन्दुस्तान टाइम्स
के अंदर के पृष्ठ पर कोने में छोटा
सा समाचार छप नग बाच नद
रेण्ड। इसी समाचार के अनुसार
श्री राम बन्द मेडिकल कालेज
कटक के फोरेंसिक मेडिसीन एण्ड
टोक्सिकोलॉजी विभाग का
एसोसिएट प्रोफेसर डा एन के
मोहनजी छत वैचार चिकित्सा रपट
में कहा गया कि नग के साथ कोई
बलात्कार नहीं हुआ था।

ब्रुट नं० 5
उड़ीसा में दो ईसायियों को हत्या
8 फरवरी के इडिचन
एक्सप्रेस और हिन्दुस्तान टाइम्स
दू गतिविधयस किलड वन इन्वोर्ड
इन उड़ीसा। उड़ी दिन के दैनिक
जागरण सहित सभी अन्धकारों के
मुखपृष्ठ पर यह समाचार सुर्खियों
में छप कि उड़ीसा के कथमल में
अज्ञात हमलाचरो ने गग कुटी के
चालो में अपने तीन किशोर
साथियों के साथ 'नकदा काटने
गया एक ईसाई किशोरो के साथ
बलात्कार का प्रयास किया गया
और बाद में उसका तथा उसके
साथ अण्ड किशोरो में से एक की
पीट पीट कर हत्या करदी।

सच यह निकला
10 फरवरी को राष्ट्रीय सहाय
न एक कालम का छाटा सा

आर्य समाज स्थापना दिवस व रामनवमी पर्व

आर्य समाज आमनगर में
18.3.99 को नव सकसर तथा
अर्ध समाज स्थापना दिवस मनाया
गया तथा दिनांक 25.3.99
रतनुसार वैद्य तुलका नवमी मुख्य
को अर्ध पर्व रामनवमी मनाया
गया। जिसमें प अरुण तस्वीरी
जी ने प्रासंगिक प्रबन्धन करी हुए
आर्य समाज की स्थापना के

समाचार छप ईसाई पुजारी व
बन्धों की हत्या करने वाला ईसाई
ही निकला। उक्त ईसाई पुजारी
और बन्धों का हत्याका कोई और
नहीं उसका अपना ही रिपोटर था
और यह ईसाई था।

ब्रुट नं० 6
उत्तर प्रदेश के गांव में अमरीकी
समाज सेवी दम्पति के साथ
दुर्घटना

3 फरवरी को टाइम्स अफ
इंडिया के प्रथम पृष्ठ पर उक्त
समाचार प्रमुक्तता से छप जिसमें
कहा गया कि इलाहाबाद में बजरंग
दल और हिन्दू जागरण मंच का
कार्यकर्ताओं की धमकियों के बाद
अमरीकी समाज सेवी सिल्वेस्टर
दम्पति ने बैंगलूर सेमिनरी में
सरन ली। उन्हे धमकी दी गई था
कि वे अपना स्कूल आर
चिकित्सालय बन्द कर दें

सच यह निकला
उक्त समाचार द बजरंग
सिल्वेस्टर दम्पति राह गये और
उन्कोने इसका प्रत्युत खटार किया
को अगले ही दिन 4 फरवरी का
टाइम्स अफ इंडिया के पृष्ठ 8
पर दो कालम में छप। जाप
सिल्वेस्टर ने बताया था कि न ता
यह कोई मितावरी हैं और न डा
कोई सेमिनरी है तरण ली है। इनका
ही नहीं इलाहाबाद में दो ऐसा
कोई सेमिनरी है हा नहीं। डा०
सिल्वेस्टर और उनका पत्नी हेलेन
सिल्वेस्टर ने बताया कि व कथा
एसोसिएटिड प्रेस के सम्बन्धता स
मिले ही नहीं।

प्रश्न-जीवाणामयवृद्ध (रुबी)
(चायब जन्म के अंक 28
फरवरी 1999 से साधार)

सम्बन्ध में व भर्षाट पुरुषोत्तम
राम चन्द्र जी के जीवन के सम्बन्ध
में अपने विचार बजला के सामने
रखे।

इन अवसर पर श्री प्रेम जी
भाई रामा ने भजन प्रस्तुत किए।
बन्ध विचारकों की अन्धकारियों
में थी इन सफलता में भजन विषय
धर्मवीर जन्म
(नया)

भारतीय भाषाएं कब तक अंग्रेजी की गुलाम बनी रहेंगी

□ अमृत प्रसाद मुखर्जी

"हमने कबल भाषा हा नहा
ना का ज्ञान क भयपूर्ण
माम भू है हिन्दी भाषा का
अमन" अरुण शैल का 'काला क'
मपून रखना ह कबन हिन्दी हा
रुन का एक राष्ट्र क रूप म बनाए
रख सकता ह गाथा जी क स्वदेशी
श्रमियन म हिन्दी को राष्ट्रभाषा
रूप म अपनाव का काम प्रमुख
गुण वा राष्ट्रपति शंकर दत्तन
ममा 28 अक्टूबर 1995 विज्ञान
भवन इलम्मा

पिउन एक हजार साल स
हम्मा हमर दास का सम्पक भाषा
रहा ह अमार खुसरो गुल नानक
दास कबल खोमि गुल गोविन्द
दास और मरना गाथा आद
मपूराय न हिन्दी का विरसत
मजबूत करन म बागदान दिया
कन्त सकल हिन्दी क प्रसार क
नए कई कसर नही छडेगा
गृहमन्त्र सतलुज पञ्चकान 28 29
नवम्बर 1995 विज्ञान भवन

अभा समान्य पूरा पछा नही
वा कि उठा क सय सात एक
आर समचार शोर्कक उठा दिखल
लम्मा कि पुष्पन्त का हाण्डर ठाक
नहा क्या नही ठाक ह वा या
पुष्पन्त का हाण्डर ? ठाक समचार
कहल ह कि हिन्दी भाषा
समचारपत्र पुष्पन्त गानन का हालत
नक नहा ह विज्ञान भवन म
गठपति र सम्मने पाए गए इस
पुष्पक का उपचार डाक्टर र मो
मामन्त्र गाँधीबा आम्मान म हा
म्मा ह डाक्टर म आर्थिक चोटो
क करण पक्का हालत को गमर
कायन ह

इसक अतिरिक्त लोक सभा
अध्यय क मार हिन्दी भाषा
भारतीय भाषाभा) क निर धरना
ह रा अजिल भारतीय भाषा
सरमन्त सगदर क महाराष्ट्रिय
गणकर्म सिह को भा भणको दा
गए ह कि यह अपन लम्बु देन न
अन्या ठसका वा पुष्पन्त बैसा
नम किया जायेगा और लम्बु उधर
क रूप पदका जाएगा। 21
नून को घटना और 30 अक्टूबर
1995 को प्रकाशित समाचार

कनो पीटे गए पुष्पन्त ?
किसने पीटे और पिटाया
पुष्पन्त को ? किसने धमका
दा और दलाल राजकर्म को कि
पदि उसने लम्बु नहीं डटला हा
"सका हाल पुष्पन्त बैसा हा कर
दिया जाएगा ? क्या माया वा पुष्पन्त
ने ? किसलिए सात आठ साल से
सतत धरना दिए बैठे हैं भारतीय
भाषा सत्संग सगदर के पुष्पक ?
न राष्ट्रपति जा ने इस जान समझ
और न केन्द्रीय गृहमन्त्री भी स्वराज्य
पञ्चकान न पुष्पन्त को पटा गया
बुलसिए कि वह हिन्दी सहित
समस्त भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी
का गुलामी से आजाद करने की
माग कर रहा वा राजकर्म को
भणको दा गई और भणको दी वा
रही हे इसलिए कि वह चाहत यह
है कि हम भारत के साथ अपनी
भाषा बोले अपनी भाषा मे अपना
कामकाज को भारतीय प्रज्ञा का
सहज प्रयुक्तन हा यही तो राष्ट्रपति
जा वा कह रहे थे उस दिन यका
बला उस दिन गृहमन्त्री जी न था
तो कही भी इसी आत्मय का
सकल्प भारतीय ससद मे भी एक
नहा दा मार पारित किया ह यहा
सकल्प लोकसभा प्राय सभा और
जनसभा मे भी प्रत्येक चौदह
सालम्बर का किया जाता है यह
भक्त भी आजादा का मुख मुद्रा
वा देश का आजादी का लड़ाई
आयोजन नहा हिन्दी सहित भारत
का समस्त गण्टीय भाषाओं न लडी
भी भारतीय ससिधाय मे भी अंग्रेजी
का अननकाल तक चलने की कोई
जात और व्यवस्था नही है यमा
राजनीतिक दलों के नेता दस का
लमय बुद्धिबाजी और आम आदमी
वा चाला है कि हम अपनी भाषा
काले अपना भाषा मे कामकाज
कर ताकि दस के विकास मे सभा
को जाना समझा सहभागीता दी
सक वाट की भाषा हिन्दी और
मायाय भाषाएँ हैं तो सब की
भाषा अंग्रेजी क्यों है और क्यों
रहे ? समाज की भाषा कुछ और
शासन की भाषा कुछ और क्यों
है क्या रहे ? यह सवाल के सत्यदा
पारम्पर के विरुद्ध है इसके कारण

समाजद्वन्द्वता बदली है तो वा
भारतीय भाषाओं को "नकिन्तन
कले अतना को संरक्षण और
बदला क्यों दिया जाता है ? लोक
सेवा आयोग को परामर्शो मे
अंग्रेजी भाषा की अनिवार्यता क्यों
है ? क्योंकि इसे दस का दा प्रसिद्ध
आजादा भा नहीं बनाता अंग्रेजी
की आवश्यकता को अनिवार्य बनाने
और मानने का कारण क्या है

आठ साल हो गए धरना दौरे
मिदमिधारे मिक्ते करत सत्संग
क सभा कक्ष म कूद कर पुष्पन्त
को अपना डड्डा पसली तुड़वाये
पुलिस की मार खात जलत जल
तम्बु उछाड़ते सही गुप्ति यणी
मे ठिठुल तपत और भागत मूख
का पचात बागमारा स लहर
अभावप्रसत असहाय विपद्गा जीते
देश क तथाकथित नेताओ बड़
लोगो विद्वानो सम्पदाका पञ्चकारो
और समज विज्ञानियो का परिक्रमा
करत ? क्या मिला इन पुष्पको
का ? मे न अपनी राखी रोटा के
लिए सभ्य और साधना सार रह हे
और न ही किसी राजनीतिक दल्य
का पुलि क लिए व न पुष्पन्त
प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हे
न कोई पद पान के लिए इनका
एक मात्र उद्देश्य है देशवासियो को
सम्पन्त और परिकृत करना
उनका उनकी दनदारीसे से अवगत
करना

क्या यह अपराध है ? यदि हा
ता फिर मानना होगा कि यह भा
अपराध हो वा और है जो उस
दिन विज्ञान भवन म देश के प्रथम
पुष्प महामहिम राष्ट्रपति जी और
गृहमन्त्रा वा ने कस और यदि उनका
कथन वा बयान असत्य नहीं हो
थे भारतीय भाषा मे संरक्षण अंग्रेजी
के पदाधिकारियो और पुष्पको का
वह अनुदान और उनकी माग
अपराध क्यों है जोकि उनकी
हड्डी पसली तोड़ दा गई ? एक
ही समान कार्य के लिए किसी का
अभिमान और अभिमान और
किसी को दण्ड क्यों ? यदि यह
सच है कि हिन्दी से राष्ट्र की
एकता है और यदि कबल हिन्दी
दा भाग को एक राष्ट्र क रूप मे
बनाए रख सके है तो हिन्दी
अभा त, अंग्रेजी का दस क्यों
है ? तो फिर हिन्दी और इन्डो
राष्ट्रीय भाषाओं को लोक सेवा
आयोग क नीतिवारे में विचारियो

की गलत अग्रमति क्या किया
जाता है ? यदि हिन्दी भाषा का
गाथा वा ने देश का परसता मना
वा तो ठाकें कोसिती का अंगन
क बाहुकर्म म सुखानुपूति क्या
होती है

मै यह जानता ह कि मेरे इन
प्रश्नो का उत्तर मुझ और दस क
कक्ष मे नही दिया जाएगा अपन नम
म मुठ और मन क बाध का अनय
दिन प्रशिक्षित बहता वा रहा है
असत्यवादिता हमत दुस्त स्वभाव
क गइ है गमा गए गमादस
जमुवा गये अमुनादस का प्रभुति
प्रसल हो उठा ममार दस क मना
जो बोलेल ह डे मारना नहीं करना
नहीं आर वा करते हैं ठसक
उनका बोलन स का लारमण हावा
नहीं हिन्दी का मर हा ता हिन्दी
का प्रसल अंग्रेजी का मर हा हा
अंग्रेजी का गुणगुवाद प्रचल सार
पर पाछर हि क्षेत्र म सन करत
पाछर का राजनीति और गवतान
का पाछर समान्यता वा गए ह
यह पाछर जिहा हुआ उठा
बजाजिह है "स का हर खास
और अन्य मजमा इसस परिचित
भी है और इसका सिक्का भी

हमार दस के मतबोको का दस
को ठोठना होता है ता दस का
एकता की दाद नून कर दस ह
कि जब दस टूटा ता उसक टूटन
का चप वा आराप उन पर नहा
किसी और पर नग वा लम्मा
जाए वात सामाजिक संरसता अत
न्याय का करते है और गांधीवाद
का जर फैलाकर समान का पन
दर पाँ ठोठन का काई अबा
नही चुकते सैद्धांतिक स्तर प
सत्यवादीक जीवन का गुणधर पर
प्रतिपादन और राजनीति का
अन्याधिकरण प्रपट वात एव
कासेमन को भुमका का वारा
कारत है किन्तु व्यवहारिक स्तर
पर काल नम एकन करत ह
प्रत्यक्षता को और प्रत्यक्षता का
बहास हात हैं अन्यायकारिता का
चालन ऐषण करत है "स का
अत्यधिक और कड़ापुला का लोक
किता प्रकट करते ह किन्तु उस
अंग लगान का कोई अवसर नम
चुकरत लोकसभा वा बगवदगत
पुनर्विधियो और उनक कारण
कायमकी राप्ता मे बेहिशाब का
अवधारी के अवसरवारे काल
(सूच 7 पर

(पृष्ठ 6 का लेख)

उत्पन्न हो चो छाने पर बिना
ज्वस्त करते हैं तो बनसा ना मे
पुर्णपैठिया की बकालत करते हैं
युक्तीसता द्वारा प्रेरित आतंकवात
कामीर की नदी देश के अनेक
भागो मे अराजकता और
अलगववाद की आग जला रहा
है भारत सरकार सेकुलरि नेत
और मुस्लिमी सभा जानते हैं कि
इन आतंकियों को पकिस्तान मे
प्रशिक्षण दिया जाता है यह सक्को
पाता है कि ये कहा रहते हैं इनका
फलन पोषण कौन करता है और
इन अपने चरो मे छिपाकर कौन
रखता है। मकनु उस ओर ध्यान
नहीं दिया जाता तो कबल इसलिये
कि यह उनके पाछाड़ का अण है।
यहा उनकी सभा राजवासी का
मूलाधार है वे देश की युधि गवा
सकते ह गया द्रो है लेकिन
चोट नहा गया सकत ? गरीब
हजाना का सनेदारीय वछव
बीचवा मिश्रीओ का ककवा
कौन बतोगासत स बुद्धी भवा का बहा
जाइ अन्य नही है इनको बनाग
रखने से हो इनका स्वार्थ सिद्ध
रहाने है गगनको भूख बीमारी और
बरोबगरी का बाँब बोकक शोट
का कसल काटना राजनीतिक
गठनी का मूल चरित्र है ये मच
पर स सामर्यात्मक लक्ष्यो से लड़न
और उन्हे मिटा देने के लिए
एकबुटता का आग्रह करत हैं और
मच के पीछे हिन्दू मुस्लिम ईसाई
क बीर हगडास कराने का रणनीति
जानते हैं किसे सच माने दसकसी ?
नसोओ द्वारा कोल और कर ग
रहाओ की कि अपन अनुभव को ?
दस के दन सवकीयन नेताओ पर
विश्वास करत करले देववासिओ
का अब अपन ठस हा जीवस्वास
हान लगा ह

देश का भाषा का लेखक
राष्ट्रपति की चिन्तिन और गुमरासी
"नी दु छा हैं जो क्या ? ससद द्वारा
पारित सकल्प का राष्ट्रपति
समकृपा प्रदान क्यो नहा करत ?
उसका किमत्वचन करले मे गुमरासी
का पेशगी और बाधा क्या है ?
"ना कार्य 15 अप्रैल 1947 और
उपकर बार 26 नवम्बो 1965 को
हा जान चाहीय या यह 26 नवम्बर
1965 तक क्यो नहा हुआ या कियत
गया ? देश की भाषा को
राजनीतिक रण सिन्धी और क्यो
दिया लखियो का जीव किजने
ककवा ? भाषा के नाम पर देश

को किसले बाटा बा और ये हो
अब भी देशमात पर भाषा और
वक्कब का राजनीतिक खकर चलत
रहे हैं फिर भी महापहिम राष्ट्रपति
जी को साधुवाद कि उस दिन
उन्कोन अपना धाबन बद करक
भारतीय भाषा सरक्षण संगठन के
मुक्को को अपनी बात बहने दा
उन्कोने उनकी बात सुनी हा इससे
सरकार असला परतान हुआ तो
क्यो ? देशवासो अपनी बात अपने
प्रथम मुच से नहीं कहे करगे तो
किससे कहे करगे ? राष्ट्रपति जी
को शांतीना को सरकारी अमले
न अपने वसरीपन का शिकार
बनाया तो क्या ?

दिल्ली के इडिया गेट क पास
साहजबाई मार्ग पर स्थित सभ लोक
से सधुओ को कार्यालय क
सामन की घटी पर धरने पर बैठे
बालको क ही नहीं देश क दुख
लोक को सख भी समय समय पर
और बार बार इस प्रकार का
जवाहर और जल प्रथप किमा
जाता रहता है न्हा के नामी गिरामी
जमिन्कत मुस्लिमी नेता पक्कर
कोनकर मुक्क और बुद्ध इन
मुक्को को धरनास्थल पर जाकर
अपन कोटो खिचवा चुके हैं
सकल दे चुके हैं सकल्प दे चुके
हैं लेख और सम्प्रदायीय स्थिणे
का धुके हैं कई बार महापिमान
की मुक्की दे चुके हैं लेकिन
सकल को जगो कोई नहीं बढा
इससे अगे कोई फलन नहीं ब्याता
उठता तो क्या ?

क्या इसलिये कि यह चरमुच
सत्ताग्रह है पुर्णवसा राजवागि
निरपेक्ष सता सत्ताग्रह ? क्या इनका
बात करले के लिए तभी बुलाया
जाएगा जब ये युवक निरास होकर
मुक्त न अपना हाथ ठगर ठठा
लेते जब हिन्दू हिन्दू मे स्तरण पर
नहा आनयासत होगे ? भारत राष्ट्र
की गरिमा और एकता अनुभवता
कनाए रखने की सतिपूर्ण सखन मे
रत इन युक्को को हिस के माग
पर थकेलने का कार्य क्यो कना
का रहा है कि यदि हुये अपनी
मत को चुनन है तो कया से नहीं
कत से नाम से ? क्या अब तक
का समय समया हुआ और हाकत
का समय आरम्भ हो गया है ?

देशवासि बिना पिता पर बैठे
हुए हैं। पिताओ और सकसी को
कमो नही है। प्रत्येक संवेद एक
नया सकट लेकर आता है और

मटिण्डा में हवन यज्ञ

आर्य गुरु सैन्यर सैन्यर
स्कूल भटिण्डा के प्रांगण मे क्या
छलता प्रारम्भ करले से पूर एक
महापन्न का आयोजन किमा गया
हवन यज्ञ गवन आर्य प्रकलत जी
वागवसी या एव अवाध सुनील
मुनार को शास्त्र पुरहित के बहल
मे हुआ यह कार्यक्रम हा
कुलसन्तराय जी अग्रवाल का
अध्यक्ष म हुआ हवन यज्ञ के
यजमान म् मुलननरायण या अग्रवाल
प्र.अन श्री अलक अग्रवाल मनेवर
आ अलि मुनार जो हा प्रेम पदिया
बा सपनीक एव आमत शक्ति
बिन्दु प्रिखपत आर्य गुरु सैन्यर
सकटवारा स्कूल बने

यजपरात श्रीमता सतिबिन्दु
जा ने मे हास्यो कोहलसे मे सधु
भवन सुगये भवनोपरानत आ
हुकुमचन्द का गायल आ वमारचन्द
"ना आभाता शक्ति शक्ति शक्ति आ
माह्न लाल जा मा चो-कानु राम
जा न कोलत हुए बच्चो के पदिया
उ-बलत होने को कामज न्हा आ
प्रेम भाटिया का उपपयान अर्धशक्ति
सधु पकन मे कस कि स्टाप मे बच्चे
बहु-क पाठ हैं किनोने 1995 प्रानी

प्रत्यक शाम एक गभीर समया
का मन्य दाता है चारो ओर स
अव क्या हागा क्या हागा का
आवाज सुनाइ दसो है हर बात
को तान अब इस सवाल पर हा
दूटन लगा है कि क्या हागा इस
दर का ? यह स्थिति पिताजनक
भा है आर आतामिन्त करन कामा
भी पिताजनक इसलिये कि यदि
सौर कोई समाधान या रास्ता दिखाई
न दिया ता देशवासि निरास का
शिकार नकर कोई गलत और
अन्यक मार्ग अपना सकत ह आर
आस का कारण इसलिये है कि
"यब सभा पिताए समान हो जाता
हैं सभी का मन किता एक
चिन्म पा कन्डित हो जाता है तो
परि न होत हा है तथा
प-रतन का दवता अवतारि
हगत है लोकमानस की कोख
स सभी साकनायक का मन
हुआ कररा हैं। ऐसी ही
परिस्थितियो मे इस देश को कभी
आ राम गौतम बुद्ध चापक
सकताचार्य दयानन्द शिवकानन्द
शिवक और यादी मिले ये और
अप प्रकलत नारायण लोकमानस
कहलाते थे। लोकमान की क्वा
ही व्यवस्था का बदलने और
सुधारने का अर बनती आई है

पर यह हवन यज्ञ कवाया नवन
अवलेन की अग्रवाल ने हिमा का
बनाने एव मेहनत से काय करले का
सकल्प दोहराया इस कार्यक्रम म आ
अलत मिश्र श्री शिलाच चन्द का
पहवाकत आ आ पा मरुल तथा
अप सनब के मन्त्र सदन स्थिति
हुए आदरणीय का कलचलताम या
अग्रवाल ने महर्षि द्वारा किम गए
कार्यो की उच कत हए स्वा
पिलताद्वार के बार म विस्तार म
बताया उन्कोन कहा "म शक्ति द्वारा
दिखाने पय पर चले प्र.अन "पा एव
प्राचाया जा मे स्थिमासत हुए मया
सदस्या विवेकेश्वर का प्रम भाटिया
या आतामिन्त या सुगुण अशोक
का स्थाप एव बन्ना का "पदिक
धन्यवाद किमा शक्तिपत सधु
वागवसी "ना ने तथा का आसवाप
देत हुए शयकम का "म मुलवा"
कायक्रम सम्पन्न होतान पर "ना
मुलननरायण जा व आ आलक
"ना अग्रवाल का आर सगे गल सज्जन
का प्रसद विवरित किमा गया

अशोक कुमार अग्रवाल मनेवर
आर्य गुरु सता स न्हा बहिन
सहते पाछाड़ पुण्यन्तो को पा
बा रहा चारन ओर अ
राजकरी का दा हा रहा
धमाक्यो का यह सकल ह कि
अप किता एत साकनायक का
उत्पन्न हान का है ना बस अब
कृता हो युक् को चापना करन
इस बिग" का बनागा रात
कमल या है क नन विकास न
होकर निष्काम कर्म म् न ह म
परिवातन का निमित ब्रम नव्यर
"हा क्वाकि यह क्वाकत
नमनतापत हो तो है नो नम सभ
का बासने नहा द रहा है "ना
अपने कह का ना कन न्हा "न
और यदि कोई पुण्ये" उस
कना चाकद है त उसका हर्षा
पसलिया बुझा दस है यदि हम
प हत है कि दस म काई सधन
कलस हो ता यह प्रथम एव कवन
किसी एक का नहा सक्ता हान
चाही कि कक एक ताहा जाता
रहगा न्याम का हर्षिम आर कक
तक सधते रहेगे हम इस मुकदरती
की तरह ? यह समय प्रान हा
समाधान का कारण और कारक
होगा कारक हो सकत है कारण
होत अथा है।

(आर्य जन्तु 3 दिसम्बर 1995
से सभा)

विवेकानन्द और ईसाई मिशनरियाँ

□ डा. कल्याण विपरीत नीलकण्ठ
(गतांग से आये)

कि उनके असहज अनुभवों ने इन उपदेशों का जलन नहीं किया और फिर भी ईसा उनके 'धर्म' के महानुभाव हैं' (विवेकानन्द संहिता खण्ड-9, पृ 152)। ये 29 अक्टूबर, 1896 को लंदन में दिए गए भाषण में इसी बात को ब्याप्त कर कहते हैं, 'ईसा को उस शोकापेक्षित का स्मरण करो। जो व्यक्ति इस उपदेश को कार्यरूप में परिणत करेगा वह उसी क्षण देवता हो जाएगा। सुनो! मैं तुम्हें इस देवता को ईसाई हैं? वो क्या तुम का नाम बताते हो, ये सभी ईसाई हैं? इसका वास्तविक अर्थ है कि ये किसी-न-किसी सत्य इन उपदेशों के अनुसरण करते ही वेधा कर सकते हैं। तो करोड़ लोगों में एक भी सत्य ईसाई है या नहीं, इसमें संदेह है' (विवेकानन्द संहिता खण्ड-2 पृ 167)। विवेकानन्द अमरीका और इंग्लैंड में ईसाईयों के बीच कई बातें इस प्रश्न और संदेह को उठाते हैं, लेकिन कोई बुद्धि-सम्मान उभर सामने नहीं आता।

ये ईसा मसीह के व्यक्तिगत को दो रूपों में बांटते हैं आध्यात्मिक साधक, उनका उपदेश को निष्ठा से पूर्ण है, अनुसूती साधक, जो मुख्यतः धर्मनिरपेक्षता का कार्य करती हैं (विवेकानन्द संहिता खण्ड-9, पृ 33-34)। ये इसी प्रश्नचर्चा में कहते हैं कि इस की 'मिलान प्रेम और सत्य उपदेशों की 'सर्वशक्तिशाली' तथा आध्यात्मिक शक्ति सदैव जीवित रहेगी, परन्तु इनसे यह 'महान शक्ति' उनके आरोग्य सून के चमकती नहीं गयी है।

बौद्ध धर्म प्रथम मिशनरी धर्म
विवेकानन्द का मत है कि ईसाई मत हिन्दू धर्म से प्रारंभित हुआ है (विवेकानन्द संहिता खण्ड-8, पृ 294) तथा इसकी नींव 'बुद्ध धर्म' है। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-10 पृ 283) ईसा की सत्त विषय पर पुनर्जात बुद्ध को सिद्धांतों में देखी जा सकती है। बौद्ध धर्म दुनिया का प्रथम मिशनरी धर्म था और उसने कलासत के बिना प्रेम से बड़ी सख्या में लोगों को दीक्षित किया था विवेकानन्द संहिता खण्ड-10, पृ 11

1. एक कैथोलिक पादरी ने '17 शताब्दी को देखा और एक पुस्तक लिखा जो उसे परमेश्वर का दिया था। इस्लाम और ईसाई धर्म भी मिशनरी धर्म है परन्तु दोनों ने ही 'यस का प्रयोग किया (विवेकानन्द

संहिता खण्ड-1, पृ. 278) तथा 'मुकुटावारी धर्म' (विवेकानन्द संहिता खण्ड-3, पृ 238-239) के वनके अनुसार तत्काल भी ईसाई धर्म का प्रसार हुआ, पूरे ईसाई इतिहास में एक उदाहरण भी इसके विपरीत नहीं है। 'तुम लोग इस्लाम से क्या अच्छा कर सकते हो?' (विवेकानन्द संहिता खण्ड-1, पृ 278) ये ईसाई सम्प्रदाय को व्यापार प्रथम पते हैं और कहते हैं कि बिनाका धर्म व्यापार है, ये धर्म में भी व्यापारिक स्वार्थों, धूर्तताओं और संकीर्णताओं को ले आते हैं। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-3, पृ 387)। ये प्रमाण देते हैं कि अमरीका में ईसाई पादरी 'न्यू इन्डिया' धर्मिक केला तक गये हैं और इस तरह करोड़ों रूप्य खर्च करते हैं। इसके साथ ये सदैव ईश्वर से कुछ-न-कुछ उम्मीद करते हैं। परिणाम में पराजित अधिक हैं। चर्च बना एक प्रश्न है, ये यूरोप हैं यदि ईसा तुम्हारे पास होता तो इन्से अपराध नहीं होते। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-3 पृ 238)। विवेकानन्द ईसाईयों के बर्णनसि संस्कार की भी प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं कि 'बर्णनसि' का अर्थ है-आध्यात्मिक जीवन में सीधा प्रवेश, ईश्वरवा प्रकाश तक पहुँचने (विवेकानन्द संहिता खण्ड-3, पृ 197) कुछ मिशनरी विवेकानन्द को 'बर्णनसि' देना चाहते थे तो उन्होंने उनसे कहा कि यदि दे सकते हो तो मुझे आत्म का बर्णनसि दो। यदि नहीं, तो तुम ईसाई नहीं हो।

विवेकानन्द ईसाईयों के मुखारिष्ट धर्म अनुष्ठान को भी 'असह्य' जर्मियों की एक अति प्रयोग प्रकाश का अवरोध' मानते हैं और कहते हैं कि इस प्रथा के कारण ईसाई मत ईसा का धर्माध्यक्ष से दूर हो गया और उसमें दूसरों के ऊपर अत्याचार तथा रक्षाधर्म करने का निष्ठर भाव आ गया। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-8, पृ 85-86)। विवेकानन्द ईसाई धर्म की तुलना हिन्दू धर्म से करते देखते हैं और दोनों के अन्तर की बार-बार रेखांकित करते हैं। उन्होंने अमरीका, इंग्लैंड, भारत तथा भी धर्म की चर्चा की और ईसाई मत आदि मत-धर्मों को समझने का प्रयत्न किया, वहा हिन्दू धर्म से उनके पृष्ठभूमि को समझने में सहायक मिश्री है। उनके विचार में हिन्दू धर्म और ईसाई मत में कुछ मूलभूत अन्तर निम्नलिखित हैं:-

1. हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति पर व्यक्ति नहीं है, जबकि ईसा के अन्तर्गत में ईसाई मत और मोक्षमार्ग के अन्तर्गत में इस्लाम खर्च नहीं रह सकता। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-4, पृ 278)।

2. हिन्दू सत्य ऐतिहासिक न होने के कारण सत्य हैं और ईसाई मत ऐतिहासिक है तथा मनुष्य प्रणीत है (विवेकानन्द संहिता खण्ड-5, पृ 225)।

3. हिन्दू ईसा के 'शोकापेक्षित' पर ब्रह्म रक्षा है, किन्तु प्रत्येक ईसाई 'हिन्दू चरित्र आत्मक' के बारे में कुछ नहीं जानते (विवेकानन्द संहिता खण्ड-1 पृ. 284)।

4. हिन्दू धर्म में ब्रह्मज्ञान का कोई स्थान नहीं है, जबकि ईसाईयों में इसका विशेष महत्व है। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-10, पृ 272)।

5. ईसाईयों ने अपने श्रद्धालुओं का गला काटकर समुद्रि प्राप्त की, किन्तु हिन्दू इस कोमा पर अपने उन्नीत नहीं चाहते। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-10, पृ 236)।

6. ईसाई 'मुनिरास' के धर्म 'परिवर्तन' के लिए हजारों डाकरी देता है, परन्तु हिन्दू ऐसा नहीं कर सकता। हिन्दू पूर्णतः निस्वार्थ होकर आध्यात्मिक सहायता करता है (विवेकानन्द संहिता खण्ड-10, पृ 16)।

7. ईसाईयों में ईसा मसीह के रक्त द्वारा मोक्ष अन्तर्गत मेमने के बलिदान से स्वयं को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति हिन्दू धर्म में कभी भ्रम नहीं हो सकी। विवेकानन्द ने कहा कि ये ऐसा मोक्ष, ऐसा दवाकर कभी स्वीकार नहीं कर सकते जो दूसरे के रक्त से मिलता हो, चाहे तब ही क्यों न मिले (विवेकानन्द संहिता खण्ड-1, पृ 275)।

8. हिन्दू धर्म सहिष्णु है। वहा एक कि भाषा में पहले हिन्दूओं ने मिशनरी का स्वागत किया था, जबकि अंतर्गत उसे रोक्ने चाहते थे। इसके विपरीत ईसाई मिशनरियाँ हिन्दू धर्म के प्रति को अस्वीकार हैं (विवेकानन्द संहिता खण्ड-1, पृ 281 तथा खण्ड-10, पृ 254)।

9. ईसाई विद्वान हाथ फेरकर ईसा की शक्ति को स्रोतिका करने का एक करते हैं, स्वयंसे विवेकानन्द के अनुसार यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य के पास हो सकती है (विवेकानन्द संहिता खण्ड-3, पृ 196)।

स्वामी विवेकानन्द 'धर्म परिवर्तन' की धारणा की ही

'अध्यात्मनयन' कहते हुए उसे अस्वीकार करते हैं (विवेकानन्द संहिता खण्ड-10, पृ. 243)। इसी कारण ये अस्वीकार आदि किसी को बर्च-बर्च कहते हैं कि ये मिशनरी नहीं हैं और न धर्म-परिवर्तन उनका स्वयं है। ये बताते आते बताते ईसाई मिशनरियों से भी नहीं करते हैं कि ये मत प्रचार के लिए, ईश्वर का ज्ञान देने के लिए न अर्ध, क्योंकि उनका मत ऐसा है जो धार्मिक सभी जीवों के प्रति वैश्वता, विश्वरक्षी, सौम्य और मनुष्य मानता है। (विवेकानन्द संहिता खण्ड-1, पृ 271 तथा खण्ड-3 पृ 240)।

ये कहते हैं, यदि ईसाई मिशनरी ईसाई हैं तो ये स्वयं को विश्व का सौम्य रखें (विवेकानन्द संहिता खण्ड-1, पृ 282 तथा खण्ड-10 पृ. 231)। हिन्दूओं को निम्ने धर्म की अवधारणा है, वह उनके 'सत्य' है। विवेकानन्द कहते हैं कि ये निम्न धर्मों की स्थिति ईसाई धर्म जने से नहीं सुधरी है। विवेकानन्द 6 मई, 1895 को अमरीका से वापस ने अपने मित्रों और मित्रों को एक पात्र में लिखते हैं, 'यदि तुम तीस का प्रथम लोग मिशनरी लोगों की धर्माध्यक्ष में आ गए, तो तुम सब काका हो और कुछ भी करने के अधिकांश नहीं हो।' (विवेकानन्द संहिता खण्ड-4, पृ 282)

विवेकानन्द: स्वामी विवेकानन्द के धर्म दर्शन में एक ही धर्म, धर्म या पुनर्जात सत्य नहीं है। धर्मों की विभिन्नता ही प्रकृति का सत्य है क्योंकि वैयर्थ्य जीवन का प्रतीक है। अतः ईश्वरवात या इस्लाम को एक अपने ही पथ किसी न किसी महान स्वर्गभौतिक सत्य के ही अंत है। इनका 'बहुत्व' है ईश्वर के 'एकत्व' की ओर से बात है। यदि एक धर्मनयन सम्प्रदाय पृथी पर आ जाए, तो मनुष्यों को दस वा होना? हिन्दू धर्म सहिष्णु है, इस कारण वह बुद्ध, ईसा, मुहम्मद सभी को स्वीकार करते हैं। अतः जो मत हिन्दू सम्प्रदाय को अपने जाल में फँसाए चाहते हैं, ये कभी सफल नहीं हो पाएँ। हिन्दू धर्म ने पूरा स्वामीगत है और यह बात दूसरे मत के प्रचारकों को समझने चाहिए। ईसाई मिशनरी ईसा के जीवन के विपरीत बात रहे हैं। ये ध्यान की शक्ति से हिन्दूओं का धर्म बल्लर रहे हैं। इसलिए विवेकानन्द इन मिशनरियों के प्रतिभार के लिए हिन्दू सम्प्रदाय को बर्च करते हैं।

(पंथ चम से सार) प्रेषक: ब्रह्मचर्य वेदविर (राजी)

आर्य समाज तलवाड़ा की गतिविधियां और वेद-प्रचार

18-3-99 को आर्यसमाज
मन्दिर लखनऊ में आर्य समाज
स्थापना दिवस मन्त्र्य बहल
व्यव किया गया। दश के उपरान्त
स्त्री आर्य समाज और नर्तन मुन्ने
बच्चों ने बाहुत अच्छे भजन सुनये।
इन्होंने उपरान्त आर्य समाज की
स्थापना ऋषि जी ने कर्वा की आर्य
समाज ने पिछले समय में संसार में
जागृति पैदा करने के लिये क्या-
क्या कार्य किये इस पर विचार
दिये गये। बाद में प्रीति भोज किया
गया जो लोग और सदस्य घरों से
लेकर आये थे।

25-3-99 को राखनी को का
रतस भी बहुत बुनामस से किया
यस भी बहुत अरुण से भी पं० विजय
नारायण की तलसी मोहरेकरके अर्थ
प्रतिनिधि प्राप्त पंजब, की तलसी
मुनाय अर्थ भवन मण्डली की अर्थ
मण्डली मण्डली में पवारी हूँ भी ।
यस उपरांत की राखननी की अर्थ
की मणोरा तलसी जो भी बहुत
अरुण प्रकाश उल्ला । राखनी को
भजन मण्डली हार बहुत अर्थ
भजन तुमसे योपे जिन्को अर्थ
ने बहुत पवारी किया । इसके पवारी
की विजय मुनाय की भी बहुत
प्रमत्तमलती, विदुषीय बहुत अर्थ
विचार और पवारीय आगे मण्डली
अर्थ की उपर कुछ भी मण्डली
पर वैदिक मण्डली मण्डली पर
भजन में यम ने तलस कर प्रीति
भीव किया । 4-4-98 उपरांत के
सिलेका को अरुण मण्डली में 5
किन्तुमलती यम तलस कलसी में
की ओर प्रकलती की पवारीय अर्थ
भी पार के किया गया । यम 10
बहुत कुरु मण्डली । मण्डली के पवारी
से पवारी से मण्डली में यम के पवारी
हूँ बहुत की कि तलस गये अर्थ
पवारी कलसी । यमके तलसकर
सकननी राख पवारी हूँ हूँ ।
पं० परामननी की ने पं० कलसीया ।
यम की सामग को पवारीय ने
अर्थ कलसी ने पवारीय कलसी की भी
बहुत अर्थ मण्डली । यम के
तलसी ने भी बहुत अर्थ मण्डली
मण्डली की मणोरा मण्डली की अर्थ
और भी मण्डली मण्डली की अर्थ ने पं०
पं० वैदिक मण्डली को हार्ने अर्थ
अवमलती । तलसीया से भी मण्डली
विचार की भातिर प्रीति किन्तुमलती
कलसी की कुरु मण्डली, जमोदमण्डली
तलसी, हारुण मण्डली, तलसी,
की मण्डली, यम । 4-4 मण्डली की
मण्डली और की सामग को बहुत

सी सदस्य कर्मल जी, कुष्मा जी, रज्जि जी, मधु जी आदि बहुत से सदस्य और अधिकारी वहाँ गए हुये थे। वहाँ पंचायत से सारे ग्रामों के अफसर और प्रतिष्ठित व्यक्ति पहुँचे हुये थे। मालीं मेलन लाना हो। सभी ने जहाँ समाज के कार्यक्रम की और वज्र के डँग की बहुत तरीफ की और सराहा। बाद में घर वालों की ओर से भण्डारा किया गया। सब ने मिल कर धोखन किया जो साँघ 5 बने तक चलता रहा। इस प्रकार का गावों में बहुत प्रभाव हुआ।

10-4-99 को आर्य समाज मन्दिर में माहात्मा हरिबाबू गिहकान्द मुक्त को विधिबध्ना सुक विष्णु गया। पहले सब विष्णु गया चब मे वृत्त के लगे आर्य समाज की सुसज्ज कक्षा की पानी सज्ज चबमान की और चब के ऊपर सारी अभिषेक की चबमान बनाया गया। आर्य समाज की चबमान का हाल छात्रों से और उनके अभिषेककों से समाखण्ड भुज हुआ। आर्य समाज प्रमुख लाहौर के सदस्य और अभिषेकगण, श्री आर्य समाज तन्वाहाड़ के सदस्य और अभिषेकगण बुद्धी से सब श्रोमाण में सच्ची रीति का सारी हुज्ज की। यह उपरान्त श्री अमर नाथ जी और श्री मोहाल लाल जी से मन्दिर के पिछले छोर पर श्री विचार दिनेश जी और कडा के वज्र ही सीरीय की और यह है हमारे पास, श्रीमन्त नरिनेने नेनेने पण्डित कर्ममालां द्वारा इस्का उपरान्त किया का। सच्ची। सच्चा कथा हजस सब का कर्तव्य है और समाज के देन की ही विष्णु नरिनेना है। १२ वीं वीं विष्णु विचारो वज्र, इस पर विचार दिनेश जी चब मे ० नीने ने वेद नीने से शिरीसण को आशीर्वाद देकर वृत्त के कापीसण का दृष्टान्त किया। अमन में जाये हुजे सारी सम्पूर्ण को आर्य समाज प्रमुख पण-पण बनाया गया।

दोहर को ०० प्रिजन देन की शिरीसण के सच्ची मोहोदरी के अन-०० निधि समा चबमान की आर्य समाज मन्दिर में सज्ज दानवीनी सारी सज्ज में और 11-4-99 को सुबह आर्य समाज के सज्ज मे और श्राद्ध को की १ से 1० बजे एक वृत्त सुन्दर और सज्ज के सज्ज के वेद नीने की मायाका चब मानस प्रिजन पर प्रकाश हुस।

मनोहर लाल आर्य मंत्री

गान्धी नगर जालन्धर का उत्सव

आर्य समाज वेद मन्दिर गान्धी
नगर नं० १ का शार्विक उत्सव
आर्य समाज स्थापना दिवस १ अप्रैल
१९९९ से ४ अप्रैल १९९९ तक चौराहा से
रिक्शावाहक बड़ी प्रतीक के
उत्सव से मनाया गया। प्रतिवर्ष की
तरह इस वर्ष भी आर्य समाज के
सभी अधिकारी वर्ग श्री बाबू बूढ़ा
राय की प्रणय की अगुआई में दिन
रात काम करने में लगे रहे।

22 मार्च से 31 मार्च 99 तक प्रभात पेरियो का कार्यकाल सुबह 5 बजे से 7 बजे तक संचालित जारी रहा। कार्पी सख्ख में स्त्री, पुरुष व बच्चे इस प्रभात फेरी में सह्य चलते रहे। यह प्रभात फेरी कभीर नगर गन्धी नगर न=2 टका एक में निक्कली गई। लोगों ने कार्पी उतराह दिखाया यहा एक कि 'चाय व जलपान से इस प्रभात फेरी का स्वागत किया व धन से सख्खपन भी की।

श्री बाबू कृष्ण राम जी श्री जूनी लाल जी, श्री जनकराज जी, श्री गिरधारी लाल जी, श्री राम लाल जी, श्री भोल्ल जी दुकानदार इन सभी ने ज्ञान व जलपात्र से स्वागत किया।

1 अप्रैल 99 से 3 अप्रैल 99 तक लगातार प्रत. 7 से 8 बजे तक हमन यह बात को 8 से 10 बजे तक पवित्र वेद कथा श्रद्धेय पंडित विष्णु कुमार जी सहस्त्री द्वारा प्रत्येक अप्रतिमिह समा पंजाब में हो रही साथ में सुभाष व सतीश जी भजवोपदेशक अप्रतिमिह समा पंजाब के अन्य लोगों को सुनने को मिले। श्री पंडित राज कुमार जी व श्री राजेश जी ने महर्षि दयानन्द के अर्थों का गुणगान किया।

4-4-99 अर्थात् राक्षसों को मुक्त उद्भव प्रातः 9 बजे सुक दुःख निजसं वन के जङ्गल में पंडित श्री विषय कुमार जी, राक्षसी व पंडित राजकुमार आर्य समूह के पुरोहित। जहाँ हवन कुण्डों पर 16 सप्तमण्डल जैसे जिनके नाम हैं। श्री आशु राम जी, श्री सिलकपुत्र जी, श्री ईश्वर दास जी, श्री सतीश जी, श्री साई दास जी, श्री इवेली राजपूत, श्री चंदन कुमार, श्री अरविन्द, श्री वीरवन्द, श्री अशोक कुमार जी, श्री गंगाधर जी श्रीमति सृजिता कौर जी,

अनिल गुप्ता बगदोर करारा ।
 श्री पंडित विजय कुमार जी
 हास्यी छ्द्रा सभी यजनार्थों को फूलों
 यज्ञोपवीत पहनवा गया, छपरपात
 एक एक भय की सुचारु रूप से
 ज्यज्म को गई। यज्ञ की सामग्री
 जुटाये में श्री खंडास जी व राजेश जी
 का विशेष योगदान रहा। यज्ञ के
 परचार पंडित श्री विजय कुमार जी
 हास्यी छ्द्रा सभी यजनार्थों को फूलों
 से व फलन में श्री शैलीशर्मा दिया गया
 छपरपात सभी बैठी सगम में देसी
 का इलाया बाँटा गया ।

महा सम्मेलन शुरू हुआ, जिसका

[illegible][illegible]

तत्परश्चात् श्री शम्भु सत्सद्वीर एवम्
 की अर्चय तस्मै नो अर्चना सहस्रानि
 भाष्यत दिव्या त्वात्स्य नमो ॥ श्रीस्य लक्षणं
 दुरू कुञ्जो यो पाच केचि सङ्गत्तु कुञ्जो
 तत्परश्चात् श्री शम्भु शृष्ट एवम् को प्रयाणः
 नो आईहृद्गुप्तं का अपर सहजोऽपि
 देवो पर स्वरं नार कस्मिन् का धन्यस्त्व
 क्तिना, किञ्चित् इह पवित्र अपर सङ्गत्तु
 देवो नैव श्रद्धा नो अङ्क इह तस्मत्सं
 ज्ञान नो ब्रह्मत्वा शान्तिपत्र के सा
 समेत्योक्त की सङ्गत्तु की गच्छे। सर्व
 बहिर इह आरु लोको नो इह तस्मत्सं
 की सराह। यह तस्मत्सं सग्री प
 जपनी अष्टि उग्र सङ्ग-सङ्ग के प
 जोद गया।

राजेश कुमार प्रचार मंत्री आर्य

ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਨਗਰ: ਪ੍ਰਸਿਦਿਤ
ਸਰੀ ਦਾੜ ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਨਗਰ

अभिलेखसंग अंक 30

लुधियाना में महाराष्ट्र राज्यपाल बलिदान बिबद्ध

अर्ध सत्रिक महर्षि दयानन्द कबिर (दास बाजार) लुधियाना में महाराष्ट्र राज्यपाल की का बलिदान बिबद्ध सम्पन्न गया। प्रजा अर्ध सत्रिक के प्रधान श्री महासचिव अर्ध का अध्यक्षता में विशेष समारोह किया गया प्रजा विशेष बड़ा किया गया उत्तरे परकात समारोह आरम्भ हुआ अपने सम्बोधन में श्री महासचिव बन्द ज्ञ ने महाराष्ट्र राज्यपाल के जीवन के सम्बन्ध में बिबद्ध एले इन्फे जीवन का विशेष बटनको का उल्लेख किया महाराष्ट्र के मुख्य बका श्री सुरेन्द्र कुमार शास्त्री की ने कहा कि महाराष्ट्र राज्यपाल ने अपने प्राणी का बलिदान कर दिया पर भेद नहीं छोला। उन्होंने एक पुरस्कृत रमिला स्कूल प्रकाशित

की की बिबद्ध लेखक का बच नहीं का उन्होंने लेखक को बचन दिया का कि अध्यक्ष ज्ञन नहीं कछने वाक एक मुख्यधम की बचन पर बाका की उन्होंने लेखक का बचन नहीं दिया और कहा वही नेप करण्य है श्री शास्त्री की ने कहा कि आज हम सब अर्ध की महाराष्ट्र राज्यपाल के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए कि आज हम बिबा प्रयोजन बिब पूछे एक दूसरे की बात को कहते फिरो हैं उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने करण्य सब पालन करते हुए अर्ध सत्रिक का प्रकात करण्य करण्य, शास्त्री बत के रहन समारोह सम्पन्न हुआ।

—आत्म प्रकाश मन्त्री

महर्षि डबवाली में वेद प्रचार

अर्ध सत्रिक सगुडी डबवाली में 30 अप्रैल से 2 मई 1999 तक बुद्ध यज्ञ व आध्यात्म प्रवचन का आयोजन किया गया है इस अवसर पर महर्षि दयानन्द योगश्रम दिल्ली के अचार्य श्री अर्जुन देव जी के उपदेश व बिबनरी के प रवेसार्थ

धनोपरदेशक के धनन हुआ करेगे

गत दिया भी वेद प्रचार का आयोजन किया था जो बड़ा सफल रहा है आज है कि इस आयोजन ने भी सभी महानुभावों का सहयोग मिलेगा। डा अशोक अर्ध

झाड़दार परीक्षा परिणाम

बस चौधरी आर्य मकल हाई स्कूल वृी का पाचवी कक्षा का परीक्षा परिणाम रत प्रतिष्ठित रहा विद्यार्थी 408/450 (90.66%) एक लेकर स्नातक में प्रथम आया है। बिबद्ध कुल 51 बच्चों ने परीक्षा

की। 80% से ऊपर 14 बच्चों 70% से 80% तक 28 बच्चों और 60% से 70% तक 9 बच्चों आये हैं।

मेधावी परीक्षणी छात्रों और योग्य अनुसूची स्ट्राट बच्चों के पत्र हैं। कृपया अर्ध विवेकल

वनवासी वैचारिक क्रान्ति शिविर

अखिल भारतीय दयानन्द सेवाश्रम सभ द्वारा हर वर्ष की पाठि इस वर्ष भी अर्ध सत्रिक के छठे निबध की आधार पर वनवासी युक्त युवविपी का वैचारिक क्रान्ति शिविर 15 मई से 30 मई 1999 तक अर्ध सत्रिक रानी का बाग दिल्ली 34 में श्रीमती प्रेमलता खन्ना शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पना जाएगा।

शिविरविपी में हेतु पासनीय बिबद्ध

- 1 शिविरविपी की योग्यता नहीं कक्षा के ऊपर।
- 2 हल्का बिस्तर एवं खेल साधन इत्यादि साथ लाने।

3 शिविर में दिनचर्या एल अन्य नियमों का पालन करना अनिवार्य होगा।

4 नियमों का पालन न करने पर शिविर से बाहरिस भेज दिया जाएगा।

5 शिविरविपी अपने आने की पूर्ण सुबुन लिखित रूप में भेजें।

6 शिविरविपी की पासनी का मार्ग व्यन दिया जाएगा।

शिविर सचोबक 1 ब० बीकबर्न अर्ध 2 श्री कपिल देव अर्ध 3 श्रीमती शर्मिष्ठा जी मेहता अर्ध सत्रिक का छत्र निबध सत्रिक का उपकार करना अर्ध सत्रिक का मुख्य उद्देश्य है अर्ध शास्त्रीय आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी हरिद्वार

का

आंवला, केशर, चांदी व पिस्तायुक्त,

कोलस्ट्रोल रहित

विटामिन 'सी' से भरपूर

अमृत रसायन

आत्म स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

की औषधियों का
सेवन करें।

शास्त्रा कार्यालय :

६३, यली राजा केदारनाथ,

चावडी बाजार दिल्ली-११०००६

श्री अरिचनी कुम्हार की शर्मा एनकोरेट महामन्त्री सम्पन्नक द्वारा बच बिबद्ध विविध प्रेरणादायक बिबद्ध बालनर के युक्ति शम्बर अर्ध वर्यक काबलनर युद्धक मनन पीक किबडपुत्र बालनर से इसकी रमणीय अर्ध प्रतिष्ठित बच पचन के बिबद्ध प्रकाशित हुआ।

श्री वेद प्रकाश जी सरीन नहीं रहे

[illegible]

भा वेक प्रकृत्य भी सर्वत्र उच्च अथवा निम्न के उत्पन्न पर र समापन के अन्तर्गत ही है विस्मय की उच्च समुच्च मिल जाती भी प्रकृत्य और यन्त्र से बाहिर का शिका सम्बन्धी और अर्थ सम्यो के उन्वयो पर वह नाम करता है। मुकुल कारणा विषय विचारण के उत्पन्न पर वह अन्वय सत्य है और अन्वय हो गयी और अर्थ बहनी व धर्मों को साथ लेते हैं। प्रकृत्य में ही। मुकुल कारणा पर के उत्पन्न पर प्रविष्टि वह जाय करते हैं। स्वय भी जाते हैं व जपत परिहार को भा साथ लते हैं और अन्य अर्थ सम्बन्ध के सत्यो को भा साथ लते हैं। मुकुल के सिर पर वह सङ्ग भी जाते हैं अन्य भी विचारते हैं। मुकुल कारणा पर से भी प्रकृत्य विवेक लेते हैं। वह काम में विस्वास रखते हैं भले ही उसका उत्पन्न उच्च मिले वा न मिले।

[illegible]

श्री सरान जी का यज्ञ से बहुत प्यार था वह जहाँ था यज्ञ होता था वहाँ अवश्य जाया करते थे। आगे बैठ कर यज्ञ पाठ किया करते थे कई बड़े बड़े यज्ञ स्वयं करवा देते थे नया नहर में होने वाले पारिवारिक सप्तमी में वह अवश्य जाया करते थे। एक सप्ताह पूर्व तक वह यज्ञ व सप्तमी में जाते रहे बीमार होने पर था उन्होंने यज्ञ को नहा छोड़ा इसी से पता चलता है कि यज्ञ प्रति उनका कितना बड़ा था।

जिस भी व्यक्ति को श्री श्रीरंग आ का मृत्यु का समाचार मिला उसी ने कहा कि एक नैक हस्तान्तर चल गया श्री सरंग की के चले जाने से आर्य समाज में जो स्थान खाला हुआ है उसका पूर्ति होगा असम्भव है। वह ठीक है कि उन के सुपुत्र श्री आर्य समाज में अच्छा कार्य कर रहे हैं परन्तु फिर भी उनका स्थान ले पाना किसा के लिए सम्भव नहीं है। जैसी उनमें आर्य समाज के प्रति लग्न था तबद ही किसी व्यक्ति में होगी।

हम आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का ओर से अर्ध विद्या परिषद् पञ्जाब का ओर से व पञ्जाब का सभा शिक्षा सम्मन्धों व आर्य सम्मन्धों का ओर से उन्ने अपना ब्रह्मजालि भेट करते हैं और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु उस पवित्र आत्मा को सद्गति प्रदान करे और उनके सारे परिवार को तथा हम सब को उनके वियोग को सहन करने का तनिक प्रदान करे।

हरिदत्त लाल शर्मा
सम्यक् प्रधान

अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट
२७५ महापरी

देश में मध्यावधि चुनाव

[illegible][illegible][illegible]

अभिलेख

ईश्वर से मिलने के लिए कोशिश

पताका से उभरे

किसी कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है

कहा किस्म के गिराफ तो सच्चा तो आता है।

मरता तो तब है जो गिराफे को धाम ले सके।

और किन्हीं दूसरों के दुःख में दुःखी होकर सीखा ये लोग मरना हो गये। स्वामी दयानन्द ने देखा कि दलित और पिछड़ी जाति के लोग समझ से अलग बलग होकर रह गये हैं। लोग उन्हें अहट्ट के नाम से पुकारते लगे हैं और वैसा ही व्यवहार करते लगे हैं। यदि आपको कोई बूढ़ लोहा तो वह अपने आप को अपवित्र समझता और फिर मुट्ठ करने के सामन सोचता। यन्दरा में इन लोगों का जन्म कन्द था। स्वामी जी ने इस पीढ़ा को मरसुस किया। उनकी पीढ़ा को अपनी पीढ़ा जाना वेद और मनुस्मृति के प्रमाण देकर और यह लोग समाज के उनमें ही मानवीय भाव हैं कितने के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य। वह अवस्था जन्म से नहीं कम है। जो व्यक्ति पलायन है। दान देता है दान लेता है शिक्का है सरकार करता है वह ब्राह्मण है चाहे किसी भी कुल में पैदा हुआ हो। जो व्यक्ति दैत की सेवा करता है फौज में है सेना का अंग है दैत की रक्षा करता है वह क्षत्रिय है चाहे किसी भी घराने में पैदा हुआ हो। जो व्यक्ति व्यापार करता है खेती करता है वह वैश्य है चाहे किसी भी कुल में पैदा हुआ हो। जो व्यक्ति सेवा करता है पढ न सका हो वह शूद्र है चाहे किसी घराने का हो।

ब्राह्मण का पुत्र शूद्र हो सकता है शूद्र का पुत्र ब्राह्मण दलित वर्ग के लोगों का अपने गांवों (अन्तर्जाति के लोग) के बराबर खड़ा कर दिया स्वामी जी ने विश्वास किष्काल विवाह आदि कुटुंबियों के दुःख का मरन और आश्रय उठाया। दिव्य को सिखा न दिव्य जाने पर दान बेचाराई पर अनाथ और अल्पाचार हो रहा था उसकी टीस को महसूस किया और फलस्वरूप आज भारी को वह अर्थव्यवस्था मिल चुका है विश्वदीप कि वह

इसका है। केवल मानव जाति के दुःखों को ही स्वामी जी ने नहीं बाट बंटिका यदि कोई शूद्र भी दुःखी होता तो भी स्वामी जी को दुःख होता था। एक बार एक कैलाश्वी कला कैलाश्वी से यह रहा कि गाड़ी कीचड़ में घस गई। बेल पूरा बोर लगा रहा था कि गाड़ी निकल आये पर सब प्रयास निष्फल। गाड़ीकाल बेल को खड़े थे कोई मर रहा था। पर बैचार बेल पूरा बोर भी लगा रहा था और मर भी जा रहा था। सयोगवत स्वामी जी पास से गुजरे। बेल की अवस्था देख कर मन पर आया। आगे बढ़कर बेल को गाड़ी से खोल दिया स्वयं बेल के स्थान पर गुंथ गये और गाड़ी को खींचकर बाहर निकाल दिया।

जबस गुरु को मन्ने करते लोग भी पूरी तरह सेना में जुटे रहते हैं परन्तु को संकेतभाव ईसाई धर्म को मानने वालों का होता है। उनका किस्म है नहीं। मर देता इतनी दीवाना होने के पश्चात भी इतनी सेवा कर रही थी कि वह अपने आप में एक उत्तराधारी भी और सेवा के साथ साथ अपने धर्म का प्रचार भी कर रही थी। परन्तु खेद है कि आर्य समाज ने संकेतभाव की बहुत कमी आ गई। दूसरे के दुःख को जान कर उसे दूर करने का प्रयत्न ही सेवा है।

(५) प्राण लेना सरल है पर प्राण देने बहुत कठिन है। आज विश्वभर में जहां ब्रध्याचार का बोधभारता है वहां पर हिंसा भी चल रही है। राज्यनीति की सलाह को हथियाने के लिए क्या कुछ इसका नहीं किया जाते। सरकार को बर्दान्त करने के लिए बिरोधी दल गांधीवा उलटका देते हैं। पुरी को बने हुए दुकानें दुकानें करवा दिया जाता है। बाजारों में बप रखा दिने जाते हैं। हकदारों की निजता में लीने एक पलक के झुकते ही अपनी जान गवा बैठते हैं और फिर वही बिरोधी दल सौकरान करके मरगमण के मयूष बहाकर सरकार को गालियां निगालते हैं कि सरकार कमजोर की अमरवा

सम्भालने में नकामिल है। गूल जाते हैं वह सोच कि हाथ से बंद सलाखें जो चोरी से चम्पनी पर किसी मा की बचप्री खेद फिर से न बसेगी किसी का उबका सुनाम फिर से न बस सकेगा। बम्बई को पिछ दुकारा न मिला सकेगा। बहान का यह गया किसी का उबका गया किसी के सपने का बकल उबका गया तो किसी को रोटी के लस्ते पड़ गये। उन दरिद्री से कोई बह भुके कि एक निरत में इबारो व्यक्तिओं के प्राण तो ले लिए क्या किसी मुक्त के प्राण लीटा भी सकते हो यदि युग में प्राण लीटने की क्षमता नहीं बसित नहीं तो प्राण लेने का मुर्दा क्या अधिकार है। पचास बड़े कठिन और से गुजर है। उत्तराखण्ड के नाप पर क्या कुछ नहीं हो रहा। कभी अत्यास है तो कभी कोई प्राण। परन्तु यह भारत तक ही सीमित नहीं बही भारत पालिस्तान में है वही अफगानिस्तान में। यही एशिया में यही बोरिदा में यही रुस में यही अमेरिका में। हिंसा उत्पन्न आश विषय की समस्या बन चुकी है पर मानव संस्था है अपने नये नाच को मानने में। परिणाम स्वरूप आज विश्व भर में असावि है। हर मन असावि है। इसीलिए उत्तराखण्ड का बहान पटना दिला का दौरा मनसिक उग्राल और अवसर अद्वितीय बह रही है। यह सब कुछ कैरी प्रारम्भ हुआ। नहले हिंसा छोटे स्तर पर थी। लोग माताहारी बने। मानकों को मार कर शिकार करते थे और फिर उन्हे खाते थे। ये लोग कभी यह सोचते ही न थे कि जिस जीव की हत्या कर रहे हैं उस जीव में जान है। जब उस की जान लेते हैं तो उस की भी उग्रता ही कट पाहुता होगा किन्तु हमें पाहुता है और वह व्यक्ति साक्षिक जीवन नहीं खता तो रोकगुम और रोकगुम का बहान स्वाभाविक है। ऐसे मनुष्यों के लिए हिंसा एक स्वाभाव

बन जाती है और वह जीव एक बूढ़ के रूप में उभर कर अन्त खामने जा चुका है। इसीलिए स्वयं विवेक वालों काही सोच में बूढ़ गये हैं कि इस समस्या का क्या समाधान है। बम्बई से लोग भारत से अन्तर किसी ताति निरान के सदृश बनते हैं। कभी किसी भारतीय समुदाय में प्रवेश पाते हैं। नाच विवेक में शाकहारी भोजन को उग्राल जीवन के रूप में मान्यता दी जा रही है।

केवल परमात्मा प्राणाधार है वह भी है अर्थात् ससार को पैदा करने वाला है। प्राण लेना और प्राण देने बरती के हाथों में है। प्राण लेने तो बहुत सरल है पर प्राण देने में हम सोचपते हो कर समते हैं पर है यह बहुत कठिन काम सदन पर एक व्यक्ति सर्दी से ठिठुर रहा है। उसके पास धरपाणि नहीं कि एक कम्पल खरीद ले। जिस दिन कसकें की सर्दी पड़ी उस का प्राणात्त निश्चित है। उसे एक कम्पल खरीद हम उसे अन्नस प्राण दे सकते हैं। हस्पताल में एक बीमार व्यक्ति मर रहा है केवल इसीलिए कि उसके पास दवाई के लिए पैसे नहीं। इन उसके लिए दवाई उपलब्ध करा कर उसे निश्चित प्राण दे प्राण देने 'गुडवे' प्राण बचाने के पात्र बन सकते हैं किसी भी व्यक्ति के दुःख को काटन उस व्यक्ति को एक नया जीवन देना है। कभी किसी बूढ़े व्यक्ति को जो सड़क पर करना चाह रहा हो पर सड़क पर 'ग' रहे ट्रैफिक के कारण पार करने में असमर्थ हो तो हाथ एकदम कर सड़क पर कट दी फिर देखो मुकुर मन को किसी ताति निराली है पर है यह काम कठिन क्योंकि किसी अवकाश समय में ऐसे कामों के लिए।

पर यदि ऊचा उठना है तो सरल काम छोड़ कठिन काम ही करने पड़ेंगे। ईश्वर प्राणि का वह पक्षर सोनन है। कोसिल कट और इस सोनन पर वह जाओ

उदीयमान आर्य प्रतिभाओं के लिए स्वर्ण अवसर

नाथ मन्दिर के कन्व पुस्तक वैदिक शोध केन्द्र उपरिधिका अन्धारािका प्राविण विभागा में दबानन्द बक वेद पिठ आर्य देविता के लिए जद बुधिया आर्य पद्विती से कोषका अर्थात् पूर्वक उन्मत्तुच अन्धन की सुमरस

वरीयता निर्वाण समर्थित समाज सेवितां दलितों आपर प्रसो की स्वयं उरसता कुसुता बुद्धि सुविषो की अवसरपद है। समन सीविता प्रवेश बकन से सम्पर्क करें।

अन्धन नाथ मन्दिर को 45/129 नं० सती रणजय मारमो (उ ३)

कल्याण के मार्ग पर चले

स्वस्थ कल्याण करे सूर्य चमक स्याविल

□ डॉ० कमल प्रकाश जी आर्य अग्रवाल डिप्टी प्रिन्सिपल
कल्याण विद्यापीठ (कल्याण)

संस्कृत की बड़ी भारी गति है। इससे मनुष्य की बुद्धि की बहुत दूर होती है। संस्कृत मनुष्य को उत्तम मोलना सिखाती है। इनसे पार्श्वों को दूर करती है। मन को प्रखन करती है। संस्कृत हर प्रकार से मनुष्य का भला करता है। संस्कृत का कवि कहता है:-
आह्वयं विभो इति सिद्धिं चाधि सम्भू
जगन्मोर्ति विभक्ति चपनचकरोति
भोतः प्रसादवती दिव्य तनोति
कीर्तिम्
संस्कृत काव्य किं न करोति
पुस्तकम्॥

संसार में मनुष्य की मात्र पिछ मिल सकते हैं। पुत्र और धर्म मिल सकते हैं। सुखार्थ पत्नी मिल सकती है, राग मिल सकता है। हाथी मोहे तथा मनोवर्धित पशु मिल सकते हैं। संसार में सब प्रकार के सुख मिल सकते हैं किन्तु संस्कृति की संगति दुर्लभ है। तब सुन्दर दास करते हैं:-

सात मिले पूर्ण प्राप्त मिले सुत
भ्रातृमिले सुखी सुखदायी। राग
मिले गन्ध बाष्प मिले स्वास
मिले मनोवर्धित भाई। लोभ मिले
सुखी मिले विधिलोक मिले
बाहुकुल जाई। सुन्दर और मिले
सब की सुख सत्ता समापन सुलभ
भाई॥

संस्कृत के बिना मनुष्य को विवेक नहीं होता। संस्कृत सख आनन्द मोल का मूल है। सब पद्यों को सिद्धि को देने वाली है। तुलसी कहते हैं:-

संस्कृत की भूषणमय मूल।

सौंदर्य प्रिय विभो सब सम्पन्न प्रभु॥
चाहे मनुष्य अन्ध की संगति में
लग जाता है तो उसका कल्याण हो
जाता है, उसका लोक परलोक प्रभु
काता है। यदि दुर्बल के संग में पड़
जाता है तो उसका पतन हो जाता
है। संस्कृत का कवि कहता है:-
बिह्व संस्कृत निरति भविष्यति
भविष्यति॥

अथ दुर्जयसंस्कृतं पतिष्यति
पतिष्यति॥

परन्तु संगति किन की करती
चाहिए? आज काज-काज सत्तों
के डरे लगे हैं, स्वान-स्वान पर
संत के गेले लगे हैं। हरिद्वार आदि
केन्द्र आदि स्थानों पर मिलने की
आशय, किन्तु ही केन्द्र बाई बने

हुए हैं। टीपों और गेलों में सत्तों
की भारी भीड़ मिलती है। जब तो
सब लोग भी योक्तबद्ध तरीके
से समूह के रूप में संस्कार बनाकर
नगरी में जा रहे हैं। उनके प्रचार
तथा उनकी व्यवस्था के लिए,
पंचाल के लिए, उनके स्वागत के लिए,
समापन के लिए, फिर उनके
लिए अलग से नगर बनाने के लिए
सत्तों रुपया खर्च किया जाता है
और फिर लाखों रुपया उनकी भेंट
किया जाता है। टी. बी. दूरस्तन
केमरों द्वारा उनके पाषाणों का
प्रसारण होता है। फिर उनके पाषाणों
के जीवितों केसेट बनाकर बेचे
जाते हैं। क्या ये सब सत्तों के
सङ्ग हैं। संस्कृत का कवि कहता
है कि ये सब सत्तु नहीं है। क्योंकि
प्रत्येक पर्वत पर गति नहीं मिलती,
कहते हाथी से नीलिका या सुख
प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार सत्तु
और चन्दन सब जगह नहीं होते-
होले-होले व भागिबन्ध
नीलिका व गन्ध गये। साधवों
हिं व सर्वत्र-चत्पत्त व चले गये॥

आज सत्तों की गतिदशा
अधिक है नाना-जगह मत हैं और
असादे हैं किन्तु संतभाव कम है।
किन्तु पास यात्रा, मन-सम्पत्ति
अधिक है, यही बड़ा सत है। अतः
हमें संत असत की पहचान करनी
होगी। यह बारे में वेद कहता है
कि हमें ऐसे लोगों की संगति करनी
चाहिए जो दानी हो, अहिंसक हो
तथा ज्ञानी हो।

मुनिरत्नसङ्गता जगता संगेयगिः

(श्रु 5/51/5)

संस्कृत की पहली सत्त यह
है कि हम दानियों का संग करें।
ऐसे लोगों का संग करें जो कुछ दे
सकते हैं। संरक्ष करने वाले न हो
बन सम्पत्ति इकट्ठी करने वाले न
हों। दान कई प्रकार के होते हैं-
विन दान, विद्यादान आदि उनमें
विद्यादान, ज्ञानदान, श्रद्धादान सर्वोप
मत्ता गया है-

सर्वोपायविद्यादानं ब्रह्मदानं
विद्योत्तमम्॥

प्रकृतिनिन्दन दान देती है। सूर्य
चन्द्रमा प्रकृत देते हैं वृष परदेते हैं।
नित्य दान देती हैं, गुरु दान देती हैं।
संस्कृत का कवि कहता है-

परोपकाराद्य बहूनि भद्राः
परोपकाराद्य बहूनि भद्राः॥

परोपकाराद्य बहूनि भद्राः
परोपकाराद्य बहूनि भद्राः॥

स्वयं वेद कहता है कि जो
हानों से कल्याण और इबार हानों
से दान करो-

साहसरो सम्पन्न ब्रह्मसत्तो संस्कार
दान देते समय किसी प्रकार
का धनग्रह या में की भावना न हो।
कवि शीघ्र के बह्य में-

देने वाला कोई और है देता जो
दिन देन।

लौच भय मुक्त पर करें त्यों पीछे
भय॥

संस्कृत की दूसरी बह्य यह है
कि हम अहिंसक (अन्यता) लोगों
का संग करें। महात्मा बुद्ध ने अहिंस
का संदेश दिया। महावीर स्वामी ने
अहिंस का उपदेश दिया। इस ने
अहिंस का दान दिया। ऐसे लोगों
की संगति हम करें। विनये भी संत
महात्मा हैं ये सब अहिंस का उपदेश
करते हैं। अन्य सारा संसार हिंस और
द्वेष की अग्नि में जल रहा है।
अविश्व अहिंसा का सत्तु बना हुआ है।
संसार में विधिमान रूपों में हिंसा का
उदभव जारी है। लाखों लोग हिंसा
की नीति चले चुके हैं। इसके
अतिरिक्त किन्तु ही अन्य जीवों
की हिंसा मनुष्य प्रसिद्ध कर रहा
है। अतः हिंसा और हिंसलोगों
की त्यागना होगा। ऐसे लोगों की
संगति हमें करनी चाहिए किन्तु
मन में अहिंसा और पंथी की भावना
हो। इसी लिए अहिंसा को परम
धर्म कहा गया है-

अहिंसा परमो धर्मः

वेद के अनुसार संस्कृत की
तीसरी सत्त यह है कि हम उन
लोगों की संगति करें जो विद्वान्
ज्ञानी हों (बान्सा) ज्ञान की क्षमता,
धर्म प्रज्ञा में बड़ी भारी महिमा है।
आचार्य, पिता और सत्तान पैदा करना
ये पशुओं में भी मिलता है, ज्ञान के
कारण ही मनुष्य को विवेकवान्
है। ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के
समान है-

आचार्यगिष्य भयं वं भुवं च
सत्तयान् मेतायु पशुभिर्नरपशुम्॥

ज्ञान हिं सत्तययिको विवेकवान्
ज्ञानेन होयः पशुभिः सम्मानः॥

गीता (4/34) में कहा है कि
ज्ञान के समान संसार में और कोई
भी वस्तु पवित्र नहीं है-

प हिं ज्ञानेन सद्गुणं ज्यैष्ठ्यं हिं
विद्यते हिं-

ज्ञान के बिना मनुष्य सरी अन्य
पशुवत् रहता है। अहिंसक अहम्परी
तथा पिन्धु साथ जस्तों में उत्तम

रहता है। ऐसे ही अज्ञानी लोगों के
कार में कभी दास ने साधारण
किताब बा-

जान मिले मोहिनेनी धर्मों,
प्राप्त करें अज्ञानता। अज्ञान जोहिं
पाषाण दुर्बल, शिथिल मोल ज्ञान।
पीछा पाकर पूजनवेगे तीव्र-जान
भुजान। महात्मा ज्यैषी ज्यैषी,
ज्यैषी शिल्पक अनुभव। सत्तों ज्यैषी
ज्यैषी अज्ञान खान्न व जाना॥

ऐसे अज्ञानी लोग का संग
मनुष्य को नहीं करना-चाहिए जो
ज्ञान का दम्भ धरते हों। दिखावा
करते हों परन्तु स्वयं माया से
अभिपूत हों। ऐसे लोगों का संग
करने से बाद में पकड़ान पड़ता है।
कबीर करते हैं-

हर-पर पंथ जो देत फिरत
है, माया के अधिभाव।
गुरुबारासहित शिष्य सब बूढ़े
अज्ञानता पीछागन॥

अतः हम ऐसे लोगों का संग
करना चाहिए जो वास्तव में ज्ञानी
हों। आचार्य परमात्मा के बार में
कुछ जानते हों, जो उनके मोह
और अज्ञान को मिटा सकें हों।
गीता (15/5) में कहा है कि जो
माता और मोह से रहित हैं, संग
दोष राग द्वेष आदि से परे हैं, विद्वान्
कामनाओं को त्याग दिया है और
जो निष्प आत्म अज्ञानता ज्ञान से
लगे रहते हैं। सुख दुःख मान
अपमान आदि दुर्लभ से मुक्त हैं वे
ही प्रकृतियों में और भी अत्युत्तम-
मोक्ष को प्राप्त करते हैं-

निर्गुणयोगीन्द्रः विद्वत्संयोगीन्द्रः

अज्ञानतन्मय विनिर्मुक्तपादः

(गीता 15/5)

ऐसे ही ज्ञानी लोगों के लिए
कबीर ने कहा था कि अज्ञान ज्ञानी
संत कोई होता है जो काम, क्रोध
लोभ से रहित हो तथा जो तीन
गुणों से परे हो। कबीर करते हैं-

देव जान सदा आनंद है कोई
काम क्रोध आस लोभ विद्वत्तिय
हरिपद कीर्ति जाई। राजस तारास
सत्तिय तीव्र ये सब तेरी माया
लौच पर को जे पर पीछे, तिगई
धाम पर धाम। असुरिय विद्या
आस कोड़े लने धाम अधिभाव।
लोभ कोषपायिक कहे देखे ते
मूर्ति भगवान्। विद्वान् अज्ञ
अधिभाव रहित है, कोई कबीर
को खसता॥

अतएव ज्ञानी संत कोई विद्वान्
ही होता है, जो काम, क्रोध, लोभ
से रहित है, यही हरिपद। ईश्वर
को प्राप्त करता है। वह रजस,
तम आदि तीनों गुणों से परे है।
विद्वान् निष्ठा सुखी मान-अपमान
को जीव विद्वान् है। विद्वान् लोकजनों
को शिक्षा देता है जो लोग और
(लेख पृष्ठ 6 पर)

सूर्यो ज्ञातपते ज्ञात चरिष्यामि
जन्तो ज्ञातपते ज्ञात चरिष्यामि
अत मे अक्षो ह्य सूर्य बन्द्या
को ह्यह निम्नतर स्वस्ति पथ
कल्पाय मार्ग पर जते स्वास्ति
पन्नाम (अ. 5/51/5)

व्यक्ति की पहचान

□ **जी. श्री. अश्वमेध उदितराणी जी अर्थात् अश्वमेध अश्वमेध उदितराणी**

हर व्यवसाय या धर्म के लोगो को पहचान है किसी की भाषा से किसी की रंग या किसी से किसी की पहचान धर्म से। यदि एक व्यक्ति ने काला कट पहन रखा है काली टाई लगी है और ऊपर कलस गऊन है तो हाट से पता चलेगा कि यह व्यक्ति एक वकील या न्यायाधीश है। यदि किसी व्यक्ति ने सफेद कट पहना है तो पहचान आ जायेगी कि यह डाक्टर है। भर्त्स भी सफेद कपड़े पहनती है परन्तु उनकी वेष्टमेष छत्रोटी की वेष्टमेष से भिन्न है और हाट पता चल जायेगा कि वह व्यक्ति डाक्टर है या नर्सिंग स्टूडेंट का सदस्य। पुलिस कर्मचारियों की भी छाकनी वदी है छाक कर्मचारियों की भी परन्तु इनमें इतना अन्तर है कि बिना समय नष्ट किये बिना बुद्धि पर जोर डाले निर्धारित हो जाता है कि व्यक्ति पुलिस से है या छाक सेवा में। यदि छाक की रंग कुछ और गहरा हो तो पता चलता है कि व्यक्ति पीएम से है और यह भी ज्ञान हुआ कि पीएम की घल सेवा के विधान में है क्योंकि बायु सेवा की पोशाक और है और जल सेवा की और। यात्रा के परभावत जब यात्री बाहर आता है तो उसे यह पड़ने की कभी आवश्यकता नहीं होती कि उस का सामान कौन बाहर निकालेगा। लाल कपड़े पहने व्यक्ति को खरब कुली कह कर पुकार कर सामान बाहर निकलता होता है।

केवल व्यवसाय या धर्म के लोग ही अपनी विशेष रंग या पहचान नहीं बनाते बल्कि स्टूडेंटों के विद्यार्थी भी अपनी पहचान बनाने के लिए विशेष प्रकार के कपड़े पहनते हैं। विद्यार्थी को केवल स्टूडेंट से पता चल जाता है कि वह स्कूल का छात्र है। हर स्टूडेंट ने अपने रंग की वदी बनाई हुई है। किसी को सफेद तो किसी की नीली इत्यादि। इसी प्रकार उम्मेदी छात्रों ने भी अपनी पहचान कपड़ों से बनाई हुई है। यदि छात्र के कपड़े हैं सर पर गाथी टोपी है तो सम्भव नहीं व्यक्ति कोरेस छात्र है। यदि सिस्का छात्र उन्मुदाय से सम्बन्धित व्यक्ति है तो वह छात्र काली पगड़ी या सफेद पगड़ी बांधेगा। यदि उसकी नीली पगड़ी है तो सम्भव सा संकट है कि वह अन्कारी रंग का सदस्य है। यदि

एक व्यक्ति सफेद कमीज आधी कर्माँ काली पहने है और नीचे छाकनी निकर है तो उस व्यक्ति का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का सदस्य होगा निश्चित है। हर रजनी पाटी ने हर देश ने हर सम्प्रदाय ने हर धार्मिक सम्प्रदाय ने अपनी पहचान बनाने रखने के लिए अपना कलस बनाया हुआ है जो कि उनके कार्यालयों में लहरता है।

धार्मिक व्यक्ति भी अपनी रंग या रंग से अपनी पहचान बनाने लगते हैं। पीत वस्त्र धारी भुवक इतने से पहचाना जायेगा कि किसी गुरुकुल का ब्रह्मचारी नालक है। इसी प्रकार पचास वर्ष से ऊपर यदि किसी ने पीत वस्त्र धारण करने शुरू हैं तो वह वान उम्मेदी जाना जाता है। यदि उस ने गैर वस्त्र पहने हैं तो उसे सम्प्रदायी मान कर ब्रह्म से उसके प्रति दर्शन कुछ जाती है। कुर्छा लीग वाली भीरी भाषे पर रिलक इतने से अनुमान हो जायेगा कि वह व्यक्ति ब्राह्मण है। हुँदरा टोपी से मीलना भी पहचान जायेगा। यहूदियों कुर्माँ की आधी वेत भुवक है। गुरु नामक देश की के अनुयायियों का पगड़ी बाण्डे का रंग और निहाय रिस्का की अपनी ही पहचान है और गिरजाघर के पादरी की अपनी।

केवल वेष्टमेष के माध्यम से ही नहीं अभिरु और भी साधन हैं पहचान के। भाषा भी एक साधन है पहचान का कि वह व्यक्ति हरियाणवी है पंजाबी है सिन्धी है तमिळुनी है इत्यादि। लंदन की नगरपाली पहचान का एक अन्य साधन है। सम्भव तर्काई का गौरा सफेद व्यक्ति अंग्रेज है और लम्बा व्यक्ति जो गौरा रंग है अमेरिकन है। लोग के लोगों की अपनी ही अन्तरुति से जो पहचान के लोगो की अपनी। कई बार वातावरण भी पहचान कर देते हैं। लम्बनय बर रही हो तो निश्चित है कि कोई लंदनी बिकर का ठग है। यदि लोग चुप करके किसी घर से बाहर आ रहे हैं जमीन पर रटी बिछाई है ठेके मीकने विल्लाने को अन्वये अर रही हो तो यम लो कोई व्यक्ति ससार मीक कर जल पया। यदि लोगों ने अपनी कमीज पर का कट पर का कुर्छा पर काले बिल्ले लगाने हो तो सम्भव सा संकट है कि किसी निर्मम के प्रति रोष प्रकट किम का रहा है।

कई बार विशेष प्रकार के कपड़े पहचान का काम देते हैं। एक छात्र विद्यार्थन में कर्माँ प्रथम स्वयं प्राप्त करता है। उम्मेदी रंग में उसे स्वयं एक दिया जाता है या एक व्यक्ति किसी सेव में या पुलिस में कर्माँ भी सत्यापन योग्य कार्य करता है तो उसे कोई पदक प्रदान किम जाता है तो ऐसा पदक स्वयं से एक पहचान बन जाता है कि व्यक्ति के कार्य की अधिकारियों द्वारा सत्यापन की गई है। कलस एव रोटी रसक के सदस्य एक विशेष चिन्ह को अपने वस्त्र पर लपकते हैं जिस से पहचान आ जाती है कि व्यक्ति किस सम्प्रदाय का सदस्य है। सरकार अपने कर्मचारियों की पहचान पत्र बना कर देती है और अन्ध तो अनुमान आयोग ने भी हर मरदात के लिए पहचान पत्र का बनाया जाना अनिवार्य कर दिया है।

समिष्ट रूप में यदि कहा जाये कि सब की पहचान है किसी की कर्माँ से किसी की भाषा से किसी की किम से तो किसी की पहचान एसी से किसी की संरुति को अन्तरुति से तो किसी की वातावरण की स्थिति से। पर मानव की क्या पहचान है? कैसे ज्ञात हो कि वह व्यक्ति मानवत्व के निर्धारित स्तर पर पूरा उतरता है या नहीं।

फरिस्ते से बैहदर है इस्लाम बना। अगर इस में लगती है मेहनत ज्यादा। कैसे पता चले कि व्यक्ति पूर्ण रूपेण आर्य है या नहीं। अर्ब का अर्थ स्याच का सदस्य नहीं। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ पुरुष। और आर्य का अर्थ है अमूर्त वृत्ति का व्यक्ति। दानव व्यक्ति। आर्य तत्त्व विरुद्ध कर अनसोई बन गया है। आर्य की क्या पहचान है।

आर्य की एक बड़ी पहचान है कि व्यक्ति के स्वभाव से कुर्छात हो। किसी के लिए उपकार को किसी ने भुले। किसी से लिये कर्माँ को लौटाने की भावना से ओत प्रीति हो। यह नहीं कि वो कर्माँ से लिखा उस की भुल गये। परमा भूत कभी अन्ध नहीं होता। कुछ देते भी व्यक्ति है वो करते हैं।

do not pay interest because it is against my Principal and I do not pay Principal because it is against my interest

इस कथन में केवल सत्यता का इतर है। अंग्रेजी भाषा में Principal का अर्थ मूलधन की है

और निष्पत्ती भी है। Interest का अर्थ है भाव की और चिंत भी है। करने वाला वह कहता है कि मैं सुद या व्याज इसलिए नहीं देता क्योंकि कि यह मेरे निष्पत्ती के विरुद्ध है। और मूलधन इसलिए नहीं लौटाऊ क्योंकि इस का लौटाना मेरे हित में नहीं है। अर्थात् वह व्यक्ति कर्माँ सेकर वापिस करना ही नहीं चाहता। इसी प्रकार एक व्यक्ति किसी से एक हजार रुपये उधार ले गया। वापिस करने को नहीं अछता का। कई बार मग की गई पर बाद का वो वही एक ही रही। एक दिन कर्माँ वसूल करने के लिए वह व्यक्ति उस के घर गया तो कर्मचारी ने कहा कि चलो आप का कर्माँ अभी चुकाता है। हम मेरे साथ चलें। दोनो साथ साथ हो लिए। चलते चलते जात आ गया। एक रजान पर उठर गये। कर्मचारी ने जब से रस्सी निकाली और पैर पर बांधने लगा। दूसरे ने पूछा भाई क्या करते हो। उसने कहा तुम्हारा कर्माँ वापिस नहीं किया जाता। रजम बहुत असी है। गले में रस्सी डाल कर जाल हवा करना चाहता है। अब कर्माँ वापिस लेने चले ने सोचा कि यदि यह घर गया तो इस की नील मेरी पड़े जायेगी। पुलिस कोनी कि यह कर्माँ नहीं ले सका इसलिए साहूकार ने गले में कटा डाल कर उसे जान से मार दिया। कलस का मुकदमा पहले पठ जायेगा। उसने कहा मैंने कोई बात नहीं एक महीने बाद दे देना दो के बाद या छ महीने के बाद दे देना। उसने कहा कि मैं तो इस योग्य हूँ ही नहीं कि कर्माँ लौटा सकूँ। अतः यह समझीत हुआ कि कस्तो तुम आधा दे दो और आधा तुम्हें छोड दिया। दाना जगल से वापिस आ गये। अब जब घर के निकट पहुंचे तो कर्मचारी ने फिर कहा कि भाई सुन गये। साहूकार ने कहा हा मैं हा देता हिसब ठीक है। अब तो केवल पाया नील ही रह गये हैं पर पासी कम लौटायेगा। उस कर्मचारी ने उतर लिखा। भाई क्यो फिर कहती हो। कैसे मीने पड़ेस पासी लौटा देती छह सप्ताह मने पर कर्मचारी कह रही की लौटा देता। यह है जब कह के लोगों की वृत्ति।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

समाजवादी-85



यह वाक्य सत्य है कि संगठन में शक्ति है। इस वाक्य को हमारे देश के विद्वानों ने, श्रमियों ने, युवियों ने तथा समाज के देश हित चिन्तकों ने, अनेकों बार दोहराया है। विघटन में दुःख है, बलेस है, संगठन में सुख है, धर है, स्नेह है, कर्पण प्रायवक्त है।

आर्थिक संगठन के विद्वानों ने आर्थिक संगठन की स्थापना से ही देश की शक्तियों को संगठन का घट पड़ाया है क्योंकि आर्थिक संगठन वेद का प्रथम कर्तव्य है और श्रमवेद में एक पूरे युवा का नाम ही संगठन सुख है। इसलिये आर्थिक संगठन में सबसे बड़ा संगठन देखने को मिलता था। आर्थिक संगठन प्रत्येक देश को मानता है न कतिबन्ध को मानता है। आर्थिक संगठन भारत देश में बसने वाले सभी शक्तियों के लोगों को एक सूत्र में बाधना चाहता है। सारे संगठन में एकता स्थापित करना चाहता है। आर्थिक संगठन सब के लिए कार्य करता है। बल्कि आर्थिक संगठन तो सारे संसार की एकता चाहता है, सार्वभौमिकता स्थापित करना चाहता है। श्रमवेद के संगठन सुख के दूसरे मन्त्र में कहा गया है :- संगठनधर्म सं वदन्त्यं स वो भवति ज्ञानतन्म देवा धर्मं यथापूर्वं सं जानानां उपरसेत्।

परमात्मा संसार के सब लोगों को कहता है कि मिलकर चलो, मिलकर एक जैसी कानी बोलो, अपने मर्नों को मिलकर चलो। अर्थात् परमात्मा कहता है कि सभी लोगों को संगठित होकर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक न राजनीतिक कार्य करने चाहिए। परिवार में सब कार्य आपस में मिलजुल कर करें। एक दूसरे को सहयोग दें, एक दूसरे को साथ लेकर चलो। संगठन में भी संगठन के सभी वर्गों को साथ लेकर चलो। मिलजुल कर सामाजिक कार्य करें। परमात्मा कहता है कि धार्मिक कार्य भी सभी मिलजुल कर करें, धर्म के नाम पर आपस में कोई विवाद न करें, धर्म के रहस्य को समझें धर्म क्या है इसे जानें। वेद में धर्म की परिभाषा दी है उसे समझें। धर्म आपस में सद्गुण नहीं दिखाता धर्म तो आपस में इन्सानों को जोड़ता है। जो धर्म मान्यों को आपस में एकता है यह धर्म नहीं है। परमात्मा कहता है राजनीतिक कार्य भी मिलजुल कर करो। देश की, राष्ट्र की, उन्नति के लिए प्रत्येक मानव को कार्य करना चाहिए। प्रत्येक मानव को अपनी जगति से पहले राष्ट्र की जगति के लिए विचार करना चाहिए, फिर अपनी जगति के सम्बन्ध विचार करें। यदि हमारा देश सुरक्षित होगा, उन्नत होगा, उन्नत होगा तो हम स्वयं ही सुरक्षित होंगे और उन्नत होंगे।

आज इसके विपरीत हो रहा है आज हमारे परिवार भी बिखर रहे हैं, धर्म-धर्म, कर्म-कर्म, प्रति-प्रति, सत्य-सत्य सभी में संतान बढ़ता जा रहा है। विघटन पैदा होता जा रहा है। आज विरल ही कोई परिवार होगा जिसमें संगठन होगा, आपस में स्नेह होगा, सहयोग होगा। धर्म-धर्म आपस में टकरा रहे हैं, कर्म कर्म में टनी हुई है, प्रति-प्रति, सत्य-सत्य को तो अब चितने काले झगड़े प्रतिदिन सुन लें। संगठन में आज भी भेद-भेद बस रहा है। हमारे देश का सामाजिक ढांचा लड़खड़ा गया है प्रत्येक सामाजिक षटक विघटन की ओर जा रहा है।

धार्मिक रूप में तो हमारे देश की स्थिति बढ़ी दयनीय हो गई है। इतने धर्म हमारे देश में हैं किनको गिन जाना भी कठिन है। धर्म के नाम पर बहुत से आडम्बर चल रहे हैं। सभी गत, सम्प्रदाय अपने-अपने धर्म माने बैठे हैं। धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अन्धकार हो रहे हैं। कई धर्मागमियों को धर्म के लक्षण का भी पता नहीं। जब महर्षि दयनन्द सरस्वती ने काली के पवित्रों से पूछा था कि धर्म के लक्षण क्याओ तो कोई नहीं पता चला था और अन्धों के लक्षण पूछे तो भी

सभी मौन रह गये थे। यही स्थिति आज के धर्मागमियों की हो रही है। कुछ लोगों को पता ही नहीं कि धर्म और अधर्म क्या होता है। हमारे देश की बहुत बड़ी संख्या ऐसी है जिसे धर्म का कुछ पता नहीं है। हमारे देश की कई राजनीतिक पार्टियों को भी यह पता नहीं कि धर्म क्या होता है वह बिना कुछ सोचे समझे बिना कुछ जाने धर्म निषेधता का नया लगा रही हैं। क्या बनेगा इस देश का जिस देश के लोगों को धर्म की भी जानकारी नहीं है।

राजनीतिक रूप में तो हमारा बहुत ही मुल हाल है। गत दिनों जो कुछ झूठा हमारे देश के राजनीतिक लोगों ने किया है उसे देख कर तो प्रत्येक देश भक्त व्यक्ति की आँखों में आँसू आ गए। जैसे हमारे देश में अनेकों धर्म बन गए हैं वैसे अनेकों राजनीतिक पार्टियाँ बन गई हैं। प्रत्येक पार्टी एक दूसरी पार्टियों को नीचा दिखाने में लगी हुई है। देश की किसी को भी चिन्ता नहीं है केवल अपनी पार्टी के लिए ही प्रत्येक राजनीतिक व्यक्ति कार्य कर रहा है। आज की राजनीति दिखा हीन हो गई है। राजनीतिक लोग अपने उद्देश्य से भी भटक गए हैं। यह लोग मिल कर आज अपने ही देश के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। एक अच्छी भली सरकार चल रही भी परन्तु स्वामी राजनीतिक लोगों ने उसे गिरा दिया और देश को मध्यकालिक युगवा की ओर बकेल दिया और देश में अनिश्चितता सी पैदा कर दी। आज राजनीति में अपराधी तत्व हावी हो रहे हैं धार्मिक प्रवृत्ति के लोग राजनीति से दूर भाग रहे हैं अधार्मिक लोग व अपराधी लोग आगे आ रहे हैं। इससे देश का भविष्य और विपद्ग्रस्त तथा बिगड़ रहा है।

आज हमारे देश की जनता में भी संगठन नहीं है। छोटे-छोटे राजनीतिक दलों को अपना वोट देकर जनता स्वयं देश में अनिश्चितता पैदा कर रही है। आज हमारे देश की जनता कई भागों में बँटी हुई है और राजनीतिक लोग इस विघटन का लाभ उठा रहे हैं। हमारे देश की जनता को एकता के सूत्र में बन्ध जाना चाहिए। प्रत्येक नागरिक यह निश्चय करे कि वह अपना वोट किसी भी भ्रष्ट राजनीतिक व्यक्ति को नहीं देगा। वह अपना वोट उसे ही देगा जो भारत देश की जगति के लिए व संगठन के लिए कार्य करेगा और जो सदाचारी होगा। जनता को राजनीतिक पार्टियों के जाल से बाहर निकलना चाहिए सभी देश बच सकेगा। हमारे लिए देश सर्वोपरि होना चाहिए कोई राजनीतिक पार्टी नहीं। वह मत देखें कि किस पार्टी का व्यक्ति खड़ा है बल्कि यह देखें कि कौन खड़ा है। यदि इस बार भी किसी एक राजनीतिक पार्टी को बहुमत नहीं मिला तो पहले काली स्थिति देश की होगी।

इसलिए संगठन की सभी क्षेत्रों में आवश्यकता है क्योंकि संगठन में ही शक्ति है। हमारे देश की सारी जनता को अपनी सभी समस्याओं पर एक हो जाना चाहिए और देश के हित में विचार करना चाहिए और सभी क्षेत्रों में संगठन पैदा करना चाहिए सभी देश को बचाना जा सकेगा।

शर्माध्व आर्थिक
सहसम्पादक

सूचना

ऑल इण्डिया दयानन्द सत्येश्वरान मिशन, ऊना रोड, होशियारपुर निर्भन, अनाथ तथा योग्य विद्यार्थियों से छात्रवृत्ति हेतु प्रार्थना पत्र आमन्त्रित करता है। प्रार्थना पत्र 15 जून 1999 तक अपने विद्यालय के प्रधानाचार्य अथवा स्थानीय आर्थिक समाज के प्रधान द्वारा तस्दीक करवा कर हार्दयाल सिंह प्रधान, मिशन के पास भेजे जा सकते हैं।

शर्माध्व आर्थिक
सहसम्पादक

महिलाओं की वर्तमान स्थिति

☐ श्रीगणेशाय नमः
श्रीगणेशाय नमः

भीमसेन लदी में हमने बहुत आनन्द
 तकली की थी, परन्तु बहुत आनन्द
 हास्य भी इस लदी में मिलता था।
 कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि
 वहाँ हमें पूर्ण मानव श्रुतिगत में पहुँचने
 इतनी तेजी से नहीं बढ़ती, जितनी हम
 तेजी से वे भीमसेन लदी में बढ़ती हैं।
 अभी कुछ ही दिनों पूर्व १९४५ ई.
 एक अमेरिकी महिला का इच्छा
 तिथ्या गुरु, तब उसने बताया कि
 जब वह बचपनी थी, उस समय लक्ष्मी-
 का भी उन्हीं लदी से आनन्द प्राप्त
 हुआ था और आज भाग्यम् १९३०-
 विलोमतोऽपि प्रति वृद्ध का पक्षर से
 उड़ने को बमर जगता है। यही लदी
 चाहें चाहे पर हो आनन्द है और मोक्ष-
 प्राप्त भी अपना नाम जगत्तु कर्षण है।
 और यहाँ तो बहरी बर हो

लेकिन मनुष्य को रहने से बारी
पर हो है। कहा एक ओर मनुष्य को
आँसु आया जबी और और लम्बे
लम्बे लम्बे की झुलझुलाने के लिए
एक से एक आँसुवर्षा की मर
मौजूद है, वहाँ या भी सत्य है कि
सत्य में बेवशाली भी है और लोगों
में असहानता, अपराधिकता,
मार्तन्दीहीन, उपमोक्षमार्ग, गैरसत्य
एक झुलझुलाने की पर का ले रही है।
हमारे में वहाँ की कष्टों की
बगल से चलता रह रहा है और
पशुओं के लिए पार की भी कमी है।
अक्सर जहाँ भी चारा लाने की
किम्मेयारी मिलतीहोती है वहाँ होरी
है और वे दूर दूर सम्मेलित हुए भटकी
हैं। यह विमर्श गम्भीर, और कुम्भ
से लोक हिमालय के अन्त इलाकों
में भी पड़ जाती है।

परिवार केवल पति-पत्नी और दो बच्चों तक सीमित हो गये हैं, जिसको बचहोठ से ठन्ने स्वेदनीलाह और संगाद की कानो हो चुकी है, जिसे घर-घर में उपलब्ध कम्प्यूटर, टेलीफोनन की उपस्थिति ने और गाहर कर दिया ह। इस प्रकार की जीवन पद्धति से पैस भले ही अधिक प्राप्ता हो जाये, लेकिन असल सुख, जो कि व्यक्ति समाज में रह कर और उसमें सक्रिय भागीदारी करके पाता है, वह मिलन कठिन होज आ रहा है।

महिलाओं की स्थिति में भी काफी अन्तर्धरोध मौजूद है। एक ओर सड़र में ठगले ठगमिद की चासी है कि वे अच्छी अच्छी नौकरियों पर कार्यरत रहेंगी, दूसरी ओर यह अन्तर्धरोध रहता जानो है, वे सदरुमिदों पर घर में हर प्रकार की सुझावों के उपलब्ध करावेंगी, भले ही वे अपने जनों के अर्थसंग्रह परा सार

का है। साथ ही उन्हें अपनी पूरतम
रक्षण करना पड़े। आवश्यकत इस
का है कि जब महिला परिवार
का अंग में बगल से योगदान देती

है, तो घर के कामकाज में भी उसे दूसरे सदस्यों से मदद मिलनी चाहिए। राष्ट्रीय महिलाओं की कठिनाईयाँ

अन्य बात की ५५ प्रतिशत धारणा
पाँव में निपात करके हैं। पाँव में
तुलने का विषय को तो सुख है,
परन्तु वह निष्कर्ष को नहीं सुझा
नहीं है, अन्वयान्त के समान जहाँ
है। नीतिशास्त्र की प्रगति में प्रत्येक
समय का विचारान्त होने के कारण
नहीं जोर-जोर की भावनाओं के प्रसार
पड़ता है। आज विचार नष्ट है कि
कुल में से ४२.२ प्रतिशत जातिप्रधान
ही प्राथमिक विचारों के लिए दक्षिण
लेते हैं, जबकि मध्यमिक और
उच्चतर माध्यमिक के लिए वह
प्रतिशत २२.६ से ३५.३ प्रतिशत है।
यद्यपि १९८०-८२ के मध्यमाले में
सुधार हुआ है, परन्तु बहुत दूर नहीं
गया है। यहाँ तक कि, समकालीन
विचारों से घटेले हो, वे समकालीन
हो और लोग जाद्वी, जबकि प्रगति
१०० प्रतिशत भाष्यपूर्ण विचारों
सकल में दक्षिण लेते हैं। एक
और विचारपूर्ण विषय है कि स्कूलों
में दक्षिण लेते ही २०५.० प्रतिशत
भाष्यपूर्ण विचारपूर्ण विचारों में ही
निहित जाते हैं तथा माध्यमिक
विद्यार्थियों में यह दूर और ही अधिक
है-५४.७ प्रतिशत। जबकि हाई
स्कूल में यह दूर ३३.६ प्रतिशत है।

इस प्रकार से मोटे तौर पर यह देखा जा सकता है कि हाई स्कूलों का शिक्षा अधिक करने वाली महिलाओं की संख्या ३ से ५ प्रतिशत से अधिक है। इसका प्रतिकार यह होना है कि स्कूल के परम्परा उन्मुख शिक्षा प्रणालि करने के लिए बहुत ही बड़ी काशिकाएं उठाने ला पाते हैं। यही कारण है कि इंजीनियरिंग में महिलाओं का प्रतिशत प्रतिशत २१ प्रतिशत है, शिक्षा में ४२.२ प्रतिशत में २५ प्रतिशत विज्ञान में ३३.२ प्रतिशत तथा कलाओं में ३९.८ प्रतिशत है और बिजनेस में उनका प्रतिशत ३३.९ अर्थात् एक तिहाई है। राजधानी के सामान्य नदी

महिलाएँ काम करने को तो हकूक होती हैं, किन्तु इसके लिए उन्हें स्थान नहीं मिलता। भारत में लगभग ३५ प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीविक जमान करते हैं और प्रायः दोनों पक्षों में परिवार की जीविका चलाने के लिए २० प्रतिशत परिवारों में महिलाएँ ही बड़ा योगदान देती हैं। अतएव उसे काम भी करना है और उसे शिक्षा का स्तर भी नहीं मिलता। अतएव महिलाएँ अविधवा और अनीयवृत्तिका रूप से छोटे वस्तुओं में में मजदूरी अवकाश के लिए प्रतिवर्तिका तथा पथ पालन आदि में रू-नग्न रह कर अपना काम चलाती हैं।

ऐसी महिलाओं को छोटे-छोटे
ठगार मिलना बहुत बुरी है। यह

बहुत हर्ष का विषय है कि १९८० से ही भारत सरकार ने महिला एवं बाल विकास विभाग को स्वयंभूत रूप में और इस विभाग ने महिलाओं की शिक्षण समस्याओं पर ध्यान देकर ग्राह्य समारोहों पर ध्यान देकर प्रारम्भ किया है। महिलाओं को स्वयंभूत रूप में मजदूरी संस्था के रूप में देखती हुए उन्हें केवल कालकान्तरी कार्यक्रमों का प्राणीकरण न मानकर विचारों में एक ही वेतन प्रदान है। राष्ट्रीय महिला आयोग

इस विभाग के धन के उपरान्त राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई, जिसका कार्य है महिलाओं के बारे में विभिन्न खानूने प्रश्नों की समीक्षा करना और यदि कोई असम्भवताएँ हैं, तो उन्हें दूर करने के लिए प्रयास करना। सच है इस आयोग को किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह किसी विभाग का अधिकारी क्यों न हो, सम्मान करने का अधिकार है, चाकि यदि उसके विभाग में किसी महिला पर अत्याचार हो रहा है, तो उसका निराकरण किया जा सके।

इसके साथ ही भारत सरकार ने एण्टी-कमिनिस्ट कोष की भी स्थापना की, जहाँ निर्वाण विपक्षियों को स्वीकृत सत्ताओं के माध्यम से अपने मुलायम कराया जा सके। इस योजना का बहुत अधिक स्वागत हुआ है, क्योंकि इसमें दोष दूर विपक्षियों को इस बात की पूर्ण स्पष्टता दी जाती है कि वे अपनी आप वृद्धि के लिए क्या काम करें।

[illegible]

यद्यपि वैदिक मूल में तब हमरी संस्कृति के धरोहर के रूप में हमें मनुके विचार, जुगल नेतृत्व वाली और बाह्यरू नवीकरण मिलती हैं, किन्तु कुछ कबज्यों से विध्वंसि भारत में बाहर से हमें सारे आत्मनय में शामिल हैं, विनाश कुछ विगड़ती गई है। आज भी हमारे बीच बाह्य से आनेवाली विध्वंसि में जीवू हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बाह्य गम्भीरता और दुष्टता का बाह्यरू का पीछा करने वाले सैनिकों द्वारा परिणामों के योगदान को भी हम भुल नहीं सकते। तथापि सामान्य रूप से परिणामों की विध्वंसि जन-निर्देश या आत्मनय दिखाने वाली नहीं है।

बेटी को बोलना मानते हैं

महिलाओं के साथ अन्धकार की
छाये में ही पहले तो उन्हें शिक्षित
करी। फिर पढ़ा, लिखा। पढ़ाई के
में उनकी ओर से उनकी पुरानी
प्रथा की भी कड़ी रोक थी। सफल
और सही बचपन ही और पढ़ाई के
समय में बेटी को एक बेटी के
रूप में अपना गौरव और प्रतिष्ठा
का एक अन्तगर्भ बसाता है।
उसके विचारों के लिए अपनी ओर
से वह नजर नहीं डालता। का शिक्षा
प्रणाली का। प्रथम योगदान को तो
प्रभाव वह पड़ता है कि अपनी ओर से
कहने के बेटी का अपना विकास में
कौश्ल व्यवस्था बनाती है। सन्
१९०० में ही प्रतिष्ठित लड़कियों के
संस्थानों में २०० महिला लड़कियों
को प्रवेश था। वह प्रविष्टि २० करोड़ का
पिछले दो दशकों में बढ़ता लगा
है और उसका अर्थ है २०० करोड़
प्रतिशत लड़कियों का गौरव।
कि महिलाओं का जन्म का प्रथम
महत्त्वपूर्ण क्षण ही वास्तविक में
उनकी शिक्षा है। वह जन्म का
प्रथम ही क्षण है जो उनके मन में रोके
है, तो वह विचार होता है कि मैं
तो २००० में से २०० लड़कियों को
विशाल योग्य बनायीं। निम्न अंगी,
पर अगली भी प्रथा का रहा।
पर अगली दशक में २००० में से
५५० लड़कियों को ही सफलता
मिली। भारतीय समाज में
होने वाली महिलाओं की विचार
प्रणाली यह, उन सभी विचारों का
अन्तर्गत नहीं था, जहाँ वे जहाँ में
हो तो वह सत्य है, वह इतनी शिक्षा
विभागीय होनी चाहिये। गैर की
महिलाओं के लिए शिक्षा उपलब्ध
कराना पर ऐतरेय को शिक्षा व्यवस्था
बनाया करती है। और सत्य है कि
योग ५-१० लाखों करोड़ का पर
पर एक लाख लड़कियों, जबकि वे १
लाख की कार से भी सारा बचपन
होता है, जो एक प्रकार समाज का-
होना है समाजवादी बचपन के लिए
अवसर नहीं उपलब्ध है प्रथम ही
दशक ही का समाज

[illegible]

ईश्वर हमें सन्मुखि दे ताकि हम
 अपने अस्सी भ्रातेद भुक्तकर अस्सी
 सहयोग एवं सद्भाव से अपने
 शिरोमणि सन्धिक्रम सभ के सर्वप्र
 मण्योद को पूरा करने में ही सफल
 और उन्नत महान विभूति महर्षि दयानन्द
 सरस्वती के सम्मान एवं गरिज को
 अपने अध्यापन से सक्षिप्त होने दें।
 ओम् सत्माजी व आकृष्टि
 सन्धान हृदयकी वः।
 सत्पन्नम्सु जी भन्ने यथा य
 सुनन्नास्ति।

आर्य समाज कोटकपुरा में वेद प्रचार सप्ताह व आर्य श्री महाशय सम्पन्न

आर्य समाज वेद मन्दिर कोटकपुरा में 19.4.99 से 25.4.99 तक वेद प्रचार सप्ताह एलम गावड़ी महाशय बड़ी धूमधाम व श्रद्धा से सम्पन्न हुआ।

19.4.99 से 24.4 तक एक रात्रि में 8.30 से 10.30 तक मान्य सत्यपाल जी पथिक भवनोपदेशक श्री सुन्दर लाल शास्त्री जी एलम महाना प्रेम प्रकाश घूरा कालों ने प्रवचन किया मान्य सत्यपाल जी पथिक के भवन सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे। दो दिन के बाद श्री सुन्दर लाल जी शास्त्री भी आ गये थे तब महाना प्रेम प्रकाश जी व सुन्दर लाल जी द्वारा के प्रवचन शिबिर भी लगाना करते थे। लोगों ने भक्तों व प्रवचन की सुनने की इच्छा बनी रहती थी। 20.4.99 प्रातः साढ़े 8 से साढ़े 10 बजे तक डा

देवराज जी बुद्धिराजा कोषाम्ब अर्ध सम्पन्न वेद मन्दिर कोटकपुरा के घर पर हवनयज्ञ भवन व प्रवचन हुए जिसमें भारी संख्या में नर नारी सम्मिलित हुए। अन्त में सभी आए हुए नर नारी को भोजन भी परोसा गया। सभी ने अति स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करके डा० देवराज जी व उनकी धर्मपत्नी श्रीमति कमला बुद्धिराजा को कि अत्यन्त श्रद्धालु व मिलनसार हैं का धन्यवाद किया। उनके लडके विलेख ने भी एक भजन बोला था जिसकी सभी ने अत्यन्त प्रशंसा की 21.4.99 को श्री विजय कुमार जी भासल के घर भी प्रातः साढ़े 8 से साढ़े दस बजे तक बड़ी श्रद्धा से हवन वज्र व भवनोपदेश व प्रवचन किए गए बड़ा भी भारी संख्या में लोग आए। अत्यन्त श्रद्धा से सभी ने श्री विजय भासल जी का धन्यवाद किया। 22.4.99 से प्रातः 8.30 से 10.30 बजे तक

गावड़ी वज्र भवन प्रवचन होते रहे। 25.4.99 को प्रातः 8 बजे 8 दम्पति हवनकुण्डों पर बैठे व यज्ञ के ब्रह्म मान्य सत्यपाल जी पथिक ने सवा 10 बजे एक हवन यज्ञ गावड़ी महाशय की पूर्णाहुति करवाई। जिसमें सम्मिलित लोग ने अति श्रद्धा से बैठ कर वज्र किया व प्रवचन सुना। फरीदकोट से आर्य समाज के प्रधान जी मन्जी जी व अन्य अधिकारियों के साथ सती अर्ध समाज फरीदकोट की प्रथमा व सदस्य भी आई थी। गंगा से श्री जगदीश जी अपनी बेटों व अन्य सदस्यों के साथ पधारे थे। भक्तों व प्रवचनों को अति प्रसन्न हो लोगोंने सुना व प्रशंसा की। देवी श्री के हस्तों का प्रसाद पाया गया। हवन वज्र गावड़ी महाशय पूर्णाहुति में भाग लेने वाले भक्तमानों ने सम्पत्नीक यज्ञ के ब्रह्म श्री सत्यपाल जी पथिक श्री सुन्दर लाल जी शास्त्री महाशय प्रेम प्रकाश जी के आगे नमस्कार होकर आशीर्वाद लिया व आर्य समाज वेद मन्दिर

कोटकपुरा की तरफ से कोषाम्ब डा० देवराज जी द्वारा भेंट भी प्राप्त की (पुस्तकों का सेट श्रद्धा देवानन्द जी के पिता वाला व महाशयों का कैंसलर) सब सहायन श्री मन्पाल मीनी जी ने किया। अन्त में आर्य समाज वेद मन्दिर कोटकपुरा के संगठन मन्वी आ ललित जी बच्चन ने आए हुए सभी विद्वानों व लोगों का अति श्रद्धा से धन्यवाद किया। उसके बाद देवी श्री से कला श्रद्धा लगा बड़ी श्रद्धा से सभी ने ग्रहण किया। लगर परसेने में प्रधान श्री रविचन्द्र दिव्य उपप्रधान श्री वीरेंद्र शर्मा मैनेजर श्री रविन्द्र कुमार शिवाबा श्री श्यामी लाल व दूसरे सदस्यों के साथ स्कूल की प्रिंसिपल श्रीमति सत्या मककड़ जी व दूसरी सभी अध्यापिकाओं ने भाग लिया। सभी बच्चुओं को एक एक कैलण्डर आर्य समाज वेद मन्दिर की तरफ से भेंट स्वरूप दिया गया।

मन्पाल मन्जी मन्जी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी हरिद्वार

का

आंवला, केशर, चांदी व पिस्तायुक्त,

कोलस्ट्रोल रहित

विटामिन 'सी' से भरपूर

अमृत रसायन

आर्य स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

की औषधियों का

सेवन करें।



शाखा कार्यालय :

६३, गली राजा केदारनाथ,

बावड़ी बाजार दिल्ली-११०००६

श्री अमृतेन्द्र कुमार जी तथा एचरोकेट प्रधानी सम्पन्न द्वारा बना विटमि ड्रिग प्रोपेलेक्ट ड्रिग कलन्डर से मुक्ति ईश्वर अर्ध मन्कीय कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक कलिकापुरा कलन्डर से इलाकी स्थानीय अर्ध प्रतिनिधि सप्त पन्थक के लिए प्रकाशित हुआ।

रवि नं. 19/11/55

कृष्णतो

ओ३म

विश्वमार्गम्

सूत्रमात्रः

२२: 292926



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्रारिणित्य सभा पञ्चाय का प्रमत्त साप्ताहिक पत्र

वर्ष 50 अंक 7, 27 वैशाख सम्पत् 2056 तदनुसार 13/16 मई 1999 दयानन्दस्य 175 वार्षिक सुलक 50 रुपये आवीबनी 500 रुपये

आर्य समाज माने क्या है तो...

लेखक श्री २००० श्री २००० श्री २००० श्री २०००

वर्तमान आर्य समाज के संगठनों, संस्थाओं, संस्थाओं और समाज परिवर्तनों को, जो ब्रह्मचर्य विचार हैं। जिस तरह के विचार, सम्प्रदाय तथा धर्मशास्त्रों सामने आ रही हैं। जिस तरह के लोग, तैसी से अधिकारी बनकर ब्रह्मचर्य कर रहे हैं। एक बार अधिकारी बनकर हटने का नाम नहीं लेते। उन्होंने देखा, सुन तथा जानकर, वैदिक विचारधारा में आस्था रखने और श्रद्धापूर्वक व्यक्ति आज दुर्लभ, विनिर्मुक्त एवं परेष्ठ हैं। कुछ लोग, गिराव, हलका तथा उपद्रव होकर उठते हो रहे हैं। उनमें नैतिकता यह बनती आ रही है कि अब आर्य समाज का सुधार, उद्धार तथा प्रगामी संगठन संभव नहीं आया है। इसीलिए बतसे बतसे सत्तों एवं कार्यकर्ताओं में उपस्थिति घटती आ रही है। किसी संगठन का वार्षिक मूल्यंकन होता है—विचारधारा का किन्ता दूसरी पर प्रभाव पड़ता है? किन्ता लोग हमारे साथ जुड़े हैं? किन्ता वे हमारे सिद्धान्तों को अपनाया है? किन्ता वे संगठन की सहायता स्वीकार को है? धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में हमारा किन्ता प्रभाव, सम्मान और मूल्यंकन है। किन्ता संगठन को रक्षाकृत किन्ता आता है। हम अपने घर में बैठकर किन्ता की कोर मचा लें। हमने ये किन्ता? हमने अपने अकल जोर दिया है अस्सी मूल्यंकन तो ब्रह्मचर्य संगठन शक्ति से करती है। संगठन की दृष्टि से आज आर्य समाज अन्दर और बाहर दोनों दुर्दिनों से लक्ष्मणपूरा रहा है?

जहाँ और सम्प्रदाय, पदस्थित, अर्थात् तथा कर्मों की बदलिता बतसे होती रही है। जो आर्य समाज

की जीवन चेतना और प्रेरणा की शक्ति था। वह अब हमारे आकर्षण, स्वार्थ तथा कर्मों के कारण बंद व बिचर रहा है। कोई संस्थाएँ बाला नजर नहीं आता। किसी ने सभा, किसी ने ट्रस्ट, किसी ने संस्थान, किसी ने अग्रिम, किसी ने गुरुकुल, किसी ने मठ, किसी ने परिषद, किसी ने कुल, तो किसी ने कुल पकड़ लिया है। अपने कर्मों और अविधि बँट दिए हैं। जो बाह्य बैठ गया सितने का नाम नहीं लेता। उससे परे लाभ, स्वार्थ, मान, सुख सुविधा आदि से रहा है। इसी कारण झगड़े, विवाद तथा सम्प्रदायों अपना हो रही हैं। जब एक व्यक्ति किसी एक सभा, संगठन, संस्था ट्रस्ट आदि पर कब्जा हो जाता है। फिर उससे जो लाभ, सुविधा, अधिकार, मान, सम्मान आदि प्राप्त करता है। इन सब चीजों को देखकर दूसरी का मन लसता है। यहाँ से झगड़े, विवाद और उसमें आरम्भ होती है। जो पर, अधिकार, सुख सुविधा व सम्मान में बैठा है, वह जोड़ना नहीं चाहता है बाहर का व्यक्ति, उस पर पद प्राप्त साधन सुविधाओं को नाम चाहता है। वह झगड़ों और परेष्ठों का मूल कारण है। समूचे कार्य में भाग की सभा, संगठनों, संस्थाओं, गुरुकुलों, आश्रमों आदि में ये प्रवृत्ति फैली हुई है। इसी कारण इन गुणाल, रचनात्मक एवं प्रभावशाली दृष्टि से पिछड़ रहे हैं। ब्रह्मचर्य से कट रहे हैं। मेरा किसी व्यक्ति, संस्था, संगठन आदि पर दोषारोपण, गुटबाजी एवं घटीबाजी की दृष्टि से टीका टिप्पणी करने का प्रवृत्ति भी ब्रह्मचर्य नहीं है। मैं तो जो देख, सुन व अनुभव कर रहा हूँ। उन्होंने सल तमों के आधार पर श्रद्धा प्रणीत, आर्य समाज के

पावनशील अनुभवों को अग्रह, संवेत तथा विवेक कर रहा हूँ। जहाँ। संगठनों। कुछ मिल बैठकर विचार करो। इस कड़ा का रहे हैं? क्या श्रद्धा ने इसीलिए जो वर्तमान में सर्वत्र हो रहा है उसी के लिए आर्य समाज बनाया था। इसीलिए बहुर विचार था। हम अपने वाली पौड़ी और संस्था को क्या विचारत तथा यथोचित देंगे। क्या हम कुछ ऐसा कर रहे हैं, जिसमें त्याग, बलिदान, सेवा, परेष्ठकार आदि की प्रेरणा जागृत हो। कुछ और अन्तर्गत है कि कई सभा, संगठनों, संस्थाओं, ट्रस्टों, परिषदों आदि पर खाली से लोग चिपके बैठे हैं? कार्य नग्नम् है। करी सभा नहीं देता। फिर भी जोड़ने का नाम नहीं लेते। नैतिक पतन की भी पराक्रम है कि धर्म प्रचार, वेद प्रचार, सन और चन्द के पैसे को छाते, डकारते, हड़पते और अपने ऊपर डब डब करते हुए सभा तथा आत्म ग्लानि नहीं आती है। चाप बोध की सोच उत्पन्न नहीं होती है ऐसे लोगों के आचरण तथा करनी और कथनी के अन्तर को, जब दूसरे लोग देखते हैं तो वे उत्पन्न व प्रगाम्य मन में ले आते हैं। हमसे जुड़ने की ब्रह्मचर्य कट जाते हैं।

वर्तमान आर्य समाज में एक ब्रह्मचर्य यह भी हो रही है कि कोई किसी की न मानता है और न सुनता है। न अनुसरण है, न व्यवस्था है। नियम के फलत जोते और सिक्का है नियम के लिए सुरक्षा है। कोई फलन नहीं करता। अपनी-अपनी हपसी, अपनी-अपना राग की उक्ति धरित्व हो रही है। इसी कारण कर्मकाण्ड, सिद्धान्त तथा नियम व्यवस्था में एक गति व एक रूपक की नहीं है। जो भी उठता है, अपने संगठन, संस्था, ट्रस्ट, परिषद अग्रिम आदि ब्रह्मचर्य धन बल और ब्रह्मचर्य को बढ़ाने

सत्ता है। सब अपने-अपने अग्रिमों, संस्थाओं, ट्रस्टों आदि के उल्लेखों को दिख रहे हैं। दयानन्द और आर्य समाज के रास्ते की किसी को पिन्ता, बेचनी व परेष्ठानी नहीं हो रही है। इसीलिए बहुर तैसी से फैल रही हैं। आर्य समाज पुनः प्रेरणाशक्ति की चपेट में आ रहा है। आर्य समाज में भवन, स्कूल, बाग़त घर, गुरुकुल संस्थाएँ आदि तो बना लिए। इन संस्थाओं को बलाने वाले ईमानदार, सम्प्रदाय, कष्टर सिद्धान्तवादी दयानन्दी सेवाधारी लोग न बना सके। बहा आर्य समाज पिछड़ गया। इसीलिए आर्य समाज बतसे लोग गिड़ दृष्टि से इन पर कब्जे करने के लिए वेताब हो रहे हैं। यदि आर्य समाज को अपने न संभाता तो ब्रह्मचर्य निष्ठावाक्य और अग्रकार में होगा। मैं गिराव-हलका की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं तो संवेत और ब्रह्मचर्य होकर के लिए कह रहा हूँ। श्रद्धा ने जो सत्यज्ञान का टीका व्यवस्था था उसे ब्रह्मचर्य के ब्रह्मचर्य हो रहे हैं। हमारी पहचान, स्वरूप और सिद्धान्तों को भित्ति के लिए लोग, हमारी ही लोगों को प्रसेधन देकर वेतु रहे हैं। अलग कर रहे हैं। यदि श्रद्धा दयानन्द और आर्य समाज के अस्तित्व, स्वरूप सिद्धान्त तथा परम्परा को बनाया है। रक्षा करनी है। अपने वाते समय को प्रेरक फीर सौंपनी है, तो ईमानदारी, त्यागभाव तथा ब्रह्मचर्य से विश्व बैठकर सोचना होगा। आत्म निरीक्षण करना होगा। दोष और दुर्बलताओं की हटाता होगा। सिद्धान्तों से सम्बन्धित किसी कीमत पर नहीं करना होगा।

(लेखक पृष्ठ 2 पर)

हालेण्ड बेरीय सक कर्मकाण्ड प्रतीक आर- पं देवी प्रसाद मनमोहन राय

□ ले: श्री मन्मथी लाल श्री मन्मथी देवी प्रसाद मनमोहन राय

उपनिषद् में यज्ञ, अन्धकार और धन की धर्म का प्रथम स्वरूप बताया है। दो वर्ष पूर्व जब मैं वेद अध्ययन हातेय गया था तो मुझे 42 वर्षीय पं देवीप्रसाद भगवान दत्त से मिलने का अवसर मिला। 25 सितम्बर 1996 को हातेय के नगर राटरडम में पं देवनाथराय गुणपन के गृह पर एक पारिवारिक संस्कार किया गया था। यहाँ पर मेरी गेट उठाकर पं देवीप्रसाद से हुई। यज्ञ के प्रति उनमें असीम श्रद्धा है, उसका प्रमाण मुझे जब मिला जब मैंने उनके निवास की चौथी मंजिल पर पञ्चाशत देवी। वे विषय प्रति यज्ञ करते हैं और उनकी गृहणी श्रीमती विद्यावती भी अमहीय में उनका साथ देती हैं। ईश्वर यज्ञ का यज्ञ सिलसिला उन्होंने 1964 में आरम्भ किया था जो अन्धकार दूर रहा है। इस यज्ञ कथ के धूर् से काबल बनी दीर्घाई इस बात की साक्ष्य हैं कि इस घर के स्वामी की यज्ञ में कितनी निष्ठा है। समय-समय पर उन्होंने अन्धकार दूर करने का आयोजन किया। राटरडम के हिन्दुस्तान कल्चरल सेंटर स्थित गंगा मन्दिर के सभा कक्ष में उन्होंने अनेक बार बृहद यज्ञों का आयोजन किया है। मेरे उस नगर में रहने पर पं देवी प्रसाद के संवेगन में ही त्रिदिवसीय धर्म प्रचार का कार्यक्रम रखा गया जिसमें पश्चात् सभा में रती पुत्रवर्धनस्थित थे।

मैं हातेय के किन आर्य पुरुषों के घरों में सुन्दर पुस्तकालय देखें उनमें पं देवी प्रसाद का नाम अग्रगण्य है। इसी प्रकार के बृहद पुस्तक संग्रह राटरडम के पं देव नाथराय गुणपन, एसएटडी के पं सुन्दर प्रसाद गुणपन तथा राजधानी दि हैंग (देनहाइस) में हिन्दु सांस्कृतिक केन्द्र के संस्थापक का के वहाँ भी है। पं देवीप्रसाद ने अपने पुस्तकालय में वेद, उपनिषद्, रवीन्द्र, अर्थ विद्या के प्रभाविक का सुन्दर संग्रह किया है। वे उच्चभाष्य

में रचित रहते हैं और जब भी उन्हें भगवत ज्ञान का अवसर मिलता है वे प्रत्यक्ष कथन करते रहते हैं। पं देवी प्रसाद का जन्म सूरिनाम देस में 6 सितम्बर 1954 को श्री रवीन्द्रनाथ तथा प्रोपटी देवी के वहाँ हुआ था। जब सूरिनाम देस में रवीन्द्रनाथ परिकर्तन आयु तो 1975 में वे हातेय चले आये। श्रीमती विद्यावती से इनका विवाह 1977 में हुआ। देवी प्रसाद दम्पति की तीन सन्तानें (2 पुत्रियाँ गार्गी तथा प्रज्ञा एवं एक पुत्र विद्यासागर) हैं। विज्ञान अपने बच्चों के सारे संस्कार वैदिक पद्धति से करते हैं। 1983 में जब राटरडम की आर्य समाज का भवन खरीद गया तो उसमें रंगारं, पुर्खाई एवं वेद मंत्र लेखन आदि का कार्य पं देवी प्रसाद ने बड़ी तत्परता से किया। इसी वर्ष अन्धकार में आयोचित ऋषि दत्तनाथ की निर्वाण शताब्दी में भी उन्होंने भगवत का भाग लिया। राटरडम नगर के अन्ध गंगा मन्दिर में साप्ताहिक सम्स्कृत पाठशाला चलती है। इसके संचालन में उनकी मुख्य भूमिका है। हातेय ज्ञान वाले सभी भारतीय आर्य विद्वानों के कार्यक्रम पं भगवान दत्त द्वारा आयोचित किये जाते हैं। वे स्क्रूप पर भी इन विद्वानों को आमंत्रित कर प्रचार की व्यवस्था करते हैं तथा हातेय के अन्ध नगरों में जब-जब प्रचार कार्यक्रम होते हैं तो वे अपनी कार में वहाँ जाते हैं और उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

जब हातेय में पं अनेक प्रवक्त सामवेदी ५० विजयप्रकाश ताली तथा पं नरदेव आर्य तीन भारतीय आर्य युवक स्थायी रूप से रह रहे हैं और ठहरी यूरोप के इस लघु देस में आर्य धर्म तथा वैदिक संस्कृति प्रचार करते हैं तब ही। पं सामवेदी राटरडम में रहते हैं, विषय ताली ने लेखनीय नाम नगर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया है जब कि पं नरदेव आर्य राजधानी हैडिंग में रह कर धर्म प्रचार में संलग्न हैं। इन तीनों पं देवी प्रसाद का पुत्र सहयोग प्राप्त है। भगवत से हातेय

की काज पर नये अन्धकार हरिद्व, पं कर्णेश, डॉ० बनेज ताली, डॉ० रामनाथ कर्णेश तथा इन विद्वानों के संयोजन को पं देवी प्रसाद का सन्निध्य और समर्थन निरन्तर प्रत्यक्ष रहा। मेरी पुस्तक चतुर्वेदीय अन्धकार कथ के प्रकाशन के लिए भी उन्होंने एक अच्छी राशि प्रदान की थी।

पं देवी प्रसाद हातेय के विद्युत विभाग के एक उच्च पद पर कार्यरत हैं। अपने सामकीय एवं नीतिगत कार्यों से निवृत्त होने के परन्तु वे अपना सारा समय

आर्य समाज की ही देते हैं। यदि उन्होंने हातेय का सार्वजनिक कार्य प्रवर्तन, कर्म एवं निष्ठा, अर्थ सार्वजनिक कार्य वे अनुभवी नहीं होगी। भारत की ही प्रति हातेय के आर्य और अर्थ सार्वजनिक कार्य के मरवेदों और वैभवस्थ से प्रति हैं। यदि उस देस के समस्त आर्य पं देवी प्रसाद वीर्य भाग्यक तथा सिद्धान्तिक आर्य पुरुष का नेतृत्व स्वीकार करें तो इस देस में वैदिक धर्म तथा आर्य भाग्य का सार्वजनिक प्रचार सम्भव है।

(पुत्र) का समय

भाषणव्ययी बहुत हो चुकी। अब तो करके दिखाना होगा। कोई हूँ विश्वसनीयता तथा सख्त को पुनः स्थापित करना होगा। सभी आर्य समाज अपने सत्यरूप में जीवित रहेगा। अपने सम्मान, गौरव, अन्धकार एवं प्रेरण को प्राप्त होगा। गिन सुख सुख ईमानदारी से करनीय है।

1. आर्य समाज का चुनावी, बाँचा प्रवर्तक है। जो कि स्वयं, पदस्थिता और लोग के करण चरमता गया है। टूट कर बिखर रहा है। उसे पुनः कठोरता से सुधारना होगा। सबकुछ से लागू करना होगा।

2. एक व्यक्ति, एक पद, अधिक से अधिक तीन सात। जो कुछ करना और करण दिखाना है। इसी समय में दिखा ले। इसके बाद दूसरे को अवसर दिया जाये। इसमें धर्म, भतीजा, परिवार गुट आदि को दूर रखा जाये। जो तीन सात के बाद पद न छोड़े, उसे केवल कर दिया जाये। सामाजिक भर्त्सना की जाये। अनुसन्धानात्मक कठोर कार्यवाही की जाये। इससे आर्य समाज में एक नई लहर उत्पन्न हो कार्य होगा।

3. वेद प्रचार को सार्वभौम प्रमुखता दी जाये। विद्वान्, प्रोपिटर, उपदेशक, पञ्चोपदेशक आदि को वैचारिक करने को प्रमुखता दी जाये। अर्थक प्रवृत्ति सख्त अर्थक उन्धकार विद्यालय चलते। जिसमें उचित खन-खन के सम्मन हों।

4. समस्त पुस्तकें, स्कूलों, कलेजों में वैदिक विचारधारा और

मिशनरी भावना को प्रमुखता दी जाये। वे ही स्थान हैं, जहाँ आर्य विचारधारा के लोग बनने जाते हैं। संस्कार दिये जाते हैं। यदि मुकुल और डी ए वी स्कूल कालेज स्वीकार करें तो इस देस में वैदिक धर्म तथा आर्य भाग्य का सार्वजनिक प्रचार सम्भव है।

5. जितने भी आग्रह, संस्थापक, संतान, दूर, संस्थापक आदि हैं और जितने भी स्वयंभू नेता महान, विद्वान् सम्पत्ती आदि हैं। विज्ञानों अपने स्वयंभू संगठन बना रहे हैं उन्हें सर्वोच्च संगठन से जुड़ने के लिए बाध्य किया जाये। आचार संहिता का कठोरता से पालन हो

6. आर्य समाज अपने विद्वानों सम्पादित, उपदेशकों और कार्यकर्त्ताओं को सहाये। उनकी मान, सम्मान, सुविधा सम्मान आदि का प्रयत्न करें। विद्वानों की अपनी वैचारिक गति और आदर्श का स्तर ध्यान रहे। अर्थ अर्थ समाज में दोनों पक्षों से भूल हो रही है।

आज आर्य समाज को जस्ता से चुकने की जरूरत है। वर्तमान जीवन जगत की समस्याओं के समाधान में सहयोगी बनकर होगा। समाज मन्दिरों के कार्यक्रमों को प्रवर्धन प्रक एवं अन्धकार करने हों। समाज मन्दिरों को विवाद व झगड़ों से अलग करना होगा। उस बातों का ईमानदारी से कठोरता से पालन किया जाये तो निश्चय ही आर्य समाज की आगे जायेगी।

सम्पादक पृष्ठ



हमारे देश में पिछले कई वर्षों से राजनीतिक अस्थिरता बनी हुई है क्योंकि हमारे देश में अनेकों राजनीतिक पार्टियों बन गई हैं। हमारे देश को बनाता भिन्न-भिन्न पार्टियों को उम्मीदवारों को अपना वोट देकर सफल बना देती है। किसी भी एक राजनीतिक पार्टी को इस कारण से बहुमत प्राप्त नहीं होता। जब चुनाव भी भी ऐसा हो हुआ था जिसमें भाजपा को सब से अधिक सीटें मिली थी और भाजपा ने फिर छोटी-छोटी कई राजनीतिक पार्टियों को अपने साथ मिला कर अपना बहुमत सिद्ध किया था जिससे भाजपा को सरकार बन पाई थी। इससे पूर्व भी जो चुनाव हमारे देश में हुए थे, उनमें भी भाजपा को सब से अधिक सीटें मिली थीं, परन्तु भाजपा अपना बहुमत सिद्ध न कर सकी थी और अटल बिहारी वाजपेयी को जिन्हें प्रधानमंत्री बनाया गया था, बहुमत सिद्ध न होने पर पद्मनाभ देवरा पड़ा था। इसके परचात कांग्रेस के सहयोग से तीसरे मोर्चे ने अपना बहुमत सिद्ध किया और श्री एच डी, देवेगौड़ा को भारत का प्रधानमंत्री बनाया था परन्तु श्री एच डी देवेगौड़ा को सरकार भी पूरी तरह से न चल सकी और कांग्रेस के हस्ताक्षर से ही श्री एच डी देवेगौड़ा को प्रधानमंत्री पद से हटया गया और उसके परचात श्री इन्द्र कुमार जी गुजराल को फिर कांग्रेस के सहयोग से प्रधानमंत्री बनाया गया परन्तु श्री इन्द्र कुमार गुजराल को सरकार भी थोड़े समय तक चल कर कांग्रेस के हस्ताक्षर से गिर गई और फिर यह तबे चुनाव हुए थे बिनामे फिर श्री अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री बनाया गया था परन्तु दूसरे मोर्चे और कांग्रेस ने मिल कर फिर वाजपेयी को सरकार को गिरा दिया और अब देश में मध्यमर्ग चुनाव लिफ्टान्त में होने लिये जा रहे हैं। सरकार बनने में गिरने का तिल-तिलका कई वर्ष से चल रहा है जो हमारे देश में अस्थिरता पैदा कर रहा है।

आजकल सभी राजनीतिक पार्टियों ने अपना प्रचार तेज कर दिया है और प्रत्येक राजनीतिक पार्टी किसी न किसी दूसरी राजनीतिक पार्टी से समझौता करने में लगी हुई है। इस समय भाजपा के साथ भी कई अन्य राजनीतिक पार्टियाँ इस चुनाव में आपस समझौता करके अपने-अपने उम्मीदवार खड़े कर रही हैं। इसी प्रकार से कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक पार्टियाँ भी चुनाव लड़ने के लिए अपने संयुक्त मोर्चे बना रही हैं। जिससे लगता है कि अगामी आने वाले इन चुनावों में भी किसी एक राजनीतिक पार्टी को बहुमत नहीं मिलेगा और यदि किसी राजनीतिक पार्टी को बहुमत नहीं मिलता तो हमारे देश में फिर भी स्थिर सरकार नहीं बन सकेगी। राजनीतिक अस्थिरता से हमारे देश को बहुत हानि हो रही है और वह स्थिति वापस आने इसी प्रकार से चलती रही तो आगे चल कर के और भी हानि होने की मयावना है। हमारे देश को राजनीतिक अस्थिरता का दूसरे देश बहुत लाभ उठा रहे हैं और इससे हमारी शक्ति क्षीण हो रही है।

हम कई बार विचार करते हैं कि सरकार का बनाया जन्म के हाथ में है, जन्म अपना वोट देकर किसी भी उम्मीदवार को सफल बनाती है और उम्मीदवार चुन कर आता है वह बनाता का प्रतिनिधि होता है। यदि बनाता किसी अच्छे व्यक्ति को चुन कर भेजती है तो सरकार भी अच्छी बनती है और यदि बनाता किसी बुरे व्यक्ति को या प्रच्यारियों को चुन कर भेजती है तो सरकार भी बुरे हो जाती है। पिछले दिनों हमारे देश के कई राजनीतिक नेतृओं में बहुत बड़े-बड़े चोटलें किए थे। जिससे उन राजनेतों को ऊँच तो खराब हुई है इसके साथ ही अब राजनीतिक पार्टी को भी खूब खराब हुई है जिसका टिकट पर खूब चुन कर संसद भवन तक पहुँचे थे। हमें कई बार अपने देश को जन्म पर रोना आता है कि वह ऐसा है कि वह व्यक्ति प्रच्यारों है और गाँव वहाँ में इस पर प्रच्यारों के कई आरोप लग चुके हैं परन्तु वह सब कुछ जानते हुए भी जन्म दोफार उठे

फिर अपना वोट देकर सफल बना देता है। जन्म के ऐसा करने से ही हमारे देश को राजनीतिक खूब धूमिल होती का रही है। यह देश खूबियों मुनियों का, महामान्यों व तपस्वियों का देश है। यहाँ बड़े-बड़े धार्मिक राजा महाराजा और खूब मुनि हुए हैं। सभी हमारा देश सफल के उच्च सिंकार पर पहुँचा हुआ था। यहाँ के सभी व्यक्ति अपने निर्णय सत्यता के आधार पर लिया करते थे परन्तु अब यहाँ तर्क हट कर हो बोलबाला है। राजनीति में तो झूठे वायदों के बियाये और कुछ नजर ही नहीं आता। प्रत्येक उम्मीदवार अपने चुने जाने में पूर्व जब जन्म के बीच में जाता है तो बहुत बड़े-बड़े वायदे करता है। समय को खूबहास बनाने की बात कहता है, जन्म को तरह-तरह की सुविधाये देने की बात करता है, परन्तु ज्यों ही वह चुन लिया जाता है फिर वह अपना कोई वायदा पूरा नहीं करता जो कुछ वह जन्म में कह कर आता है उस प्रकार का वह एक भी कार्य नहीं करता। उस समय न उस को जन्म की परवाह होती है, न देश को परवाह होती है उस का उद्देश्य केन-केन प्रकारेण धन संग्रह करना हो जाता है। अब हमारे राजनीतिक लोगों के पास इतना धन है कि जिस की गिनती की जानी कठिन है। कई बड़े-बड़े राजनीतिक लोगों ने अपना धन भारत के बैंकों में नहीं विदेशों में बना करवाया हुआ है। जो राजनीतिक नेता गत दिनों दिवंगत हो गये हैं उनका भी अरबों खरबों रुपया बाहर के देशों में जमा है। प्रत्येक राजनीतिक व्यक्ति रात दिन धन संग्रह करके विदेशी बैंकों को पर रहा है। हमारे देश को बनाता वह सब कुछ जानते हुए भी फिर भी उसे अपना वोट देकर सफल बना रही है। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है। इसका कारण है जन्म का किसी एक राजनीतिक पार्टी से जुड़ जाना। जन्म भी अनेकों भाग्यों में बंटी हुई है तभी ऐसा हो रहा है।

सितम्बर अक्टूबर में हमारे देश में दुः, लोकसभा के चुनाव हो रहे हैं और इन चुनावों पर हमारे देश का कई करोड़ रुपया खर्च होने वाला है। इस रुपये से देश की उन्नति के लिए कोई काम किया जा सकता था। परन्तु अब वह सभी रुपया केवल चुनाव पर व्यय हो जाएगा और हजार खर्च हो जाने के परचात भी अभी तक वह नहीं कहा जा सकता कि जो सरकार आगे बढेगी, वह स्थिर होगी या नहीं। इसका कारण यही है कि हमारे देश की जन्म के सोचने का ढंग बदल उठा उस दृष्टिकोण होत है। पहले हमारे देश का प्रत्येक व्यक्ति देश की उन्नति के सम्बन्ध में पहले सांचता था और अपने कर में या अपनी पार्टी के बारे में बाद में सोचता था लेकिन अब किसी भी राजनीतिक नेता को कोई चिन्ता नहीं है, सब अपने तर्क व अपनी पार्टी तक सीमित हो गए हैं। सभी अपनी-अपनी विचारियों को भरने के लिए लगे हुए हैं। केवल चंदके व्यक्ति होंगे जो ईश्वरवादी से अपना कार्य कर रहे हैं। इसलिए जन्म को एक सुअवसर और मिला है कि वह अपने देश को रक्षा के लिए उसकी उन्नति के लिए व भारत को सरकार को बलाने के लिए अपना ठीक उम्मीदवार चुन कर संसद भवन में भेजे। इस चुनाव में प्रत्येक व्यक्ति को वह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपना वोट किसी पार्टी विशेष को न देकर बलिष्ठ व्यक्ति विशेष को दे। क्योंकि यदि हमने दे फिर अनेकों पार्टियों को वोट देकर उन्हीं सफल बना दिया तो जन्म देश की स्थिति बुरी होगी जो गत दिनों हुई है। कई राजनीतिक पार्टियों ने विलत कर सरकार को गिराया और करोड़ों रुपये का कोष खून चुनाव पर खर्च दिया। वह सिलसिला यहाँ समाप्त नहीं होगा। वह आगे भी इसी प्रकार से चलता रहेगा, यदि जन्म न इस ओर ध्यान न दिया। इसलिए हमारे देश के प्रत्येक नागरिक को अपनी वोट को जाँच कर सभ्यता चाँहिए और अपना वोट न तो बेकार बाने दें और न ही किसी हललत व्यक्ति को दें। हमें इस चुनाव में किसी एक पार्टी को बहुमत मिलना चाहिए ताकि उस राजनीतिक पार्टी को सरकार बन सके और वह पूरे पाँच वर्ष तक चल सके। अर्थात् सभ्यता व सभ्यता किसी एक राजनीतिक पार्टी के साथ नहीं है बल्कि सभी के साथ है इसलिए हम किसी राजनीतिक पार्टी का विरोध तो नहीं करेंगे परन्तु वह बकर कहेंगे कि अच्छे व्यक्तियों को वोट दिया जाने और एक ही राजनीतिक पार्टी के लोगों को अधिक से अधिक संख्या में चुन कर भेजा जाए वह जन्म ऐसा कर सकी तो वह हमारे देश का बहुत बड़ा सौभाग्य होगा।

अविनाश कुमार शर्मा एडवोकेट
सभा महामन्त्री

लुधियाना में उत्सव

आर्थिक स्वातंत्र्य दिवस का जलजल (हाल का जलजल) लुधियाना

का 79वाँ वार्षिक उत्सव तथा आर्थी और दल तिथि पर प्रथम जून मीलनवार से 6 जून, 1999 रविवार तक वार्षिक उत्सव के उत्सव में बहुतेक शतक महामय व आर्थी और दल का प्रतिष्ठान तिथि लगाया जा रहा है। जिसमें निम्नलिखित आर्थी जगत के महान् संस्थापक विद्वान्, संगीतकार पधार रहे हैं।

स्वामी इन्द्रदेव जी महाराज, आचार्य रामानन्द जी महाराज शिपला (हि प्रदेव)। पं. सत्यपाल जी पौष्पक संगीतकार, आचार्य वेद प्रकाश जी शारदी तिथि अथवा, महाराज सुमन्यवि जी महाराज, पं. निरंजन देव जी इतिहास केसरी महाप्रेमदेव आर्थी पं. नि. सभा पंजाब, श्री हरि सिंह जी निष्पक सार्वदेविक आर्थी और दल, पं. हरबंस लाल जी शर्मा, प्रधान आर्थी पं. नि. सभा पंजाब, श्री अम्बानी कुमार जी शर्मा, सहानीजी आर्थी पं. नि. सभा पंजाब आदि वक्ता पधार कर उत्सव में समय-समय पर अपने अनुभव विचार देंगे। आप सब कार्यक्रम में परिवार एवं इष्ट मित्रों सहित सादर आमंत्रित हैं।

कार्यक्रम

1 जून, 1999 मंगलवार से 6 जून, 1999 रविवार तक:
प्रातः जागरण आर्थी और दल तिथि 4 से 5 बजे तक स्नानाति 5 से 6-30 बजे तक व्याख्यान

यश, धन, प्रवचन 6-30 से 8-30 बजे तक

अथवा: पं. सुरेन्द्र कुमार शर्मा जी

प्रातः के परवाज आर्थी और दल प्रतिष्ठान चलता रहेगा।

रात्रि : 8 से 10 बजे तक वेद कथा व भजन।

समयपत्र समीक्षा - रविवार 6-6-99 को 11 कुण्डली यश, धन यश प्रातः 7-30 से 9 बजे तक पूजातिथि 9 से 9-15 बजे तक ओ३म् पताका पञ्चाङ्गोत्थान 9 से 9-30 तक अथवा: आर्थी सम्मेलन 9-30 से 12-30 तक अथवा स्वामी इन्द्रदेव जी, मुख्य अतिथि पं. हरबंस लाल जी शर्मा श्री अम्बानी कुमार जी शर्मा। खसि सार -- 12-30 अरम्भ।

निवेदक :- महात्मा बन्धु प्रसाद
फोन : 709428

श्रीमती सुष्मा नामजल के प्रति जयगोपाल का देशवस्त्रन

स्त्री आर्थी समाज गोविन्दगढ जालन्धर की कोषाध्यक्ष श्रीमती सुष्मा नामजल के प्रति श्री जयगोपाल जी का 4-5-99 को देशवासन हो गया। उसका अन्तिम शोक दिवस दिनांक 16-5-99 रविवार को 2 से 3 बजे तक सत्यनारायण मंदिर (समीर एस सी गार्डन कालेज) गोविन्दगढ जालन्धर में मन्त्रया जायेगा।

श्री जयगोपाल जी एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनका जीवन बड़ा सादा था। ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति के चले जाने का सभी को दुःख है।

वार्षिक जुगाय

21-3-99 को आर्थी समाज आनन्द नगर राजपुर टाउनशिप का वार्षिक जुगाय निम्न प्रकार हुआ :-

सहकर्म श्री सुखदेव जी सत्यनारायण, प्रधान श्री चन्द्र प्रकाश जी सत्यनारायण, उपप्रधान श्री विश्व लाल जी आर्थी, उपप्रधान श्री राम देव जी, उपप्रधान श्री बृज कद जी सेठी, श्री श्री चन्द्र किशोर आर्थी, उपप्रधान श्री धीरज जी शर्मा, प्रचार मंत्री श्री राज कद जी आर्थी, कोषाध्यक्ष श्री नन्द किशोर जी

श्री सत्यनारायण दास शर्मा, श्री वेद प्रकाश कद, श्री सुन्दर दास, श्री अशोक झाकड़ा, श्री सुभाष चामल, श्री राम चामल, श्री सुरेश आर्थी, श्री रामचन्द्र चामल, श्री विष्णु आर्थी, श्री सतीश जगड़ा, बन्धु किशोर मंत्री।

(पृष्ठ 4 का ज्ञान)

हिन्दू मुस्लिम को एक पेटकरमें पर लाने के लिये योरका से बहकन कोट उपाय नहीं। मैं मुस्लिम मित्रों से कहूँ कि कुरान सतीक को खूदा का कलाम है, उसमें कहीं भी कद के मंस खाने का हुक्म नहीं है। (मीलना कानिल साहब)

हमें सर्व प्रथम यह जान लेना चाहिए कि गीनास मधन इस्लाम धर्म का अंग नहीं है। यदि कोई मुस्लिम गीनास न खखे तो इससे मुस्लिमानी की श्रेणी में नीचा नहीं हो जाता। (डा. मुहम्मद हाफिज सैयद)

गाय का दूध बदन की खूबसूरती और तन्दुरस्ती बढ़ाने का बड़ा बरिदा है। (इकतल मुहम्मद-बेगम इकतल अयशा से)

बिना कक कुकरी लिए चीपायों की सीखा है। उनके (गाय के) पेट की चीपायों में से गोबर और खून के बीच में से दूध, को पीने वाली के लिए स्याद कला है, हम तुम्हें पिलाते हैं। (कुरान सरीक)

हरिजन नहीं पूर्वोक्त अल्लख के पास कुर्बानियों के गोस्त और उनके खुर, असलत पूर्वुका है अल्लाह के पास, गुनारा उकन और परहेजगारी। (कुरान सरीक-सुर-ए-इब)

अच्छी तरह पाली हुई 10 गाँव 16 बर्षों में ने सिर्फ 450 गाँव और पैदा करती हैं, बलिक उनसे हजारों रुपये का दूध और खाद भी मिलता है। गाय दौलत की राती है। (इकतल मुहम्मद-मीलना फाकड़ा द्वारा संकलित बरकज और सरकात से)

गाय का दूध दवा है। इसके मखन में तिफा (तन्दुरस्ती) है और यस्त में बीमारी। (इमाम जफर साहब)

मुस्लिमानी की गैया नहीं मारनी चाहिए। ऐसा करना हदीस के खिलाफ है। (मीलना साहब खानखान-हाली समद साहब)

गाय को बुजुर्ग हरदाम किम करी क्वाकि यह नामा चीपायों की सरदार है। (तमसीर दर मसुद)

न तो कुरान और नही अरब की प्राणी गैया की कुर्बानी की इकावत देती है। (इकमी अवमल खान सैयद)

हरकत इमाम आबान अबु हनिकसे मोहम्मद पैगबर साहब के एकत्र किसे उकन को जिसे हदीस कहते हैं। क 474.48 में कहा है, बुद्ध, 'य्या यस्त यीत के सिक्क अल्लाहाला ने कोई भी बीमारी धरती पर उतारी नहीं है जिसके साथ दवा न उतारी हो। आप गाय का दूध पिने उसमें भी सर्व प्रकार के लय मिलते हैं।

1922 में मीलन अन्तुल हारी बरतुन निर्दिष्ट कदवी ने गीहवार पर कब प्रोक्कय सत्यनारा, उन महात्मा नहीं ने उनका बुद्धिअ अद किता था।

इस्लाम प्रक्कय मुहम्मद साहब ने कतापि गाय के बलिदान की बात कही नहीं और वर्तमान में भी मुस्लिमानी के पवित्र स्थान मक्का में गाय की हत्य नहीं होती।

सर सुलतान आबमदखान मुस्लिम लीग के संस्थापक प्रधान न एक बार दूधपूर्वक कहा था, 'गी की कुर्बानी के मुकाबले में हिन्दू की निराल अधिक मृत्युवान है। मुस्लिमानी के मामले में फिर पहले दब की मुवक्त है।'

मुलत बादशाह बहादुरशाह जफर : 1857 के स्वातंत्र्य आन्दोलन में अखण्ड भारत का नेतृत्व करते हुए अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर ने गीहवारो को तोप से उड़ाने का फरमान जारी किया था। यह निष्पक कर्तव्य के लीहारे पर भी लागू था।

अकबर के लखे जहाँगीर के विषय में ज़ैनु याही कानियर लिखते हैं, 'अपने विस्तृत राज्य में जहाँगीर ने गोवध बन्द कर दिया था। बहाली के दिन जाहान शाही बगिचे में 'गव तोप में और ईनाम पते से।'

मीलनी कुजुबदीन और बादशाह इंदरजली को कलियुगी निरुद कहा जाता था। उसके पास अन्तु मल्ल नाति के 60 हजार बैल थे। टीपु सुलतान स्वयं गीहवार की देशभक्त करता था।

इन निम्न निर्दिष्ट राजाओं और बुजुर्गों ने गीहवार पर प्रसिद्धय लगाया था।

मुगल बादशाह बहादुरशाह के खस पीर मीलनी कुजुबदीन साहब ने आदेश जारी किया था कि हरिम में कहा गया है कि गीहवार करने वालों को कर्षा क्षमा गाँव कावा चाहिए। इस आदेश (पसले) के नीचे निर्दिष्ट बुजुर्गों के हस्ताक्षर हैं। मसुद गान्जीशाह आलम बादशाह, सैयद दल उपलताखान फिदवी, पीर मीलनी कुजुबदीन, कबी मिर्था असगर हुसैन दलतखत खस वन्द मुन्नी इस्तीखान यदोग अलिखतखान इब्राहिमदुर

बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, मुहम्मदशाह अकबर जैसे साम्राट उपरिष्ठ अन्तुल गुरुक हुसैन, परदात सुबेदार, इकतलानी इकतल, अफगानिस्तान के शासकों ने समस्त अधिक उलेमा अहले सुन्ना के जयल (प्रसिद्ध) अनुमति के कल पर फतवाम फरमाया था। (क़मसः)

स्वामी श्रीधरानन्द बलिदान भवन राष्ट्रीय स्मारक घोषित करेंगे

स्वामी श्रीधरानन्द बलिदान भवन को राष्ट्रीय स्मारक घोषित करने की मांग को लेकर अर्थ मयवीदा बालम्बर राष्ट्रीय स्मारक घोषित करने की मांग को संघर्ष में उठाते हैं।

नई दिल्ली (रवि) : 11 अप्रैल, 1999 को केन्द्रीय अर्थ मयवीदा बालम्बर परिषद् के अध्यक्ष श्री अमिताभ अर्थ के नेतृत्व में तथा स्वामी जगदीशचरणानन्द जी की अध्यक्षता में नया मजदूर स्थित स्वामी श्रीधरानन्द बलिदान भवन को राष्ट्रीय स्मारक घोषित करने की मांग को लेकर रायचौधरी में प्रातः 9 से सांय 5 बजे तक विज्ञापन करना दिया गया।

करना को सम्बोधित करते हुए चौदही चौक संसद की विधायक नौगल ने कहा कि स्वामी श्रीधरानन्द जी का बलिदान यह देश हमेशा वर रहेगा। मेरे संसदीय क्षेत्र चौदही चौक के नया बाजार में स्वामी जी का बलिदान हुआ था। आज यह जगह उदाहृत है व विभिन्न दुकानें बन गयीं हैं। प्रधानमंत्री से हम यह मांग प्रस्तुत कर रहे हैं कि जहाँ स्वामी जी का बलिदान हुआ वहाँ उनका स्मारक बनाया जाये। यह मांगलाई में सभी भी उठाई।

स्वामी विष्णुनन्द जी सरस्वती, स्वामी वरुणवेश जी ने आर्थ समूह को सम्बोधित किया तथा आग्रह किया कि जब तक सरकार इसे राष्ट्रीय स्मारक घोषित नहीं करती तब तक हमने आन्दोलन जारी रहेगा।

पूर्व संसद आचार्य भगवन्तरे, पूर्व संसद श्री रामचन्द्र शिखर, पूर्व शिक्षाध्यक्ष श्री रवीशंकर आर्थ, सारस्वत मोहन नवीनी (राष्ट्रीय कागि), सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसी सिंह, श्रीमती सुकुन्ता

आर्थ (पूर्व महापौर) जी.ए.पी.डी. के नेतृत्व में रायचौधरी पल्लु, आचार्य डा. शिव कुमार शास्त्री, आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, आचार्य सुखदेव वर्मा, श्री राजेन्द्र वर्मा, श्री इन्द्रेण मलहोत्रा, आचार्य प्रेमपाल शास्त्री, श्रीमती चन्द्रकला राजपाल, श्रीमती प्रमोदिका, श्री अमिताभ कपूर जी द्वारा प्रकाश कलश, श्री के.डी. वर्मा, श्री सुखचर सिंह, डॉ. ओम प्रकाश वर्मा, श्री सोमनाथ कपूर, श्री सुन्दरलाल कालका, श्री रामदिशा, श्री आनन्द चौहान आदि ने करना में सम्मेलन दिए तथा उपस्थित अर्थ जनता को सम्बोधित किया।

इस अवसर पर सुदृढ़ से ही स्वतंत्रता सेनानी पं० आशानन्द भवनोपदेशक, श्री अशोक शास्त्री (महाविप्लव) पं० स्वामीवीरराज, पं० दिनेश दत्त आदि के ध्वनियों का सुन्दर कार्यक्रम प्रस्तुत रहा। वैदिक चौपाई मण्डली राम डींग, वल्लभाभा का सुन्दर चौपाई कार्यक्रम सभी ने पसंद किया तथा करने में नई जान डाल दी। इसका श्रेय श्रीहेराम अर्थ, श्रीहंसर सिंह अर्थ को जाता है।

कार्यक्रम का शुभारम्भ परिषद् के राष्ट्रीय महाप्रीति श्री महेन्द्र धाई जी ने यह करता कर किया। सांय 5 बजे बड़े जोर और उत्साह के साथ आरंभ कर ली तथा अपना संकेत देकर कहा कि बलिदान भवन को हम राष्ट्रीय स्मारक घोषित करके रहेंगे।

ध्वनीय सुधारक

श्री गुरु विरजानन्द स्मारक ट्रस्ट की वृत्त करतारपुर (जलपान) का नैतिक कृत्य

मजदूर ट्रस्टी मोहम्मद साहब

आपको विदित हो कि श्री गुरु विरजानन्द स्मारक ट्रस्ट करतारपुर की साधारण सभा की एक बैठक "श्री गुरु विरजानन्द स्मारक भवन" करतारपुर में 6 जून 1999, रविवार को बाद दोपहर 3 बजे रही गई है।

इस साधारण सभा में ट्रस्ट का वार्षिक (1999-2002) के लिए चुनाव तथा ट्रस्ट के 1998-99 के आर्थ-व्यय की प्रस्तुति मुख्य विचारणीय विषय होगी।

इस सभा में आपको उपस्थिति अति महत्वपूर्ण है। अतः आप सभा समय पर अवश्य पधारे की कृपा करें।

सिद्धि (क) 3 जुलाई-1999 की साधारण सभा के निर्णय के अनुसार प्रत्येक ट्रस्टी को चुनाव में पात्रता के लिए प्रतिस्पर्धी 100/- (एक सौ रुपये) इस्तीफा नवीनीकरण शुल्क देना आवश्यक है। तबतः यदि आपने अभी तक यह शुल्क जमा न कराया होगा तो कृपया 6 जून 1999 प्रातः 12 बजे तक अपना ट्रस्टीशिप नवीनीकरण शुल्क अक्षय जमा करें।

(ख) बैठक में सम्मिलित होते समय कृपया इस पर को अपने साथ अवश्य लायें जिससे शुल्क मिलान करने में सुविधा हो।

(ग) मौजद तथा आवास का प्रश्न ट्रस्ट की ओर से गुरुकुल में किया जाएगा। गुरुकुल मिलान मंत्री

सोनीपत में आर्थ वीराङ्गना प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

हिन्दू मंच सोनीपत के तत्समाधान में तयारी, कर्मनिष्ठ पूज्यपाद महात्मा जी महाराज की पुण्य स्मृति में गावडी महापौर एवम् आर्थ वीराङ्गना प्रशिक्षण शिविर दिनांक 12-4-1999 से 18-4-1999 (सोनीपत से रविवार) तक सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पूज्यपाद शंभू हंस स्वामी जगदीशचरणानन्द जी (ब्रह्म), बहादुरिणी सुमैया जी (बीदिकाध्यक्ष) वेद पण्डित महाराज वेद पिछु सेखास दिवली, प्रशिक्षक के रूप में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय ब.हरस की ब्रह्मचारिणीयों, स्वतंत्रता सेनानी लोपिन्द श्री अय्यनन्द अर्थ भवनोपदेशक, श्री पं० सीता राम आर्थ भवनोपदेशक, श्री अशिलेश्वर सार्मा (महाराष्ट्र), स्वामीच महापुत्र सखी जी अमरनाथ आर्थ, भाग सुन्दर आर्थ, श्री चन्द सेठी

बौद्धिकप्रशिक्षण प्रतियोगिता और वीर दल हारिणा, अज्ञान नन्द बन्धु, सर्व श्रीमती प्रविभा सुक्ता, सुनीता अरोड़ा, राज सनी, विपुली आर्थ आदि का मान्य एवम् आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

आर्थ वीराङ्गनाओं को सम्मत्ता बन्धु, योगदान, लाठी चलाने का प्रशिक्षण दिया गया तथा प्रमाण पत्र भी दिए गए।

इस महोत्सव के अन्तिम दिवस सुप्रसिद्ध योगपति श्री जगदेव जी हरीजा "प्रेमी" की अध्यक्षता में मुल्तानी (सिराज की) कवि सम्मेलन श्रद्धेय श्री हरिचन्द जी नाम सोनीपती के मार्ग दर्शन में आयोजित किया गया। जिसमें स्वामीच और पानीपत तथा दिल्ली के कविधर्मों ने जनता को आनन्दित किया। श्रद्धेय सार्मा का भाजोयन किया गया।

हरिचन्द सेठी "बीदिकाध्यक्ष"

आर्थ समाज बहिष्कार में पं० गुरुदास जन्म दिवस

आर्थ समाज बहिष्कार के प्रमाण पं० गुरुदास शिखरजी का जन्म दिवस आरम्भणीय आर्थिक की अक्षमता फैलकर अर्थ मयवीदा बालम्बर सौजन्यरी स्मृत की अध्यक्षता में बड़ी ब्रह्म से मनाया गया। हवन का पं० भवनीर जी साहू (हिरण) के ब्रह्मर्षि में हुआ। हवन यह के ब्रह्मण गुरु अशोक कुमार जी गुरुच च. मनीर सत्त जी कर्मा समर्पक रहे। इन्होंने आर्थ समाज को धन दी दिया। हवन ब्रह्मर्षिज

पं० धनीर जी ने अपने प्रवचन में मानव के जीवन पर गुरुदास दानन्द की छाप को विस्तार से बचा की उन्नीति कहा। गुरुदास को अपने शिक्षा पर कलत्र चालिए जिस प्रकार श्रद्धेय दानानन्द, स्वामी ब्रह्मण्ड पं० गुरुदास शिखरजी जी ने अपने शिष्यों पर किसी से समझाई नहीं किया। उन्नीति की कहा कि मानव को उन्नीति की ओर अक्षर सख चालिए।

आर्थ समाज के मान्य गुरुदास पं० सुनील कुमार जी साहू ने पं० गुरुदास जी के तपस्वी जीवन की अनेक भटनारं दुर्गा। पं० गुरुदास जी शिखरजी ने अपने जीवन में श्रद्धेय दानानन्द जी के रूप अक्षमता में दर्शन किए और गुरुदास जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि पं० जी आर्थ समाज के होकर ही रहे। इससे पूर्व पं० जी बहिष्कार थे। श्रद्धेय दानानन्द के दर्शन से पं० जी की नविकरता दूर हुई और कई ठे पारिवारिक पर आसक्ति को

विजय हुई। पं० जी का जीवन छोटा था परन्तु कार्य बड़ा ही सरलनीय था। हम उनके कहने मार्ग पर चलें। श्री विधायी जी मगला मन्त्री आर्थ समाज ने बंच का संयोजन सुधारक से किया। आज की सभा के अध्यक्ष आवाला जी ने इस कार्यक्रम में सम्मिलित सभी आर्थ जनों का बन्धन किया। शान्तिपठोपरान्त प्रसाद वितरण किया गया।

प्रेम भद्रिदास प्रमाण

कोषों में नहीं के अन्तर उलट
 कर दिया गया। अब केहराम का
 नाम तो इतनी देर हुई था इतनी
 लीने अपनी जमानत का यातना
 उठाने को, इतनी जमानत चाहिए।
 उन्होंने विपुल होकर काँपने
 लग्यो मर्दाने फाँसे का बाँध
 लगा। मुसीबत में कुछ जमाने में
 भीत पर अन्धधुंध की कानूनी
 दुकानें सुनने की केसरिया का
 मुख समझनी उसे चक्कर उठा
 और उलझन में मुसीबत को सा
 होकर अपने समक मर्दाने पहुच
 गये तथा वे मुसीबत प्रस्ताव होकर
 हलवा कर दिया। इस प्रकार
 मुसीबत को सुनने वाली को
 प्रिया गयी। फिर वह साधारण
 प्रकाश के लिए एक दमबास का
 पीछे के बाँध में मुसीबत अपने
 अन्तर से मुसीबत को रोकितवाना
 मोहन चलाता था। हाँ। अब
 कानूनी पुरस्कार को अन्तरान के
 साथ साथ सत्यार्थ प्रकाश का
 निर्विघ्न प्रकाश फैलने लगा
 एक रीतिवादी को प्रभाव पड़े।
 सत्यार्थ प्रकाश का अन्तर
 केवल प्रकाश है। मुसीबत को
 काँप कर रख कर मर्दाने मुद्रा में
 दिक्कत पड़ी। वे लीनी नहीं सुनकर
 दाद ठोके पाते पाते पहुच कर
 जमानत के अन्तर में चक्कर
 मारने के प्रयास में पहुच बैठते
 हैं। फिर कुछ निश्चय हुआ ?
 पूर्ण आत्मसन्तुष्टि में उतर
 दिया। मुसीबत के दिक्कत में
 एक तरफ़ दिक्कत है। जमानत में सत्य
 विचारों में उसे आँसू आने का
 समझना, वह सकता है। मुसीबत
 नहीं सुनकर उसके के लिये पर
 चक्कर उठाने में वह लीनी विचार
 मुसीबत के अन्तर में हलकीकर
 हो जाता है। इतने समय तक अपने
 समाज के सत्यार्थ में पहुचने का
 उदर सत्यार्थ में वे मर्दाने के
 होले उतर गये मर्दाने सत्य
 वह ठोके दाद पाये। सत्यार्थ
 को लोटे है। फिर जमानत में
 प्रकाश का एक एक अन्तर उलट
 गये मुसीबत में जीवों को बाँधना
 गया। सत्य सत्यार्थ इन्द्रमन्द दीक
 से दिक्कत का एक एक प्रकाश
 सत्यार्थ का सत्यार्थ प्रकाश
 देते होते हैं। जमानत सत्यार्थ प्रकाश
 फिर सत्यार्थ प्रकाश प्रकाश विचार
 अपने जमाने के अन्तरान सत्य
 का जल जल सत्यार्थ में प्रकाश
 हो गया।

सम्पादकीय...

दिसम्बर मस ओठे होई इयें काँ सगरीओ की बस अगनी अलम्बर हो जातो है। जिवमें मुझ रूप से अगर सगरीओ राम प्रसाद जी बिस्मिल का बलिदान परा आँसू आँसू और स्वामी ब्रह्मानन्द जी का बलिदान 23 दिसम्बर को हुआ था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महात्मा पंजाब के रहने वाले थे और उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती के दर्शन किए थे। स्वामी जी का पहला नाम मुन्नी राम था। इन्होंने जन्म 22 फरवरी सन् 1857 में जलन्धर के पास तल्लन ग्राम में श्री लाल नानक चंद जी के घर हुआ था। इनके पिता श्री नानक चंद जी ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुछ मात्र सहायक थे। इसलिए उन्हें पुलिस के उपवाधिकार प्राप्त थे। जब वह उच्च प्रदेश में सेवागत थे और जब वह बोरली में कोतवाल थे तो उस समय स्वामी दयानन्द जी को व्याख्यानों का प्रबन्ध करने के लिए सत्कार की तफ़्ती से उन्हें अज्ञात हुई थी। लाल नानक चंद जी स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों से बहुत प्रभावित हुए इसलिए उन्होंने अपने गिरिजक पुत्र मुन्नी राम को कहा कि एक ठोखरी काल महाकाली तन्मासी बोरली में पधारे हुए हैं। उनके व्याख्यान सुनने के लिए आप मेरे साथ चलें तो मुन्नी राम जी ने कुछ कि क्या वह अंग्रेजी जानते हैं। श्री नानक चंद जी ने कहा कि नहीं वह संस्कृत के एक बड़े मुल्ले हुए किन्तु मैं तो मुन्नी राम जी ने कहा कि फिर यदि वह अंग्रेजी नहीं जानते तो क्या उपदेश देते होंगे। परन्तु पिता जी के भार-कादर करने पर जब मुन्नी राम साथ स्थान पर गये जहाँ स्वामी जी के व्याख्यान हो रहे थे। मुन्नीराम वह देहा कर देग देग गया कि यहाँ काई बड़े-बड़े अंग्रेज और उपवाधिकारी स्वामी जी के व्याख्यान सुनने के लिए उपस्थित थे। इन व्याख्यानों की मुन्नी राम के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा। भवभ सुनने के परन्तु मुन्नी राम जी ने स्वामी दयानन्द जी को घरों में उपस्थित होकर अपनी सहायिका का सहायन करण कहा किन्तु स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया। मुन्नी राम जी ने ईश्वर की सहा पर स्वामी जी से काँ प्रेम किए और स्वामी जी ने बड़े प्रेम से उनका उदा दिया। कुछ प्रश्न करने के परन्तु मुन्नी राम जी अपनाक बोलते कि स्वामी जी अगर ने मेरी बुझाना तो बंद कर दी हैं परन्तु मेरे हृदय में अभी भी परमात्मा की सहा पर विस्वास नहीं हुआ। महर्षि बोले जब ईश्वर की कुछ होगी तो उस पर परमात्मा विस्वास हो जायगा। मुन्नी राम स्वामी जी से बिदा लेकर घर चले गए परन्तु उनके मन पर स्वामी जी के सन्देशों का सदा प्रभाव रहा।

वहाँ मुन्नी राम जी अगे चल कर महर्षि के अगन्त भक्त बनें और उन्होंने अपनी बकायत छोड़ कर अपना सारा जीवन अर्पण सग्नय को अर्पण कर दिया। प्रारम्भ में मुन्नी राम जी के जलन्धर और लाहौर दो काँ क्षेत्र रहे परन्तु जब उन्होंने गुरुकुल कोलाने का लाहौर में रहते हुए निश्चय किया तो उसके परन्तु 1902 में इम्फिर की पुन्य स्थली पर उन्होंने गुरुकुल कागरीओ की जगल में कोविधि का कर स्थापन कर दी और उसके परन्तु अपना सारा जीवन गुरुकुल को अर्पण कर दिया। वह मुन्नी राम से महात्मा मुन्नी राम को जाने लगे और कुछ समय के परन्तु वह सन्तान लेकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी के जम से सारे भाल बर्ष में प्रसिद्ध हो गए। सन्तान लेने के परन्तु वह गुरुकुल कागरीओ को सुनकर चले से चला रहे थे जब गुरुकुल का कार्य अच्छी प्रकार से चल रहा तो उन्होंने गुरुकुल का कार्य अन्य सहायिकों को सौंप कर प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया। उसके साथ ही उन्होंने मुद्रि के कार्य को भी आरम्भ कर दिया। वह चाहते थे कि जो हिन्दू मुसलमानों के सत्सन्कास में किसी सन्धय में अन्कर व लोच स्तलप में अन्कर मुसलमान बनें हैं उन सब को पुनः हिन्दू धर्म में वापिस लाय जाए। महर्षि दयानन्द सरस्वती की इन दो सपनों को उन्होंने अच्छी प्रकार से अपनाकर कि बर्षों के निधन के लिए गुरुकुल की स्थापन की जाए और जो इन्दो भाई हम से विमुक्त कर विधर्म का नर गये हैं उन्हें वापिस लाय जाए। इसके लिए वह उदा दिन प्रयास करते रहे। ज्यो-ज्यो मुद्रि के कार्य को ठेक किया तो इससे काँ यत्नही मुसलमान उनके विरोधी बन गए। स्वामी जी महात्मा हिन्दू और

मुसलमानों को एकता के सून में भी बाधन चाहते थे इसलिए वह उनके बीच में जाकर अपने धर्मपरदेश देते थे और उन्हें समझाते थे कि उनके बाध-दाश सही हिन्दू थे और अब वह भी पुनः हिन्दू धर्म में वापिस आ जाएं। इन्होंने की सन्धय में उनोंने मुसलमानों को बुद्ध बनें हिन्दू धर्म में प्रवेश कायया। समझदार मुसलमान स्वामी जी का बहुत सम्मान किया करते थे। इसी के परिणाम स्वरूप दिल्ली को जाया मस्जिद में स्वामी जी को धर्मपरदेश के लिए आमंत्रित किया गया था और वह पहले और अन्तिम हिन्दू थे जिन्होंने दिल्ली को जाया मस्जिद की मिम्बर से अपने विचार दिए थे।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने कुछ समय काग्रेस के साथ मिलकर भी कार्य किया। पञ्जाब में जलियावाला बाग के परन्तु एक खासोती थी का गार्ड भी और बहुत भय पैदा हो गया था। किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कोई अपनी आवाज उठा उनके। इस पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अनुत्तर में काग्रेस का एक अधिवेशन बुलाने का विम्वय अपने ऊपर लिया और उन्होंने अनुत्तर में वह अधिवेशन बुलाया और उस के स्वागतार्थ्य बने। काग्रेस के इतिहास में सर्वप्रथम स्वामी ब्रह्मानन्द जी महात्मा ने अपना प्राथम हिन्दी में पठा था। इसी प्रकार से 1919 में दिल्ली में भी वह अंग्रेज सरकार को और से काग्रेस की सभ्य और जुलूस बंद करने के आदेश हो गए थे तो उन समय स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने एक बहुत बड़े जुलूस का नेतृत्व किया था। दिल्ली के चन्दरी चौक में पटा घर की ओर आते हुए लोगों की भीड़ को जब अंग्रेज सैनिकों ने रोका और अपनी तोपों से हमला कर गौरी चलने लगे। चले थे कि स्वामी जी महात्मा अपनी कुर्ते के बदन जोल कर सीधे जन कर भीड़ को पीछे हुए निहलै ही आगे सैनिकों के सामने जा कर खड़े हो गए और कहा कि पहले गौरी मुझ पर चलते। किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह गौरी चलते। अंग्रेज अफसर ने इस सारी स्थिति को बय देहा तो उसके प्रतार से सैनिकों ने अपनी सगरीयें हुका लीं और जुलूस भरत मत्ता के नाँ लगाता हुआ आगे बढ गया। स्वामी जी महात्मा बहुत बच-बच कर काग्रेस के साथ मिल कर कार्य कर रहे थे परन्तु काग्रेस की मुसलमान पोषक नीति को देहा कर वह इससे दूर हट गए। उनकी यह भावना थी कि विजने भी मुसलमान हिन्दुओं में से बने हैं उन्हें पुनः हिन्दू बना लिया जाए तथा हिन्दू मुसलमानों में एकता स्थापित की जाए। वैसे कि मैंने पहले भी लिखा है कि काँ मुसलमान गेझों को वह स्वीकार नहीं था और वह समझते थे कि यदि स्वामी जी महात्मा इसी प्रकार कार्य करते तो बहुत ते मुसलमान हिन्दू हो जायेंगे इसलिए वह उनके कहुर मनु बन गए और उनकी मरने की धमकीयें दी जाने लगी।

23 दिसम्बर 1926 को जब स्वामी जी गहराज कुछ विद्याम कर रहे थे क्योंकि निकले काँ दिनों से वह कुछ रुग्ण चले आ रहे थे। परन्तु अब कुछ स्वस्थ थे। इसी समय में अण्डुल रसौद नाम का एक मुसलमान मुद्रि का बहाना लेकर उनके साथ विचार विमर्श करने के लिए उनके पास गया। स्वामी जी के सेवक ने उन्हें उतर जाने से रोका परन्तु स्वामी जी ने उसको आवाज सुन ली थी और कहा कि इसे आने दो। वह स्वामी जी के पास जाकर बैठ गया और जब स्वामी जी को उसने अकेला पया तो उसने स्वामी जी की छाती पर सौरी गोलीया दाग दी और इससे स्वामी जी 23 दिसम्बर 1926 को सगरी हो गए।

इसलिए 23 दिसम्बर को स्वामी ब्रह्मानन्द जी का बलिदान दिवस है। हमें यह बड़ी श्रद्धा से मनन चाहिए और उन्हें अपनी ब्रह्मजलिया भेंट करती चाहिए। क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती के परन्तु सितना काय स्वामी ब्रह्मानन्द जी महात्मा ने किया सायद ही किसी और ने किया हो। इसलिए हम स्वामी जी के बलिदान को कभी नहीं भूल सकेंगे।

—अश्विनी कुमार शर्मा, इन्फोस्टेट

तथा गुरुमन्त्री

महान व्यक्तित्व के धनी स्वामी भ्रमरानन्द

ले. श्री दत्तकृत पत्रा और स्वामी भ्रमरानन्द

स्वामी भ्रमरानन्द की महाराज एक महान व्यक्तित्व के धनी थे। उनके जीवन को पढ़ने से पता चलता है कि वह एक सर्वांगीण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। जैसे तो उनके जीवन का मूल्यकम करना कोई साधारण बात नहीं है परन्तु देश के यह महानेताओं ने उन्हें का भ्रमरानन्दिता घेत की भी उन्हें एककर अनुमान लगाया जा सकता था कि वह किसे महान थे। आर्य समाज के नेताओं न तो उनके शहीद होने पर उन्हें अपनी भ्रमरानन्दिता घेत की ही ही लेकिन देश के दूसरे नेताओं ने भी बहुत कुछ लिखा था। लेकिन स्वामी भ्रमरानन्द का महाराज केवल आर्य समाज के नेता ही नहीं थे वह एक राष्ट्रपति नेता भी थे यही कारण था कि उनके बलिदान के बाद देश के बहुत से बड़े बड़े नेताओं ने उनके सम्मान में बहुत कुछ लिखा था विनये भारत का प्रथम प्रधानमन्त्री प चव्वाहारा लाल नेहरू राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद डा मुखर्जी आरम्भ अन्तर्गत सरदार वल्लभ भाई पटेल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी श्री मदन मोहन मालवीय काकिन्द रिचिन्द ठाकुर देव मैकडानल्ड श्री सी एफ एचडीएस सरोजिन नाथद लाहा हरदयाल पुरुषोत्तम दास टंडन विनयक दामोदर सावरकर विनय कुमार सरकार चक्रवर्ती विनय राधाचाराय काक सावरकर और इस प्रकार के बहुत सारे नेता लोग हैं जिन्होंने स्वामी भ्रमरानन्द की प्रति अपना उद्गार प्रकट किए हैं। किन्तु ने उन्हें मृत्यु आति का महान पुनर्निर्माण बताया किन्तु न निम्न घर सेनापति बताया किन्तु न दलितों का उद्धारक बताया किन्तु न बारात और बलिदान की मूर्ति बताया। किसी ने निम्नका का पुत्र बताया किन्तु न प्राणी मात्र का प्रेमा बताया किन्तु ने राष्ट्र निर्माता किन्तु ने चरित्र निर्माता किन्तु न सामाजिक और धार्मिक उद्धारक बताया। बहुत से नेताओं ने स्वामी भ्रमरानन्द का के जीवन का वर्णन किया है।

स्वामी भ्रमरानन्द जी महाराज का भ्रमरानन्द भेट करने वाले हमारे 'न' न पुत्र नाभौ न उनके व्यक्तित्व पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। हमने

देश के नेताओं ने तो उनके बारे में बहुत कुछ लिखा ही है लेकिन भ्रमरानन्द के मृत्युपर्व यानी श्री देव मैकडानल्ड जो एक बार मुम्बई को देखने के लिए भी आए थे और स्वामी जी के पास ठहरे थे वहां से व्यक्ति लौटने पर उन्होंने स्वामी जी के विषय में अपने उद्गार प्रकट करवा दिए लिखा था

चरमान काल का कोई कलकार यदि पायाव ईसा की मूर्ति बनाने के लिए कोई जीवित मानस चाहे तो मैं इस मृत्यु मूर्ति (स्वामी भ्रमरानन्द) की ओर इशारा करूंगा। यदि कोई मध्यकालीन चित्रकार सेंट पीटर के चित्र के लिए मृत्यु मांगे तो मैं उसे उस मूर्ति के दर्शन करने की प्रेरणा करूंगा। श्री देव मैकडानल्ड एक ईसाई थे इसलिए उनके उन व्यक्ति की बात आई किने यह ईसाई मत ने सबसे उच्च समझते थे ईसाई भी ने ईसा मसीह से बड़ा कोई नहीं है और न ही हो सकता है इसलिए देव मैकडानल्ड स्वामी भ्रमरानन्द जी महाराज को ईसा मसीह के समान समझते थे और इसी प्रकार अपने एक महान पुरुष सेंट पीटर को भी उन्होंने अपने तुलना की। इस प्रकार स्वामी भ्रमरानन्द जी महाराज के चरित्र से यदि हम मूल्यकम करने लगे तो यह निर्णय लेना कठिन हो जाता है कि वह क्या थे? आज बहुत कम व्यक्ति मिलेंगे जिन्होंने स्वामी भ्रमरानन्द जी महाराज के दर्शन किए हो क्योंकि आज से 69 साल पूर्व 23 दिसम्बर 1926 को यह हमारे से देश के लिए विद्य हो गए थे। इस समय उन्का साक्षा तो कोई विल्ला ही मिलेगा लेकिन मुम्बई कागरी हरिद्वार के उनके कुछ शिष्य कुछ जगह ऐसे आज भी विद्यमान हैं जिन्होंने उनके घरों में बैठकर विद्या ग्रहण की थी और वही उनके जीवन का वास्तविक मूल्यकम कर सकते हैं।

मैं स्वामी भ्रमरानन्द जी महाराज के प्रति अपनी भ्रमर के पुत्र भेट करते हुए यही कहना चाहता हू कि वह एक महान व्यक्तित्व के धनी थे और उन्होंने जो अदर्श का प्रमाण किया है उसका फलन करते हुए ही हम उन्हें अपनी भ्रमरानन्दिता भेट कर सकते हैं।

19 दिसम्बर को दिसम्बर बलिदान है

अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल



आर्य समाज ने देश जाति और समाज के लिए जो कार्य किया है सापद ही वह किसी और समाज ने किया हो। आर्य परधाने इसी हस्ते फासी के फन्दे को चुन गए। रामप्रसाद बिस्मिल भी उन परधाने ने ले एक हैं। यह एक कट्टर आर्य समाजी थे। फासी की काल कोठरी में बैठे उन्होंने को अपनी आत्म कथा लिखी है उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि वह उन्होंने पिता ने उनको का कि आर्य समाज छोड़ दो या मत छोड़ दो। इस पर उन्होंने पर को ठकाल छोड़ दिया परन्तु आर्य समाज को नहीं छोड़ा। सत्तापर्य प्रकाश पड़ने से वह आर्य समाजी बने थे और जीवन भर आर्य समाज के होकर रहे। वह निर्भीक और निडर तथा साहसी नयनुकम थे मृत्यु उनके लिए एक साधारण सा खेल था। फासी की सजा होने के बावजूद भी वह निडर होकर अपनी आत्म कथा लिखते रहे। उनको मृत्यु का कोई गम नहीं था। वह मृत्यु को मात्र बोला बदलना समझते थे। वह खेल थे भी प्रत्यक्ष पत्र रहते थे।

यह सब प्रेमी थे प्रमाण के तौर पर अब भी उनका हवन कुछ मुम्बई इन्टर के संग्राहलय में रखा हुआ है। फासी से पूर्व भी उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा में यह करने की अनुमति मांगी थी। वह वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए फासी के तख्ते को चुन गए। उन्हें यदि कोई चिन्ता भी हो देश की आजादी की थी। न उनके देश को विनाश की और न ही किसी और प्रकार की। देश की आजादी के लिए उन्होंने जो कार्य किए हैं वह स्वर्ण अक्षरों में अंकित हैं। उनका जीवन

एक प्रकाश स्थान है। नयनुकमों के लिए उन्होंने जो समर्पण दिया है वह प्रत्येक रूप में प्रभावित किया जा चुका है। समाज की यह मान्य सन्देह है वह चाहते थे कि भारत का प्रत्येक युवक उन्हें की तरह ब्रह्मचर्य का फलन करने के बलवान बलिदान और देश प्रसन्न बने।

उन्होंने किसी बेकसूर और निरपराध व्यक्ति पर कभी गोली नहीं चलाई। उनका निशाना जो केवल आर्य थे। फासी की हकीमी ने भी उन्होंने लोगों को धिलावा पिलावा कर काया कोई भी व्यक्ति नाही से नीचे न उतरे इस किसी भी फासी को कुछ न करेगा। हमने तो केवल इतिहास के लिए सकारात्मक सजाना सूचना है। यह आश्चर्यजनक फैसला नहीं चाहते थे हा अरब के कानो तक यह बात बरक पड़ना चाहते थे कि यह भारत छोड़ कर बने जा और भारत को स्वतंत्र कर दे अन्त्ये उने गोली का निशान बना दिया जाएगा।

उन्होंने जो कुछ किया देश की आजादी के लिए किया। यह देश भक्ति का पाठ उन्होंने आर्य समाज से पढ़ा था। उनके अन्तर बलिदान के बाद देश अकाद हुआ परन्तु आज फिर देश की आजादी को खराब पेश हो गया है यह अकाद इन सहोदरों की धरोहर है। क्या अब का युवक इन सहोदरों से प्रेरणा लेकर देश की आजादी की रक्षा के लिए आगे नहीं आएगा? आज कुछ स्वामी लोग देश के फिर दुकाने कर देना चाहते हैं। क्या देश भाग खुले इसे चुपचाप सहन करते रहेंगे जो कुछ अब कागमरन और दूसरे स्थान पर हो रहा है पाकिस्तान ने अभी अभी कारगिल में घुसपैठ करके जम्मु काश्मीर के एक हिस्से को भारत से अलग कर का प्रयास किया जो भारत की सेना ने विफल कर दिया। अनन्यो सहोदरों के बलिदानों से प्राप हुई इस आजादी की रक्षा करना प्रत्येक जीवनन का कर्तव्य है।

क्या आर्यकाल है? फिर भारत को सरदार भगत सिंह जैसे राष्ट्रवादी बिस्मिल जैसे चरित्र के अकाद जैसे जीवनानों को जो इस प्राप हुई अकादी का रक्षा कर चुके और देश द्रोहिणों को जो मर तोड़ उतर रहे हके।

—धर्मवीर, सह सम्पादन

साक्षी है दिल्ली का घण्टाघर चौक

डि० पुष्पा मङ्गलम, जेठव्हीड, मुल्लानपुर

साक्षी है
दिल्ली का चौक घण्टाघर
इर्द-गिर्द खड़ी बिल्डिंगे
जहाँ होते हुए भी
संक्षेप नयन रखने वाली
आ रहा है जब प्रकाश बृहन्न
उमड़ते सागर सा
लहरजते बावेल सा
ललकारता
पुकारता
बोल स्वामी भ्रद्धानन्द की
जब।
हिन्दु मुस्लिम सिख ईसाई
एक ही स्वर
एक ही लम्ब
मुक्ति विदेशी शासन से
अत्याचार के विरुद्ध
एक आवाज
एक पुकार
यह शासन जोरों जुलूस का
नहीं चलेगा
नहीं चलेगा
भारत के दिल ने
स्वामी गुरु
गुरु बरती और आसमान।
नगर सारा मरगाहन
शासन का आसन डोल उठा
इक बचा होगा ?
जन का आक्रोश बड़ा निर्भय
सह ज्वार महासागर का है
विस्फोट महा पर्वत का है।
साक्षी है
दिल्ली का चौक घण्टाघर
जन समूह का नेतृत्व
कर रहा कौन ?
यह सौर यशस्वी योगी सा
है महत काय और अन्य बाल

गगन प्रकाश हो आस्कर सा
सह तहम उठे यह खप देख
कैसा अनुपम कह दिख तप
जैसे सभागत विद्यालय हो
यह मुद्रता का सकार मिलत
किताब कर्मल किताब कठोर
प्रत्यक्ष बिम्ब हो
आस्था का
यबराथा शासन का प्रहरी
कम्पित उत्तरी कावा सिंहरी
भावी का नयानक तप देख
गोरवा प्रहरी हो गया
स्ताम्ब
सीसी कर दी बन्दूक उबार
सब के दिल बह बह बह
बठक उठे
व सबके बाजू फडक उठे
देखा निर्भीक सम्पत्ती ने
मुख पर उमरा रसितन विरह
तानी नगी छती
संभार कठ उठा गर शार्पूत
मुद्रु का ऐसा अभिनयन ?
आ र प रह गया स्तम्ब काल
भावी भी काप उठी कुछ क्षण
यह मृगज नहीं यह मुद्रुज्जय
धुंग युग तक होगा
अमर अक्षय।
यह देश क्षण
यह जति बन्ध
जितने ऐसे मानव अक्षय
किर गुल उठा इक कलक सा
जगता फिर से हुकार उठी
सुदु दिशि से गुपी
एक ध्वनि
बोल स्वामी भ्रद्धानन्द की जब
साक्षी है
दिल्ली का चौक घण्टाघर

बलिदान

स्वप्रिया-चन्द्राणी बल्लभमङ्गलम सत्यवती, बिल्ली
कर गए प्राणी का बलिदान स्वामी भ्रद्धानन्द सम्पत्ती।

सर्विस दिसम्बर अक्षय।

मनु ने जार चलाना।

भारती भर गई लहू तुहान स्वामी भ्रद्धानन्द सम्पत्ती ॥ १ ॥

सीने पर गोली खाई।

निज उन की शेट खाई ॥

दे गए जन हित अपनी जान स्वामी भ्रद्धानन्द सम्पत्ती ॥ २ ॥

तुझि की रीति चलवाई।

भारत की जान बचाई ॥

आगी आँकियों की सजान स्वामी भ्रद्धानन्द सम्पत्ती ॥ ३ ॥

मुनकुल खोल दिखाया।

समता का पाठ पढ़ाया ॥

जग से मिटा दिया अज्ञान स्वामी भ्रद्धानन्द सम्पत्ती ॥ ४ ॥

स्वामी भ्रद्धानन्द वीर बलिदान

ले० श्री साधुदास 'पथिक' अमरसर

स्वामी भ्रद्धानन्द वीर बलिदान। ओ तेरे तो जमाना सदके।

बैठी दिल बिच तेरी कुबानी ओ तेरे तो जमाना सदके ॥

मिले जो बरेली बिच अधि दयानन्द सी।

मिट गईया सका सब मुह होया बन्द सी।

आई सोचा ते बिचारी च रवानी।

ओ तेरे तो जमाना सदके

स्वामी भ्रद्धानन्द

जगसा उजडा बिच मुनकुल खोल के।

मिक्षा गवाची होई लभ लह टटोल के।

माटी मोड के तू सम्पत्ता पुरानी।

ओ तेरे तो जमाना सदके

स्वामी भ्रद्धानन्द

सच दीया राहया उठे पैर तू बधया सी।

गोलिया दे अगे सीना तान के बन्धया सी।

मोटे अखर च लिखी ए कहानी।

ओ तेरे तो जमाना सदके

स्वामी भ्रद्धानन्द

मजहबी दीवाना इक गोलिया चला गया।

पथिक हकीदा बिच ना तेरा आ गया।

वारी देख उठो सारी जिनदगानी।

ओ तेरे तो जमाना सदके

स्वामी भ्रद्धानन्द

(पृष्ठ 1 का शेष)

हिन्दू धर्म को स्वामि का विष्णु
हो गए भाईयो को फिर से शुद्ध
करके हिन्दू बनाने को लिए महात्मा
जी जो शुद्ध आन्दोलन चला रहे
थे उस समय उनका रुढ़ होकर
उनको अनेक धमकी भरे पत्र भेजे
गए। अनेक लोगों ने महात्मा जी से
कहा कि आप अपनी जान जोखिम
में डाल कर क्यों इस आन्दोलन में
पड़े हैं? तब महात्मा जी ने कहा
क्या हुआ जो धमकी भरे पत्र
आते हैं? जब परमात्मा मेरे साथ है
उनका क्या हस्त मरी पीठ पर है
जब उसका वेद जान मेरा साथ है
जब ईश्वर पर मेरा दृढ़ विश्वास
है जब मेरा पक्ष साथ है तो मुझ
किसका भय? तुझे किसकी चिन्ता?
सारा सत्कार भी मेरे विरुद्ध हो जाए
तो भी मैं वैदिक प्रचार से पीछे
नहीं हटूंगा। ऐसे दृढ़ निश्चयों से
हमारे स्वामी भ्रद्धानन्द जी।

23 दिसम्बर का प्रतिवध हम
उनका बलिदान दिवस मनाकर आए
भ्रद्धानन्दि देकर अपन कर्त्तव्य का
इतिहास समझें 'तब ह' हम सबका
बैठकर यह भी विचार करना चाहिए
कि स्वामी भ्रद्धानन्द स्वामी भ्रद्धानन्द
की पवित्र सेवा पर खड़ा होकर क्या
हम स्वयं उनके आदर्शों के अनुग्राह
चला पा रहे हैं? अगर नहीं।
क्यों? कहा क्या है हमारा परिव्र
मे हम स्वयं आभिरक्षित कर्मान
चाहिए
भाईयो अगर हम बीमर से
भा इस विषय पर विचार कर
ओर अपना आप का सुजग कर
अधि क बचाए हए हम का
अनुसरण कर से तब 23 दिसम्बर
का स्वामी भ्रद्धानन्द दिवस
मानना उनका आत्म का सग
भ्रद्धानन्ति दया होना

कलेण्डर शीघ्र भगवाए

नव वर्ष 2000 के कलेण्डर छप चुके हैं इस नए नए
महापुरुषों के कलेण्डर मंगलार्थे दो शीघ्र जति शीघ्र मन्त्रा लें
नवम् 2000 काख्ये प्रति बिक्रय है।

-अरविनी कुमार शर्मा एडवोकेट (सम महामान)

लुधियाना में मासत्री महायज्ञ

सत्री आय समाज महर्षि दयानन्द आचार लुधियाना में विश्व साहित्य पापत्रा महायज्ञ प्रतिबंध को भांगित समारोह पूर्वक किया गया।

23 दिसम्बर प्रातः 5.30 अर्ध समाज स प्रभात केरा निकाली गई जिसमें बहुत से पंडित ब्रह्मणे ने धारा लिखा ब्रह्मि के जयकस्तो को गुजारी हुए गली बाजागे य होते हुए गीत गात हुए दयवज आर्ष का कर बजवा नगर य ठहरा जलपान सातग के बाद जनकगानी अथा य सब भाई बहने का धन्यवाद किया। इस काय मे आर्ष समाज के सत्री भाईयो का भी सहयोग रहा।

24 नवम्बर दोपहर 2 बजे ब्रह्म श्रद्धापूर्वक शुरू हुआ स्वामी जगदीशचरणन्द का द्वारा सुनील कुमार सुद प्रभा जी सुद से यज्ञांगि प्रणवलिप्त कराई गई। प्रतिदिन 4 कुको पर 16 बजमान बकी श्रद्धा स अष्टुतिगा छालो रे 108 अष्टुति गावरा का होती रही। स्वामी जी न गावरी का महिमा का वर्णन करते हुए कहा ओंकर सन्द जैसा कोई दूसरा प्रभु का ना। "ग्री है य मह एक वचन य बहुवचन न पुतिन न स्त्रीगिण बहुर ही सुदिरा स भू भुव स्व का अर्ष सत् भित् आनन्द विचार को समझाया और इमे अपन उन्मथन कैस सुद करना चाहिए यह बताया और कहा कि प्रभु को समर्पण का भावना रख कर यद करना चाहिए सभा न मुक्ककन्द से स्वामी जा क उपदेश को सराहा। ब्रह्मण सुमानयिनी के संरक्षण मे सब कार्य बसल उन्कोन भी सनुष जीवन का अमुपगत पर बल दिया और कहा प्रभु की जगती ही अमरा है हम उता क नीव रहना चाहिए।

कुमारी नम्रता जी ने बडे ही मधुर भजन सुनाए जिसमे प्रभु का नाम न हो को गीत गाने के काबिल नहीं है यह गीत बजाते ने सन मुप होकर सुना। श्रीगौरी राजेश जी के भी भजन होते रहे। उत्कट इच्छा हो मान ने परस्पर पाना मुश्किल नहीं है। आर्ष स्त्रीगण सैकेपडरी स्कूल की बालवयो ने भी ब्रह्मि भक्ति का गीत गाया। जिनोवपुर से प्यारे श्री विभव जी आनन्द ने ब्रह्मि का

बहुप ही सुन्दर भजन सुनाया उन्कोन कहा कि ब्रह्मि ब्रह्मणे के बकील बन कर आए उन्की बकीलत आब स्कूलों में जाता का नाम भी लिखा जाने लग गयाओ पर ब्रह्मि ने बहुत कृपा की उन्के ऊपे से ऊच स्थान प्राप्त है। रात को तीन दिन लगातार करते मे भी सतसग का आयोचन किया गया स्वामी जी के अगमन को बुरे हुए वचनो से परितो मे बहुत श्रद्धा बकी।

समापन समारोह महिला समेलन मे भारी सल्ला मे भाईयो व बहने ने पाग लिखा इस समेलन की अध्यक्ष माननीय बहान याधुरी योगमति अमुकसर से पवारी की। यत्र महिमा पर प्रकाश छालते हुए स्वामी जी ने बडे सुन्दर हय से पूर्णहुति छलवाई। वचमनो को फल तथा फूलो से अश्लीषीद दिया। श्री विभव अनन्द न नम्रता जी सोने के पनक हुए। तत्पश्चात् आर्ष स्त्रीगण सैकेपडरी स्कूल की बालवयो को सम्मानित किया गया इन बालवयो ने सत्पार्ष प्रकाश की स्त्रीका से नारतकर्व मे प्रयन तथा स्त्रीगण स्थान प्राप्त किया प्रभम छालीय सुदर हासिल दूतरे स्थान पर रजनी बाल सत्पार्ष विहारद ने दूतरे स्थान पर खीं। इनकी प्रत्यक्ष श्रीमती कन्या सुरी जी व रजनी को माननीय प्रधाना जी स्वामी सुमानयिनी जी स्वामी जगदीशचरणन्द जी तथा राजेश जी ने सत्री अर्ष समाज की ओर से टाफिमा प्रदान की। छालिनी से भाल भित् गुवा याधुरी जी ने इनकी बहुत प्रसादा की। जनकगानी आर्षा ने कहा कि इनकी जन्मदिनाका भी सम्मान के योग है सय उन्के भी सम्मानित करना चाहोगे। सब का बचाई दी।

अन मे समादरणीय अम्पक्षा जी का बडा ही सारगर्भित प्रवचन हुआ। जिसमे उन्कोने माताओ को कुलीनो से अलगत करपा तथा बहयो के निर्माण पर बल दिया हम सुधनेन बाग सुधनेन कछते हुए महिलाओ का बहुत ही सुचारु हय से मार्ग दर्शन किया और कहा कि हमे मिल कर अगे बचना है। अर्ष समाज के प्रधान श्री सचवाल चन्द जी व मन्त्री श्री जल्ल प्रकाश जी व श्री सुरेज जी सास्वी का पूरा सहयोग रहा। अष्ट मे जनकगानी

आजो सगलठ की अपबायें

हमनिश-पयारी कनकपानक जी सल्लवरी, मिलरी आजो सगलठ की अपबायें।

दूर अवेरु कर्ने किनो कय वेब सल्ल के बीप जल्लाये आजो सगलठ की अपबायें।

वय एर्ष सुकर्म कयारे रुठे सल्लो बेय कयारे रुठे।

वोप अखियाही ईस्वर कय सल्ल गम कयारे रुठे।

पासलडे में फसे हुए नही गड प्रीण्ड की भोग सल्लो।

आजो सगलठ की अपबायें॥१॥

स्यार्चनयी भीतिस्त्रा अल्लर सल्लो शय मल्लये रुठे।

सुगनीनि में दूर पडे कुम्भी मय के तल्लाय रुठे।

बेल पूट कर बडी प्यार की कली कली नुसल्लये।

आजो सगलठ की अपबायें॥२॥

अभिनय में दूर छुट और बलमणी घर-घर आडी

दिस्कर की भरपूर हो रुठे नखिसल्ला रे रुठे अलज्जी

ठोरी है किन राग यडा आन लूट छायो

आजो सगलठ की अपबायें॥३॥

सुखसल्ल सुल्ला घोर बडो कयारे है गडल घोटल्ला।

किन किनल अब सुल्ल रुठे है जय में सयबाय की प्यल्ला।

यडा सल्लपानक कयारे कडे किन्डे किन्डे सेनल्लायें

आजो सगलठ की अपबायें ॥४॥

महर्षि दयानन्द पुणे प्रवचन 12वां स्मृति समारोह

महर्षि दयानन्द सारस्वती जी महाराज स १८७५ मे पुणे मे न्यायपूर्वित रान्दे के निमग्न पर पवारे मे यहा उनके डेड महीने तक व्याख्यान हुए व्याख्यानो के सम्पन्न पर 5 दिसम्बर 1875 के स्वामी जी महाराज की भव्य शोभा यात्रा निकाली गई थी जिसमे हजारो पुणेवासी सहभागी हुए थे।

इस ऐतिहासिक पुणे प्रवचन की स्मृति में पुणे की समस्त आर्ष समाजो की ओर से पण्य स्मृति समारोह मनाया जा रहा है। इसके अन्तर्गत दिवस 23 से 26 दिसम्बर 1999 तक विशेष समारोह का

आयोजन किया जा रहा है जिसमे भव्य शोभा यात्रा एवं 3 दिन तक चलने वाले इस समारोह के सलग अलग सभी मे राष्ट्र की बार्मिक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओ के समाधान को लेकर विशेष समेलनो का आयोजन किया गया है इस कार्यक्रम मे आर्ष काय के महान विद्वान् उपलब्धक भजनेपरदेसक एवं आर्ष नेताओ को निमन्त्रित किया गया है। आर्ष बन्धु अधिक से अधिक सल्ला में पयार कर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाए।

-कृष्ण कन्न आर्ष

आर्ष ने सभी भाईयो का कार्य मे सहयोग देने वाली बर्णों का आर्ष हुई सभी बहने का हार्दिक अन्वयाद किया। माननीय प्रधाना इन्द्रा जी तमर् ने बन्धु की का सब आदृ हुए अतिथिओं का आगत प्रकट किया तथा धन्यवाद किया। प्रकट विचारन भी अच्छा याधुरी

जी ने सुन्दर हय से करपा को बहुत सल्ल रहा। इस चड पर आदरणीय बहान सुधर्षा जी कालका भी पवारी को कि अधिक समाज सेविका है सब बहने भाईयो का पुन धन्यवाद करते हुए बन्धु जी ने प्रभु का धन्यवाद किया।-जनकगानी आर्षा, मन्त्री

आर्य समाज के अथक सेवक श्री पूज्य ओमप्रकाश जी वानप्रस्थी

ले. श्री प्रेम मिश्रा जी स्वयं उप प्रधान (व्यक्तिगत)

आर्य समाज के अथक सेवक श्री ओमप्रकाश वानप्रस्थी जी का जन्म 10 मार्च/मई 1974 क्रिस्ती मृत्युशुद्ध 1917 ई में उपजायवी विंध्य प्रदेश (पन्ना) में हुआ उनके पिता जी का नाम महाशय रैनाक सिंह ठाकुर मठा का नाम श्रीमती सती देवी का पद ठस पुन जी कात है जो आप समाज का स्वयं पुन काइलसक है 8 वर्ष की आयु में श्री ओमप्रकाश का नाम मुचकन चस्माकर स्वामी चम्पकानन्दजी द्वारा हुआ तथा 4 वर्ष की आयु में ही महाशय रैनाक सिंह का जी अग्रह से वे प्रीतिरूप अथक सेवक मन्दिर में झाड़ू लगने वाले थे चइलसक में अमल मिलसक पोषक लगान तथा परकाइ जना सम्पत्ति में समीपस्थ होय हुअवी दिनपत्ता का मुकुल आग था

सन् 1931 ई में हुअवी डलू मिश्रा पास किया तथा अर्य समाज के महाग सन्तानी स्वामी स्वयानन्द ना का उचिपत्त प्राप्त किया उनका प्रेरण से अमल कीलसक या आप कुमन सया का स्थापना का सन् 1938-39 में आप स्वयंसाध ईदवसाद के

लिए रैनाकी आर्यम डलू किराई आपके पूज्य पिताजी श्री रैनाक सिंह जी की मायापन सुहासल चर की के काने में शामिल होकर बनी जाने और मुकुलजी केला से रहे स्वापी जलत मान्य सरस्वती की के आदिसगुलर आप केला से बाहर लसे हुए आप नमदी की कल उस समय एक कौटी ती गयदी की समय समीप लेकर आपने रूडिना से लक्षिक बन और पद सत्सदा के लिए मेक प्रत्येक लक्षिक को एक-एक कुलन पर चक्र आपने ईदवसाद सत्सदा के लिए स्वायत्त कुलन अथ मिलाए पर चक्र चक्र एक एक मुनी आद इमडल करवी भी सन् 1949 ई में आपने सत्सक की ओर से स्वामी स्वयानन्द अथक चर स्कुल कुल किया था ओम प्रकाश की उस स्कुल के कर्ष वर्य एक प्रत्यक्ष बन रहे और 1955 ई में स्वामी स्वयानन्द की का निधन होने पर आपने उनकी याद में अर्य कलसेक बनवने की प्रीति की और 1956 में कलसेक चालू हो गया जो का में बद हो गया

सन् 1978 ई से लेकर अपनी मृत्यु पश्चात पूज्य वानप्रस्थी जी लगभग 21 वर्ष तक अक्टू 17 नवम्बर सन् 1999 तक इस दुस्कुल में रहे इसी दौरान आपने इस क्षेत्र को अपना प्रकाश केन्द्र बनकर अर्य समाज का प्रचार प्रसार किया जिसमें बठिण्डा तार के अतिरिक्त डबलसी सारणीय हनुमान गढ़ चरलसकली पत्तिविना रामायण की बुधलादा बरैदा चालसक वलसकना गोविन्दा गिदबसाहा के क्षेत्र शामिल हैं

समाज में फैली दुष्टता को रोकने के लिए आप समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा चलाए गए अधिपान की आप अपनी अनिमित्त सत्सक सहाये रहे

पूज्य ओम प्रकाश जी वानप्रस्थी का जीवन एक आदर्श जीवन रहा जिससे प्रेरणा लेकर अनेक लोगो में अपने जीवन को वैध जीवन बन लिया और अर्य जब पूज्य वानप्रस्थी का हमारे साथ में नहीं हैं उनका याद हम सब के दिलो में समा हुआ है

पूज्य वानप्रस्थी की को सेवा का बहुत ही बड़ा का व लक्ष्य अपनी कार्य में कुलन कुलन लिखते रहते थे 21 वर्ष के वानप्रस्थी बालक में आपने काइ छोटी छोटी दुस्कुल का लिखी लिपि हम सब व पया हो गए रिशकप्रद रोकन कलाए (रो भान) बिल हिलसक आन समाज कलसगुन नहीं कर पुन आदि प्रभुन हैं

जालसक जालसकी सोनी हैं परन्तु एकल मान्य का ही है की मानमान के लिए अनपन जीवन अधिप कर देता है और जीवन को आदर्श बनकर स्वय को नगरसक का अधिकारी बना लेता है यह सब है कि पूज्य वानप्रस्थी का आन हमारी बीच में नहीं रहे परन्तु उनका याद उनके सत्य चक्को के रूप में अर्य का हमारे दिलो में समा हुआ है और हमें यह महसूस होत है कि वानप्रस्थी को अर्य का हमारी मध्य में हैं आज हम सभी अर्य बना का कायम बनत है कि हम उनके वैध स्वागामी और उच्च जीवन चर्य जिससे कि अधि दयानन्द द्वारा देखे गए स्वामी का हम का कलसक का का फल पुन कल में अनिमित्त सत्सक एक कुटे रहे

जरी इमडली सत्सक इमडलका सोग कि हम पुन वानप्रस्थी का सेवा स्वागामी और सत्सक जीवन की

सन् 1957 के हिन्दी सत्सदाय की पूर पन्ना में कौर कौर से चल रहा था आपने सब सब कर भगु लिया तथा बन्दी बनकर परिवारा केला भी गई। श्री ओमप्रकाश जी अथ अधि दयानन्द के पूर भगुनी और सत्सक इस्तर भक्त थे अर्य सत्सक का आप निमितीत रूप से स्वक्याप करते थे सन् 1960 ई अर्यस सदा में अपने वैकुण्ठ गाय लक्ष्मणी चम्को (दयानन्द सत्सक) में होकर की बनकर गाय से 2 मोल दूर छोले में आप एक नसक ल रहे और महा पर पातम्बलिय योग प्रयोग (श्री लोचनन्द की का गाय) प्रया और गायत्री गाय का अर्य सत्सक निमन प्रकृति रहे चालस में आप एक बोगी प्रकृति के ज्यति है

पूज्य श्री ओमप्रकाश जी वानप्रस्थी एक सत्सक और स्वागामी ज्यति थे वू तो उनका पूरा जीवन अर्य सत्सक के रग में रहा हुआ का परन्तु आप में कुछ विशेषताएं देखा भी की प्राय देखने में नहीं आता अर्य सत्सक रागमणकी के आप 20 वर्ष से ठगर भनी रहे और प्रतिनिधि सत्सक रहे उस समय आप सत्सक की मुकुल गतिविधिना इस प्रकार था

1 अर्य समाज में चलने की सुबक की मनादि आप स्वयक करते थे

2 क्रिस्ती आन पर्व पर प्रचार केले का प्रोग्राम आप एक दिन पहले सत्सको चलते और प्रार 4 बज सत्सक उठते थे

3 मन्वा का पद रखे हुए आप सत्सक का कान का करते रहे इन सभी कार्यो में आपका पूज्य पिताका महाशय रैनाक सिंह का का पूज्य प्रेरणा होवी थी जो आपके प्रेरण के मुकुल कोले थे आपका विपु पत्ति प्रससनीय और अनुकरणीय था पूज्य पिताको का निधन स कुट्ट दिना पुन जब आपका आयु 46 वर्ष का था आपके पूज्य पिताजी ने अदरेर दिया कि 60 वर्ष का आयु का कर 6 व वर्ष में आपने पर गइसक को काइसक वानप्रस्थी जीवन ज्यति करप है और पुन पन्ना अर्य समाज का प्रचार प्रसार करन है

आपने अपने सब पिता का इस अनिमित्त इका को पुन करन के लिए उनका मुकुल के 5 वर्ष परकाइ सन् 1978 में आपने गृहस्थाश्रम बिसने आपका वो पुन व पुत्रिया है को पुन कलसे अपना पत्न्य श्रावत परमसदा देवा का के साथ वानप्रस्थाश्रम का श्रमन किया और एक समय पर बर को कोइकर गुरुकुल बठिण्डा में वानप्रस्थाश्रम का गला लेकर रहन लसे और हम से आप आनप्रकाश का वानप्रस्था के रूप में विद्वान हुए

गुरुकुल

डबल धमाका



मुफ्त

पेट्र जार

२० बत्ती (एक पैकेट)

गुरुकुल धूप

केवल 9 पैकेट पैकेट के साथ

ओकर स्टॉक रहने तक

निर्माता गुरुकुल काण्डी फार्मसी, हरिद्वार, यूपी

ओ३म सगच्छच्च सवदध्य स वो यन्नासि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे स जानाना उपासते॥
(हम सभी प्रेम से मिलकर क्यों तथा सभी हमकी क्यों सब
अपने पूर्वजों की भाँति कर्तव्यों का पालन करें)



अमर हुतात्मा स्वामी श्रीरामानन्द जी महाराज
समारोह



जिला आर्य सभा लुधियाना

के तत्वावधान में

रविवार, 26 दिसम्बर, 1999 को प्रातः 9-30 बजे से 1-30 बजे तक

आर्य कालेज (मुख्य परिसर) सिविल लाईन्स, लुधियाना में मनाया जा रहा है।

अध्यक्ष	मानवर श्री प हरबस लाल जी शर्मा	प्रधान आर्य प्रतिनिधि तथा पञ्चाय
मुख्य अतिथि	श्री अरविनी कुमार जी शर्मा एडवोकेट	महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि तथा पञ्चाय
शिष्ट अतिथि	श्री सुनील जी तलवार (सिटी केबल)	
आमन्त्रित विद्वान	पुज्य स्वामी सम्पूर्णानन्द जी सरस्वती (करमल)	स्वामी तुलनावर्ति जी (लुधियाना)
संगीतज्ञ	श्री विजय आनन्द जी (किरोजपुर)	कुमारी नम्रता सोनी एवं आर्य कालेज की छात्राएँ



11 कुम्भीव्रत	प्रातः 9-30 से 10-30 बजे तक
पूर्णाहुति एवं अन्नर्वाह	10-30 से 11-00 बजे तक
उद्योति प्रज्ज्वलित	11-00 बजे द्वारा श्री सुनील जी तलवार
भजन एवं संगीत	11-10 से 12-00 बजे तक
प्रवचन	12-00 से 1-30 बजे तक
ज्ञानि लघु	1-30 बजे (खेपर बाग)

आप सभी परिवार एवं इष्ट मित्रों सहित सम्मिलित होकर धर्म लाभ उठावें तथा
समारोह की शोभा बढ़ावें।

निवेदक	राजेश शर्मा (प्रधान)	विजय सरनी (महामन्त्री)	रणबीर भाटिया (कोषाध्यक्ष)
सहयोगी	समस्त आर्य समाजे, सभी आर्य समाजे एवं शिक्षण संस्थाएँ जिला लुधियाना।		
सौजन्य	श्री एन एस भेल्ला, ग्रीन पार्क, लुधियाना।		

जिला आर्य सभा लुधियाना

स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक का अभिनन्दन समारोह में वानप्रस्थ साधक का शिलान्यास

ड. के. के. पारसीदास सहाय वरिष्ठ उपन्यास

पूण्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक का इस समय आर्य समाज के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान है। वह इस समय रोहता (सागरपुर) जिला समरकस्त (गुजरात) में आर्य धर्म विकास परिसर में बड़े एक दर्शन योग महाविद्यालय चला रहे हैं जिसमें दर्शन श्रमजी के ज्ञान के साथ साथ योग साधना भी शिक्षा दी जाती है। इस बार वहां 15 से 21 नवम्बर 1999 तक स्वामी सत्यपति जी के अभिनन्दन समारोह का तथा वानप्रस्थ साधक आश्रम के शिलान्यास का कार्यक्रम रखा हुआ था। इस अवसर पर एक सार्थक शिबिर का आयोजन भी किया गया था। प्रभु भा इसाक निम्बनकर प्रमिला बा। सेरी धर्मपत्नी श्रमजी प्रेम पत्नीजी की वह इसका इच्छा थी कि इस बार हम इस साधना शिबिर में अवसर प्राप्त हो। इससे पूर्व भी स्वामी जी के द्वारा लगभग एक दर्जन शिबिरों में हमने भाग लिया था। इसलिए मैं अपनी धर्मपत्नी सहित 13.11.99 को वास्तव्य से चल कर 15.11.99 को अहमदाबाद पहुँचा। वहाँ से यह स्वामि 70 की फीसरीट है। इससे आगे जाने के लिए सारा प्रयास आश्रम का और से किया था गया। इस साप्ताहिक तक आश्रम में पहुँच गए।

स्वामी सत्यपति का परिव्राजक छ दर्शन शरीरों के इस समय सब से चम्पकाल के विद्युत् हैं। मीमांसा शास्त्र भी उन्होंने श्री सुधिचिन्तन जी मीमांसक से विधिपूर्वक पढ़ा है। इसका भी उनके द्वारा ज्ञान है। अन्य दर्शन शास्त्रों के विद्वान् मिला करते हैं परन्तु मीमांसा शास्त्र के बहुत कम विद्वान् मिलते हैं। जो विधिवत् इसे पढ़ा सकें। आ स्वामी सत्यपति जी उनमें से एक हैं।

स्वाम्या का का जन्म रोहताक जिला के फरमाना (महम) ग्राम में हुआ था। 1947 में इसका सारा परिवार मीमांसक से विधिपूर्वक पढ़ाई के प्रवेश हुआ। इसका बचपन नाम से साधारण लोगों का तरह बीता। बाल्यावस्था में इसे पढ़ाई का कोई आसक्त नहीं मिला। हस्तरोपस्था और वैद्यक का ध्यान इन में बचपन से था। 19 वर्ष की अवस्था में इन्होंने मोगों से पूछ पूछ कर अन्ध ज्ञान प्राप्त किया। इन्हें विधिपूर्वक रूप से इस समय तक किसी भी पत्रावस्था

होना। इसका बचपन आचार्य ब्रह्मेश्वर जी ने दिया। कोठरी स्वामी गाराच चरण छत्र ब्रह्मेश्वर ने इस समारोह का दीप प्रज्ज्वलित कर के ज्वलित किया। सुधिचिन्तन से पहले भी सत्यपति जी मुकुल गलिक हीरो सार्धमिलन से स्वामी सत्यपति जी का अभिनन्दन पत्र पठा। इस समय भी मैं पहले सत्यपति जी प्रमुख रूप से पूण्य स्वामी सार्धमिलनकी स्वामी कर्मानन्द जी स्वामी कर्मानन्दजी की स्वामी सुनेकानन्द जी तथा आचार्य बलदेव जी वैदिक आचार्य देवव्रत मीमांसक अर्थार्थ देवव्रत जी दिल्ली प्रो. कर्मानन्द अमेरिका का सोमदेव मुकुल तथा अन्य बहुत से विद्वान् सन्तानी वहाँ पहले हुए थे।

साधना की दृष्टि से हमारी यात्रा बड़ी सफल रही। वहाँ 15.11.99 से 20.11.99 तक को साधना शिबिर चलता रहा उसमें दिनचर्या बहुत अच्छी थी। प्रातः चार बजे उठना शीघ्र स्नानादि के परम्परा 5.15 पर आसन प्राणायाम करण 6 बजे स्वामी सत्यपति जी का किष्कम्भ योग पर प्रवचन होना 7 बजे यज्ञ योर्गोपन प्रातः पूजा फिर दर्शन की कमाने आरम्भ हो जाना। दोपहर सांके 12 बजे भोजन डेढ़ बजे विश्राम उसके परवाह फिर अभ्यसन रात्रि भोजन भोजन के बाद भ्रमण के समय भूतसे भूतसे ताकड़ स्वीकर द्वारा स्तोत्रों का समुह गान वेद मनो का पठ बहुत रोचक लगता था। लौग परिधि में भूगर्भ करते थे और स्तोत्रों तथा मन्यों का पठ करते जाते थे। उसके परवाह फिर प्रवचन होना सांके 9

बजे रात्रि में से चान और प्रातः चाल चार बजे फिर चार चान। यह एक बहुत ही रोचक प्रक्रिया था दिनचर्या। इस शिबिर का मुख्य उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति के साधन बताना था। विश्वको सत्यपति शिबिर में ने अच्छी प्रश्न से इस विषयमें सचे हो जाना। स्वामी जी स्वामी ही स्वामी और उपस्था महागुरुधर्म हैं और बहुत चम्पकाल के विद्वान् हैं। इन्होंने ब्रह्मचर्य से सीधे सम्पन्न आश्रम में प्रवेश किया है। इसलिए भी इनकी महत्ता है। योग साधना द्वारा और समग्री के द्वारा स्वामी जी ने ईश्वर साक्षात्कार का जो अनुभव प्राप्त किया हुआ है उसके सम्पन्न में दमनने अपने अनुभव और सारी महागुरुधर्मों को बता कर पकड़ कर दिया।

उत्तम शिष्य बहुत हैं परन्तु आ ब्रह्मेश्वर जी और श्री शिष्यों की आ सतीरि जी की विद्वता तथा जीवन शैली ने इसे बहुत प्रभावित किया और ऐसा मन फलता था कि इस ईश्वर प्राप्त ही कैसे सम्भव करते रहे और साथ ही प्राप्त कर हमने बहुत कुछ प्राप्त किया है। हमारी यात्रा बहुत ही लाभकारी रही। शिबिर व समारोह की समाप्ति पर 22.11.99 का हम पूर्व निश्चित गैरीकल कार्गिस से कोची चले गए और उसके परवाह कई वैश्वसिक स्थानों को देखने के परवाह इन 5 दिसम्बर को जलन्धर जूह गये। मैं स्वामी सत्यपति जी का धन्यवाद है कि उन्होंने हमें इस समारोह में सामीप्य होने का अवसर दिया।

आर्य समाज अन्धेरी का वार्षिकोत्सव

आर्य समाज मन्दिर अन्धेरी (पश्चिम) 120 आराम गंगर सात बागल मुम्बई 40061 के वार्षिक समारोह में आयोजित करते हुए इन प्रसन्नता को रही है। आप आर्य समाज के कर्मों में हमारे सदा सहायक हैं आपका सहयोग हमारे लिए अनूय है।

आर्य समाज से उदात्त की लोभा हो कहेगी ही साध ही मुम्बई महानगर के इस ज्वर सीधन में से कुछ समय साधने परतपथ महापथ तथा विद्वानों के प्रवचन उपदेश एवं पवित्र सगीर का आनन्द भी प्राप्त होगा अन्धेरीकल उन्धेरी के इस महापथ में आका ग भूले। कार्याक्रम 23.12.99 से 26.12.99 रविवार तक चलेगा। इस अवसर पर श्री स्वामी मेकानन्द जी श्री लोकार गाय जी आचार्य अश्वमेधेश्वर जी आचार्य श्री वागीश जी श्री प इत्यस लास ही सार्ध प्रमाण अत्र चना पञ्चाभ आचार्य नन्दिका शार्वी (वागीशजी) तथा श्री देवरात मीमांसी क्राप्ति अर्थात् श्री मेरत जी चम्पकाल कला अन्य कई विद्वान् पधार रहे हैं।

—ज्ञानेश्वर

21.11.99 को समारोह का आरम्भ दर्शन योग महाविद्यालय के ब्रह्मचर्यियों द्वारा गाय गप सकृद गीत से हुआ। जिसमें परम्परा से बुद्धि की प्रार्थना की गई। इसके पश्चात् यजुर्वेद के मनो का पठ

इतिहास

ले. श्री. लक्ष्मी देवी विद्यालय, लक्ष्मी देवी, लक्ष्मी देवी (200)

सन् 1975 ई० में कुछ एकात्मिक इतिहासकारों ने कहा महाभारत हुआ ही नहीं महाभारत हुआ तो वा किन्तु उपासना से पहले। न बहा कभी गांधीजी रहा न विष्णु। यह बोल करतल देकर अपनी भारतीय इतिहास विषयक अज्ञानता का परिचय दिया था। उस समय हमने "रामायण" महाभारत और लक्ष्मी "रामायण एक इतिहास है कपोल कल्पना नहीं" गांधीजी भी था और विष्णु की रामायण पहले महाभारत बाद में "यह भार लेख विभिन्न समाचार पत्रों में लिखे थे। उनके दैनिक अनेक साप्ताहिक और अनेक मासिक पत्रों में हमारे यह लेख प्रकाशित हुए थे। इतिहास किसे कहते हैं ? इन पत्रिकों में हम इस विषय पर लिखने लगे हैं।

मैकाले की योजना की शिक्षा से शिक्षित कलहने वाले इन एकात्मिक इतिहासकों को यह पता है कि मैकाले ने यह शिक्षा योजना इस्वीलिय भारत में प्रवेशित कराई थी कि इससे शिक्षित होकर भारतीय केवल रक्त रंग और नाम से भ्रष्टाचार रह जाए किन्तु आधार विचार से एकदम अमरातीय तथा अंग्रेजी सभ्यता के पुस्तक बन जाए। यह ज्ञान भा उसी पद्धति को कार्यन्वित करने के लिए अंग्रेजी द्वारा तैयार किए गए कल्पित मिथ्या इतिहास की स्थापना के पचास वर्ष बाद जाने पर अब भी प्रमान मानते रहना बुद्धिमानी नहीं करी या समझी। खैर की बात तो यह है कि विदेशियों और उनका अन्तर्मुखक करने वाले भारतीय लेखकों के लेखों से इधर उधर इतरकर छाव करवा तो एक ओर रहा यह लोग सामान्य तर्कों से वा काल लेने की वैसा नहीं। उन तर्कों से भी जो इनके अपने विचारों मान्यताओं और धारणाओं के विषय में उत्पन्न होते हैं। कभी से उत्पन्न होने पर उन तर्कोंपुत्रक प्रत्येक के मुक्तिमुद्रा तथा प्रजापिक उत्तर दृष्टि ही अनुसरण करतला है जो व्यक्ति इस प्रकार को अनुसरण के लिए तैयार न हा। यह साप्ताहिक को कदापि नहा

सकता और विषय धारणिकर नहा जाने इतिहासविषय होना का तथ्य

रक्तान पितामह जोखला दम्य था है। ऐसे व्यक्तिओं द्वारा इतिहास विषयक वस्तुत्व देना अस्माधिकार प्रयत्न तथा जाति को दिग्भ्रान्त करने का प्रय है।

उन दिनों जब इन एकात्मिक इतिहासकारों के पक्षस्थ भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो रहे थे तब अनेक स्वामीय "रामायण और महाभारत ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं अथवा नहीं इस विषय पर गोपिधया और सम्मेलन आयोजित किए गए। परन्तु इन गोपिधियों और सम्मेलनों के आयोजकों के मन मस्तिष्क पर भी मैकाले की योजना की शिक्षा का ही प्रभाव है परिणाम स्वरूप यही पी एच डी और इतिहास के कलेज के प्रवक्ता ही कुछत्र जारे रहे। यह वैचारिक क्या कहते ? या तो यह पक्ष लेते प्रमाणपत्रे द्वारा प्रविष्टित भारतीय इतिहास विषयक ग्रन्थियों का और या अपने अजीबोंकी की धारणाओं की और ध्यान देते हो यह कह देते कि 'अभी भारतीय इतिहास पर और खोज की आवश्यकता है। इस विचार में और कथिक जानकारी किए बिना कुछ कहना उचित नहीं।' इस का अर्थ हुआ कि "कुछ राई खोज भी तैयार भी तैयार न हो।"

यह सामान्य बात है। जब किसी विषय की जानकारी न हो तब किसी भी पक्ष और यह भी विवेकपूर्ण कार्यक्रम के अजीबोंकी को रूप करवा अभिप्रेत न हो तो इस प्रकार का निर्णय अथवा यन्त्रालय देना उपयोगी रहता है। वैसे इस प्रकार के वक्तव्य से एक ही परिणाम निकलता है कि अजीबोंक निरर्थक और विफल रहा। चाहे यह मन में विरोधी और कष्टपूर्ण भावना रखते हुए अजीबोंकी से कुछ न बनने के लिए ऐसा वक्तव्य दिया गया हो अथवा अपनी अज्ञानता और अजीबोंकी की छिपने के लिए।

इन अजीबोंकी में भारतीय इतिहास की जानकारी रखने वालों को नहीं गुलामा गया। गुलाम तो एक और रक्त-उन लोगों से सम्पर्क कर पाद जानने का प्रयास भी नहीं

किया गया कि इस विषय पर अत्र कोई जानकारी दे सकेंगे क्या? अथवा इस विषय में अप कुछ कहने की इच्छा रखते हैं क्या ?

भारतीय इतिहास को योरोपीय लोगों ने विशिष्टकर मिष्टेन मिस्त्रियों ने कभी विकृत किया ? इस विषय के इतिहास विषयक सुप्रसिद्ध अनुसन्धानकर्ता तथा 'भाषा का इतिहास' वैदिक वाङ्मय का इतिहास और भारतवर्ष का बृहद् इतिहास आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों के रचयिता स्वर्णवी श्री पण्डित भगवद्दत्त श्री के विचार पाठकों की जानकारी के लिए हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं तथा इसके पश्चात् इतिहास किसे कहते हैं ? एतादिविक प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

"एच डिट्टे केयर मैक्समूल मैकडाननरु कीय और ऐस्सत आदि शास्त्रालय लेखकों को यह भ्रान्त भव था कि यदि एक बार भी आर्य इतिहास सत्य स्वीकृत हो गया तो तैरित जकुर और इस्वीली का मत को यहाँमान चटुरी और ईसाईयो ने सम्मर रखा है-संसार से उठ जाएंगे। संसार वेदों की ओर झुकेंगा भारतीय गीत परकाश को प्राप्त होगा और संसार भारत का अभूतपूर्व मान करने लगेगा। मनु आदि ऋषि संवीर माने जायेंगे कथित आसुरी और पम्पशिरत आदि साधु प्रवक्ता हिरण्यर्ष आदि योगवक्ता कलह इन्द्र विष्णु भारत चक्रवर्ती मानताया वैद्व्य अर्जुन जापदम्य राम दाशरथि राम और पाद अर्जुन आदि अति महारथ महामोक्षपति वर्तमान ऐतिहासिकों के हृदय में उज्ज्वलतरा प्राय करेंगे। संसार का आदित्य पुरुष श्री कृष्ण जिसके परमात्मा उससे शरावा दिव्य गुण रखने वाला एक भी पुरुष आज तक इस भूल पर नहीं बन्या-संसार का हृदय सम्राट होगा अन इन वर्ण और अंग्रेज आदि लेखकों ने इतिहास पुराण का महा निरादर किया। वैदिक ग्रन्थों से वे साक्षात् रूप से परे नहीं हट सकेंगे पर उन्हें अधिकार मिथ्या कल्पना के कहकर उन्होंने प्रे कैंक दिया और इतिहास आदि को उन्होंने वैदिक ग्रन्थों से विपरीत बना कर अंगीकृत करतला है।

श्री पण्डित भगवद्दत्त कृष्ण धारद्विकर का बृहद् इतिहास इन विचारों को व्यक्त करने वाले

स्वामनधर्म श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने भारतीय इतिहास विषयक अपनी खोज प्रस्तुत करते हुए योचना की है कि 'यूरोप के लेखकों को ज्ञान हो बना चाहिए कि उनकी कल्पनाएं अथ भारत में मान्य नहीं होती। उनके शिष्य बनकर भारतीय विद्वानों ने पटना होगा और अपने उज्ज्वलतरा तथा कल्पित भाषा मतो को तर्कयुक्त बनाना होगा। उन्हे ईसाई पश्चात छोड़कर जय की अलगना करनी होगी।

इतिहास किसे कहते हैं ? इस विषय को पाठकगण नीच का पत्रिकों में पढ़े और तब निरर्थक करें कि यह लोग किने इतिहासविषय हैं ? जो अबकल इतिहास को अधिकृत विद्वान् और प्रवक्ता होना का दम भरते हैं।

'हीरास पुरावृत्त ऋषिभिः परिकीर्तये। अचार्यं तोनक कृत बृहद्वेदा 446। इतिहास अर्थात् पुरावृत्त (पुराण वृत्त) ऋषिषो द्वारा (वर्णित) है।

'इतिहासोदितिय कथ यत् स इतिहास आचार्यं कृत विद्वान् भाष्यवृत्ति 210। निरर्थक पूर्वक ऐसा हुआ था ऐसा जो कहा जाता है। यह इतिहास है।

'इतिहास पुरावृत्त अमरकोष नामलित गुणालम् 18॥ इतिहास प्राचीन गुणाल को कहते हैं।

'हीरुद परकीर्तयेऽन्यथा। इतिहास उन्मिनिहितास (आ सार्थकत कृत टीका सार्थक)

परम्परा से जो कहा जा रहा है कि ऐसा हुआ था वह अन्यत्र है अर्थात् उसमें परिवर्तन यात्र कुछ भी नहीं है इसलिए यह इतिहास है। इद मनु महाप्रास धर्मपुत्र महामय।

इतिहास पुरावृत्त शराणाथ महापरम्परा॥

महाभारत अनुसन्धान पूर्व इह रसोक्त को द्वितीय पलित ने इतिहास को पुरावृत्त प्राचान वृत्तान करत गया है।

पुराण प्रविष्टे एवेतिहास हत्येक।

स च द्विधिया परकिता पुस्तकपन्थाम्।

परकिता पुराकल्प इतिहासविशिष्ट।

स्वोक्त नायका पूर्वा द्वितीय बहुरासका ॥ (उत्प्रेषण कृत काव्य नीमाया पुष्ट 3)

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सुस्तान्मुद लोधी में मायरी-यका का अन्वेषण

(पृष्ठ 5 का लेख)

सभी अर्थ समाज के लक्षणधन मे प्रतिपक्ष की भाति इस बर्ष भी अर्थ समाज सुस्तान्मुद लोधी मे अन्वेषण समाज महात्मा अन्वेषण मिथु की की उपयुक्त लोधी 8 दिसम्बर को लोधी है मे सत्य दिवसीय गणेश चक्र का शुभ अनुष्ठान किया गया प लालबिहारी की त्रिपटी पुरोहित के ब्रह्मत्व मे सम्पूर्ण गवसी यज्ञ व इसकी पूर्णहति तिथि 12 12 99 दिन रविवार को प्रातः 8 बजे से 11 बजे तक डारने गई। अर्थ समाज की गवर्निंग भव्य बाराहाला (बदमन्दिर) मे भरे जनसमुह का बीच यह कार्य सम्पन्न हुआ धर्म प्रेमी ब्रह्मालु भक्त्युक्त माताओं बहनों बुद्धी बल्लो सगरी ने इस पवित्र धर्म कार्य चक्र मे दुष्ट निरा भक्ति से बह बह कर हिस्सा लिया। उदारमाना जनमानस ने पवित्र मात्रा मे ज्ञान भागी आदि बह का सम्पूर्ण सत्त्वान तथा पूज सत्त्व प्रसाद विवरण हेतु दली मृत से बह हस्तुता व ताजे कल्ला फादि की विशेष व्यवस्था का जो सभी ब्रह्मालुओं मे ज्ञान दान मे आया अर्थ सत्त्व हेतु भव्य आवाज मे आटा दास व सब्जी आवाज दान रूप मे श्रीमाता विष्णु रात्री प्रभुकर की तरफ से भेट किया गया 'नकद राति भी इस पानन कृप' नेतृ प्रमुख सहमानो व सदस्यों ने स्त्री समाज को प्रदान का पूर्णाहुति वाले दिन बृहद यज्ञोपानन मयूर रत्ना मे श्री सागर चन्द उदकदात जा व सदस्या श्रीमती विवरण कावसा जो ने अपन अन्न भजन प्रस्तुत किए श्रीमाता सुनका हृदय उठ सत्त्वोपानन पुष्प बर्षा द्वारा सभा सगमनों को शुभाभाषण दिया गया उत्तरवार्त्ता प्रदान का बह आनन्द किशोरी परमारा का अन्वेषण मे महात्मा का ब्रह्मजाल भट करन वालो मे प्रमुख श्री द्वारका दास चावला की ने जो महात्मा का के अति निकट रहे है उनके जीवन चर विस्तृत प्रकाश सत्त्व। अपने विचारो मे चावला जी ने उनके एक सच्चे बेदानुभावा अर्थ भक्त व यज्ञ का भक्त बालाया उनके सदगुरु को उदागार कर श्रीमाता को प्रभावित किया और अपनी ब्रह्मजाली भेट की। बुद्धि महात्मा की की अर्थ समाज सुस्तान्मुद लोधी से विविध लगाव था और उनकी अपर कृपा

बहा के चक्र प्रेमी सगमनों पर भी अपने जीवन काल में उन्होंने बहा पर जीवंत बड़े बड़े सत्त्व व प्रेरित चक्र भी चलाया जो पूर्ण सत्त्वान रहे। सत्त्वानों मे बह से पूर्ण महात्मा की लोधी से बीड़ी रिपोर्ट सत्त्व व मास अन्वेषण व अन्य सत्त्वानों को ब्रह्मत्व मे का पूर्ण सत्त्व करवाकर फिर जनमानों से बह करवाते थे इस कारण सच्चे बेदानुभावी अर्थ दयानन्द के सत्त्व भक्त या अन्वेषण मिथु की महात्मा से सुस्तान्मुद लोधी के अर्थ सत्त्वान बहुत ही प्रभावित रहे हैं। बड़ी धूम धाम से उनकी बह मे प्रति वर्ष उनकी पुण्यस्मृति (तिथि) पर ब्रह्मजाली रूप मे बह गायत्री चक्र बहा रचाना जाता है। महात्मा की को ब्रह्मजालीय प्रदान करते उपरान्त प्रधान जी व सत्त्व का अन्य प्राधिकारियों की उपस्थिति मे यज्ञाशाला बेदमन्दिर के निर्माण पर हुए कार्य का सम्पूर्ण विस्तृत ब्यौरा (लेखा जोखा) श्री द्वारका दास चावला अध्यक्ष चिरिष्ट व अध्यक्ष उदकदात कमेटी व पञ्चकार प्रदान किया। विस्तृत ब्यौरा सुनकर सभी सदस्य व अन्य लोग प्रसन्न हुए। सत्य मे श्री चावला जी ने अपनी सत्त्व से व प्रधान जी का सत्त्व से इस चक्र मे सभी अनायुक्त अर्थ मादल झाई स्कूल का सत्त्व सत्त्व व शिक्षक वर्ग का धन्यवाद किया। पुरुष सभापति की सत्त्व से श्री चावला जी ने स्त्री अर्थ समाज की प्रधाना श्रीमती सत्त्व पसरीया व सन्धानी श्रीमति शानि दवी चावला जी का सत्त्व स्त्री समाज की अन्य सभी सदस्याओं व जिनके सत्त्वान से यह सत्त्व कार्य सम्पन्न हुआ उन सभी माताओं बहनों का हार्दिक धन्यवाद कर बहाली और प्रभु का धन्यवाद देकर सत्त्वान उद्गाह वर्धन किया। शानि पसरीया अर्थ सत्त्व मे सभी ने प्रीति भोज किया ब्रह्म अन्वेषण होकर बहस प्रसाद होकर अपने अपने घरों को प्रदान किया। बह। श्री रोचक व उद्गाहवर्धक कार्यक्रम था। सत्त्व सभा की पूर्ण सत्त्व व बह प्रदान कर ताकि सगमोद पूर्ण ऐसे कार्य ब्रह्म होये शक्ति इस सत्त्व इसी जीवन मे धर्म अर्थ बान और मोक्ष प्राप्त कर सके। जो पान्य जीवन का पान्य सत्त्व है।

—सात विचार विधानी पुरोहित

इतिहास की गति दो प्रकार की है। वे दो प्रकार परिष्कार और पुनर्गठन हैं। परिष्कार में एक गणक अन्वेषण प्रधान अन्वेषण होता है तथा पुनर्गठन में अन्वेषण प्रधान अन्वेषण होता है। प्रागुक्त धन चैकाराज कृत्यविधानः।

नमिन् स इतिहास इत्यत् पुनर्गठन व एव हि। (गुरुगीति सार 4 B 1102 1103। प्राचीन कथन विस्तार एक उक्त का कृत्य विधान है इतिहास ही है। अन्वेषण करने निश्चित प्राचीन वर्धन है।

पुराणम् इति च नाम्ना अन्वेषण उदहरणम् अन्वेषण अर्थसत्त्व चैति इतिहास। (अन्वेषण विष्णुपुराण कौटिल्य कृत अर्थसत्त्व स 5)

पुराण इति च नाम्ना अन्वेषण उदहरण धर्मसत्त्व अर्थसत्त्व मे छ इतिहास है।

अन्वेषण उदहरण हि इतिहास पुनर्गठनम्।

महाभारत शान्ति पर्व यहा भी उदहरण देते हैं। इस पुराण इतिहास को (इस उदहरण मे इतिहास और पुराण सत्त्व के साथ साथ उदहरण अन्वेषण उदहरण देते हैं भी बुद्धयुक्तता विचारणीय है।) वर्धन कायमोक्षाधुनामुदेर समनिसत्त्व।

पुराण कथा मुक्तामैतिहास प्रचक्षते।

(विष्णु पुराण की श्रीमत् स्यामी कृत टीका 1 14)

अन्वेषण बहुधाक्यान देवर्षि चरित्ता क्रमम्।

इतिहासमिति प्रोक्त भविष्यत् पुरुषर्षम्।

(गुरुगीति टीका 4 B 1102)

वर्धन अर्थ मान और मोक्ष को उदहरण से सम्पन्न तथा प्राचीन कथा से पुनर्गठन इतिहास कहा जाता है। अर्थ देव और अर्थों के अर्थ का अन्वेषण लिए हुए जो ब्रह्म मे अन्वेषण (वर्धन) है वह इतिहास है ऐसा कहा गया है कि वह भविष्य को अनुगत धर्म से पुनर्गठन करते हैं।

वर्धन पुनर्गठन। पुनर्गठन चाहे इतिहास इतिहास समुदाय। उदहरण प्रामाण्य वर्धन इतिहास इतिहास।

(हेम चन्द वीत कृत अन्वेषण विधानः)

पुराण कायमैतिहास। पुराण चाहे निश्चयपूर्ण इतिहास है। उदहरण प्रामाण्य से यह चली अली है अतः चाहे ही इस प्रकार की निश्चय चाहे मे होने स प्रतिष्ठ है।

इतिहास सत्त्वमैतिहासपुराण मुक्ता।

(सुष्टासत्र 31वीं सूची विक्रम) इतिहास सत्त्व से इतिहास पुराण प्रदान होता है।

प्रिय चक्राकर्ण को अन्वेषण इतिहास की इन परिभाषाओं व्याख्याओं और सत्त्वों स अन्वेषण है वह भारतीय इतिहास विषय के प्रामाणिक विद्वान् नहीं कहला सकते सत्त्व गेसे अन्वेषण द्वारा भारतीय इतिहास के विषय मे कुछ कहना कोई महत्त्व नहीं रखता। भारतीय विद्वान् इतिहास विषयक उद्गुण्ड विवेचन का पुष्टा हो। अन्वेषण विवेचन का बुद्धिमद विरोधगुण्ड किमधिक लेखन ?

वर्धन आर्य गर्लजी से स्कुल को एक और असफलता ब्रिटिशमैरिस्ट्रास की कैप्टेन नॉर्थिंग इतिहास की विस्तार सत्त्व प्रतिक्रिया से इस बार भी अर्थ ही से स्कूल ब्रिटिश की टीम मे दूसरा स्थान प्राप्त किया सत्त्व एक उद्गुण्ड सत्त्व रात्री दसवीं ने कैप्टेन कैप्टेन का स्थान प्राप्त किया।

इतिहास अन्वेषण ब्रिटिश के डाक्टरों ने होय नॉर्थिंग और फर्स्ट एड जी Theory व Practical की परीक्षा ली। छात्रागों ने ब्रिटिश विद्वान के ब्रिटिश कथिभक्त सत्त्व के करकमलों से इतिहास व मोरिटीय प्रार्थ करके अपने महात्मा व स्कूल का नाम छुड़ा दिया।

वर्धन अर्थ मान और मोक्ष को उदहरण से सम्पन्न तथा प्राचीन कथा से पुनर्गठन इतिहास कहा जाता है। अर्थ देव और अर्थों के अर्थ का अन्वेषण लिए हुए जो ब्रह्म मे अन्वेषण (वर्धन) है वह इतिहास है ऐसा कहा गया है कि वह भविष्य को अनुगत धर्म से पुनर्गठन करते हैं।

वर्धन पुनर्गठन। पुनर्गठन चाहे इतिहास इतिहास समुदाय। उदहरण प्रामाण्य वर्धन इतिहास इतिहास।

(हेम चन्द वीत कृत अन्वेषण विधानः)

पुराण कायमैतिहास। पुराण चाहे निश्चयपूर्ण इतिहास है। उदहरण प्रामाण्य वर्धन इतिहास इतिहास।

इतिहास सत्त्वमैतिहासपुराण मुक्ता।

(सुष्टासत्र 31वीं सूची विक्रम) इतिहास सत्त्व से इतिहास पुराण प्रदान होता है।

प्रिय चक्राकर्ण को अन्वेषण इतिहास की इन परिभाषाओं व्याख्याओं और सत्त्वों स अन्वेषण है वह भारतीय इतिहास विषय के प्रामाणिक विद्वान् नहीं कहला सकते सत्त्व गेसे अन्वेषण द्वारा भारतीय इतिहास के विषय मे कुछ कहना कोई महत्त्व नहीं रखता। भारतीय विद्वान् इतिहास विषयक उद्गुण्ड विवेचन का पुष्टा हो। अन्वेषण विवेचन का बुद्धिमद विरोधगुण्ड किमधिक लेखन ?

आर्य समाज वेद मन्दिर, भार्गव नगर, जालन्धर का वार्षिक चुनाव

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर, जालन्धर की संरक्षण समिति की बैठक 4 दिसम्बर 1999 को श्री सरदारी लाल जी अर्थ रत्न की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। विस्मय गप प्रचारिकाओं का चुनाव किया गया। जो निम्न प्रकार है।

संरक्षक :- बन्धू सरदारी लाल जी आर्य रत्न।

प्रतिष्ठित सदस्य :- मा० पूर्ण चन्द जी, बन्धू काली राम जी, श्री लाल चन्द जी।

प्रधान :- श्री कमल कितोर जी।

वरिष्ठ उपप्रधान :- पं० मनोहर लाल जी,
उप प्रधान :- श्री राम चन्द जी रत्न, श्री कर्म चन्द जी, श्री गंगलाल जी, श्री चमन लाल जी, श्रीमती नीर देवी।

मन्त्री :- श्री राम कुमार जी।

सहायक मन्त्री :- श्री लख चन्द जी।

उपमन्त्री :- पं० लाल राम जी, श्री विशम्भर लाल जी, श्रीमती सुषम रानी।

कोषाध्यक्ष :- श्री सुदीप्त कुमार रत्न।

उप कोषाध्यक्ष :- श्रीमती सत्य देवी।

प्रचार मन्त्री :- श्री सोमनथ जी, श्री अशोक कुमार जी, श्रीमती लक्ष्मी देवी जी।

पुस्तकालय :- श्री बागदोर भगत जी।

लेखा निरीक्षक :- श्री राम कुमार जी रत्न।

गंगा राम मिशन स्कूल प्रबन्धक :- पं० मनोहर लाल जी।

वित्तवादी स्कूल प्रबन्धक :- श्रीमती लक्ष्मी देवी।

स्टोर कीपर :- श्रीमती प्रसन्न देवी।

अधि सौगर कमेटी :- श्री अनीचन्द जी, श्री हरनरथ जी, श्री हरनरथ लाल जी।

(असहयोग सदस्य)

1. श्री श्रीमन घस जी, 2. श्री हनु रत्न जी (पिछल कले) 3. श्री लख चन्द जी गोत्र, 4. श्री बच लाल जी, 5. श्री प सरदारी लाल जी, 6. श्री ओम प्रकाश जी, 7. श्री पं० वेद प्रकाश जी, 8. श्री ज्ञान चन्द जी, 9. श्रीमती सीता देवी, 10. श्रीमती नीर देवी, 11. श्रीमती बन्धु देवी, 12. श्रीमती लाल देवी, 13. श्री रवि प्रकाश गोत्र, 14. श्री पं० दीपा चन्द जी, 15. श्री सुदीप्त कुमार।

अध्यक्ष सुषम रानी

प्रधान :- श्री सोमनथ जी।

मन्त्री :- श्री राम कुमार जी।

कोषाध्यक्ष :- श्री सुदीप्त कुमार जी।

-कमल कितोर प्रधान

सभी आर्यजनों को यह

बानकर प्रस्ताव होगी कि सार्वभौम

सदस्य को प्रमुखता में प्रस्तावित

करने के उद्देश्य को लेकर, श्रीमद

दयानन्द सार्वभौम प्रकाश न्याय,

उदयपुर के उल्लेखान्त में प्रतिवर्ष

आयोजित की जाने वाली निम्न

प्रतिपक्षिता इस वर्ष भी आयोजित

की जा रही है। इस प्रतिपक्षिता में

भाग लेने वाले प्रतिपक्षियों की

संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। पिछले

वर्षों में कुछ व्यापारमयी अवसरों

का कटव या कि वे सुविधि ही

नहीं हो पाए, अतएव इस बार

सूचना काफ़ी पहले प्रकाशित की

जा रही है, कृपया औपचारिक

सहयोग में भाग लें।

विषय :- "आश्रम व्यवस्था

में ही समाज का समग्र सुख

निहित है"

(सर्वाथ प्रकाश पंचम समुदाय

के अध्यक्ष पर)

पुरस्कार :- प्रथम 3100 रुपए,

द्वितीय 2100 रुपए, तृतीय 1500

रुपए एवं पांच साप्ताह्य पुरस्कार

प्रत्येक 100 रुपए (लेखिका वर्ग

में दो विभिन्न साप्ताह्य पुरस्कार)

1. प्रतिपक्षिता के विषय :-

प्रतिपक्षिता में किसी भी

अनुपूर्य के लक्ष्य प्राप्त हो

सकते हैं।

2. निम्न फुलस्केप कागज

के लगभग 15 पृष्ठों में हो। कागज

के एक ही तरफ सफ़ाई से टंकित

जय-जय भद्रात्मक महात्म

श्रीकृष्णजी के भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

विषय :- भक्तों के लिये, भक्तों के लिये, भक्तों के लिये

“स्वामी ब्रह्मचर्य सांस्कृतिक पर्यटन”

ले. १८. अन्वय अतिशय ही १८/ अर्थ अत्यन्तस्वच्छ अन्वय

स्वामी ब्रह्मचर्य का जन्म स 1923 क फाल्गुन कृष्ण 13 की 'गामनर' (पञ्जाब क उत्तमग्राम म हुआ आपके पिता जी का नाम गानक चन्द था जो अंग्रेजी राज्य में रत्नासलवार थे आपके पिता जी को बाद म पुलिस इन्स्पेक्टर बोली और फिर बनारस में कोर्ट इन्स्पेक्टर बनाया गया। यह बाल्यवस्था से हा शिव भक्त थे स्वामी ब्रह्मचर्य का जन्म का नाम मुन्ना राम था और 'म्योसिधा' न उनका नाम ब्रह्मचर्य रखा था।

बचपन से आपकी बुद्धि बहुत ही गहरी था गामनर का कथा तुनी जसई मुनकर आपको बहुत प्यार हा गया पिता सरकारा कर्मचारी थे बार बार बदली हो जाती थी इसलिए शुरू शुरू में आपका पढ़ाई में मन न लगा और कुछ हर तक लावारिष्ठ था हो गए आपके एक बार एक मन्दिर में जान से इसलिए रोका गया क्योंकि उस दिन वहा रागा न आना था और तसवाहा जान साधारण का मन्दिर में जान का अनुमति नहीं दे रहे थे मन्दिर के पिथन में रक्षणा को ग्वा कर स्वामी जा न ईसाई बनने का ठानी परन्तु जब एक पदारी का एक नर्स के साथ मुनिष्ठ दशा म दशा तो ईसाई बनने का विचार था छोड़ दिया। बचपन में एक नाग साधु ने एक अबला को फकड़ लिया उसे समान के लोभ में फसा कर वहा लाया गया था आपन उसका सतीत्य को रखा की इसा प्रकार दसहरे का पीछे से कुछ कुछ एक रवा का बीछे लग गए आपन उनकी मर्यादा से खुब मुस्तता का मनुष्य म एक चमत्कार का गायरा के पत्र स रखा का इसलिए आपको इदय में बीर बनना का धुन समर हा गई

स 1834 म जब आप कपल वन क व आपकी ताता हो गई आप कुसगा में पढ़ गए और मध्यम अरम्भ कर दिया 14 ब्राह्मण से 1936 का स्वामी दयानन्द जी के आगमन पर उनका दखलावा का काम मुन्ना राम जा के पिता का सीपा गया उन्होंने मुन्ना राम 'न' स आग्रह किया कि व भा सगम में चल और स्वामी जी के उपदेश सुन स्वामी जी का उदेश्य मन का व बहुत प्रभावित हुए और मुनका क विरुद्ध मन म धारणा

कैत गई। मुन्नी राम जी पहले गामनर लसीनवाली की फिर अनेक लम्बाय दे दिया और लाहौर में कानून पढा मुन्ना कर दिया। मुन्नाजी की परीक्षा पस की। एक जट्टी में मध्यमन का दौर चल रहा था। वहा अपने मित्रो की गते में बुर दशा को देख कर मुन्नी राम जी की आंख खुल गई और इस ज्वन को सदा के लिए छोड़ दिया। वहा से नव जीवन का अरम्भ हुआ। पहले वह नव सगम की ओर दृष्टि। अन्त में पुनर्वसन की समन्वय के समाधान में आपको सत्पार्थ प्रकाश की ओर जाया अउवे सम्यक्स को पढा और इतनी समुचित हुई कि सट अर्थ समाय के समासेत हो गए। वह सत्पार्थ प्रकाश को गहराई से विचार। और ब्रह्मचर्यधर्य के समुद्राल को पढा। मय पहले ही छोड़ चुके थे परन्तु मास फिर भी छाते थे। एक दिन मास की ठोकरों को गुजरते देखा। एक कटो बकरीयों के रैर बाहर सटके देखे। सत्पार्थ प्रकाश की सविद्या क्रांति कलें लागी और उस दिन से मास जाना भी छोड़ दिया इस प्रकार मुन्नी राम से महात्मा मुन्नी राम बन गए

मुन्नी राम की भल हो क्योंकि बन चुके थे लेकिन धार्मिक विचार मन में शनने पर कर चुके थे कि यदि उनको पता चल जाता कि केस हटा है तो कैसे खालि कर देते। व एक साहूकार का मुकदमा इसलिए छोड़ा दिया क्योंकि उसमें जालसाजी थी आपकी पकालाय खुब चमकी और आपका नाम एक नामी वकील में हो गया।

धार्मिक क्षेत्र में अनुयायी बहुत बढ़ा लगे दूर दूर तक प्रचारार्थ जाने लगे एक बार कपूरथला में प्रचारार्थ गए और मुनिमुन्ना के विरुद्ध सत्पार्थ किया। सन् 1934 में आपकी श्री गुरुदत्त विद्यापीठ के सगम का साम हुआ। आप उनको अपना पथदर्शक समझते थे गुरुदत्त के पिथन पर आपको बहुत दुःख और गुरुदत्त का सदा सगम पर उठीं को उन्मत्त पडा।

स 1948 में 15 फाल्गुन को आपकी पत्नी आपको छोड़कर स्वर्गवास हो गई उन पर बहुत दबाव डाला गया कि दूसरा साधक को परन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया आप अपने महान् गुणों से

लेकिन भी ही चुके थे। आपके व्यक्तित्व का बाल्यव गयी थी का बहुत प्रभाव था। तीन बन्धु हस्तमन्त्र आपकी गुण मानते थे। एकमेक के अनेक लम्बाय प्रेष आपसे आशीर्वाद मांगते थे।

मुन्नी राम जी के जीवन की एक बटन में उन्हें गहनता मुन्नी राम से स्वामी ब्रह्मचर्य बना दिया। मुन्नी राम की बहुत लसीपन में थे कि बाकी का समय बर्न प्रचार में गुजारें था फिर फाल्गुन का काम करने 7 घर से बैराग होकर काला कोट पवन कर न्यासलय की ओर चल पड़े। मगर निकल कर एक पीक पर खड़े होकर सोच में दूब गए। कभी सोचते कि खालि पर चल चढ और वह सेतुभूषण डाल कर कैद हो और लज्जती का जादू। कभी सोचते कि नहीं यही भय ठीक है। इस सोच में दूबे वहा खड़े वहीं सोच रहे थे कि एक सपर्य कर्मचारी सडक तक का रोजी थी। वह सपर्य कटती कटती वहा पहुच गई वहा मुन्नी जी सोच में दूबे खड़े थे। उस ली ने सपर्य कटती थी और पीक में वहा मुन्नी जी खड़े थे। उनका कला बाबू एक तरफ हो जा। मुन्नी जी को नव सगम गुवन लग बाबू एक तरफ हो जा बाबू एक तरफ हो जा। निमेष किया कि एक तरफ ही हो जना चाहिए सपत्नी की का निमेष कर लिया और इस प्रकार व्यावहारिक षधे की छोड़ कर स 1971 में सन्वास लेकर महात्मा मुन्नी राम से स्वामी ब्रह्मचर्य बन गए।

आपने एक प्रस्ताव अर्थ प्रतिनिधि सभा में सन् 1899 में किया कि एक गुरुकुल खोल कर विषयों वैदिक शिक्षा स्वामी दयानन्द जी के दिखलार मार्ग को अनुसर दी जाए। अपने 30 000 रुपए सग्रह करने की प्रतिक्रिया में तीन बर्न में 40 000 रुपए एकत्र किए और हरिद्वार के समीप गंगा के तट पर दानसीन स्व अमर सिंह जी के धान की रक्षि भूमि पर कागदी गाय सें 1959 विक्रमी में गुरुकुल स्थापित किया। गुनकर बासा से 29 ब्रह्मकरी वहा लाग गए। **अन्यथा एक ठोका एक मुनि विनियमालय का रूप ले चुकी है जहा हर प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध है। और इसी प्रकार अनेक प्राचीन में अनेक गुरुकुल चल रहे हैं। सन् 1908 ई (स 1935) में आपक चल से सार्वदेशिक सभा की स्थापना हुई**

और आप उनके प्रधान निरीक्षक होते रहे। महाकल में मुनि विनियम की सन्वास के लिए 70 सहस्र सगम करवा किया। 54 सहस्र स अनेक सच दूसा होय आय प्रतिनिधि सभा को सीपा दिया स्वामी ब्रह्मचर्य ने मुनिमार्ग के निष्कट बहुत प्रभाव किया बुद्धि जन विरो मत पर विवेक अधिकत था और अंग्रेजी की सरकार होत के नवे अमसरी के पत्र कान पर गए कि अर्थ समाय सरकार का सनु है। अत इत राबरीही सत्या बालसा गया। 30 मार्च 1919 ग दिल्ली में निमिष व प्रितिष अन्वोलन के सत्पन्व में भारा हडताल हुई और हरमन पर गोला बरसा। कम्पनी जाग में सचा हुआ उस पर भी गोली बरसाई गई परन्तु बीर ब्रह्मचर्य ने आगे बढ कर कहा कि गोली चलानी है तो मेरे लीन पर चलानो स्वामी ब्रह्मचर्य के इस सगस में गोलीयो की चौकर का वहा ही रोक दिया। इस प्रकार एक लज्जती के अमर समर्प न अमलगत लोग का गोलीयो स धुन जाने से बचा दिया

आपका हिन्दु पाषा भी हिन्दुओं का बहुत प्यार था हिन्दु को यह अर्थ भाषा कहत ह गुरुकुल का प्रस से एक 'वास' उर्दू भाषा म 'न्दस प्रचारक निकालत ह आपन उदका भा हिन्दु में कर दिया आपका हिन्दु भाषाओं के एक सम्यसा (भागलपुर) का सभापति बनाय गया।

हुटि और हिन्दु सगठन का कार्यसम हो आपका प्राण थे हुटि आन्दोलन ने हिन्दुओं में एक क्रांति पैदा कर दी था व हिन्दु 'ग' मुखलसत कर गए थे उनका हुटि कलें बांधि हिन्दु बनाया जा ता। का निमस मुखलसत को आधा धुच रहा था और सभा मुखलसत स्वामी जी के प्रमो के प्यास हा गए उनके धार्मिक के पत्र आपन 'न' कि उनकी हला कर दी जाएया एक प्रता एक नवयुवक स्वामी आ की निमलें आया और अन्कर उमर स्वामी जी के हरार को गोलीयो स चलनी कर दिया वह हथपरा **अन्वय उन्कर** वह पादने लगा मा श्री धर्मपत्न विमलसक व उमर पुलिस के अने न 'मोच' गये और सत्त कर स्वामी ब्रह्मचर्य अमर सत्त हो गए। स्वामी 'न' की सगवाहा का सगुह सगा पिता का कि बर्न तास मास एक लाग ही लीग दिखी देव व

पादरी भूमय गया

अन्य प्रकाशक जलवा

पादरी से आने

बिरास की बात सुनकर पादरी चौकलक-रह गये और अपनी भूमि मिटाने के लिए जोर-जोर से चले। यदि तुम लोग ईश्वर की तरफ में आ जाओगे तो तुमको फिर भू-प्रेत नहीं चम्केंगे।

बिरास-आप कैसे चले-चिन्ते आपकी भी भूत-प्रेत बंदी निपटार करने में मददगार नहीं हैं बिरास कहते हैं।

पादरी-हम सब सभी चम्काली भूत-प्रेत जम्मे हैं और भूत-प्रेत के कारण हम प्रकाश की सीमास्थिति में नहीं रहते हैं।

बिरास-पादरी सड़क। मोहोरियों के कारण भूत-प्रेत होते हैं देख किसे दमन के सामने गत वह दमिष्टता अन्धका यह आपको चाला मोहिया कर देता।

पादरी-गम के अनपक्ष लोगों की ओर इलाक करके हुए पादरी ने कहा-आप लोग कहतेआओ कि भूत-प्रेत से चम्काली होतो है या नहीं?

गम के लोग-हाँ, होतो हैं। बिरास-यदि भूत-प्रेत से चम्काली होतो है और ईश्वर की तरफ में आने से भूत-प्रेत भाग जाते है तो पादरी महब-इसाई होतो तो कभी भीमारी नहीं होतो हैं।

(बिरास की बात सुनकर पादरी फिर चुकमाने लगा और उसकी हलत देखकर गम के लोग कहकहा लगाकर हस पड़े।)

बिरास-पादरी जी। जब ईश्वर की तरफ में आने से ही भूत-प्रेत भग्न जाते है और चम्काली दूर हो जाती है तो फिर आप लोग अस्पताल क्यों छोड़ते हैं और क्यों करोड़ों रुपया खर्चाओं पर व्यय करते हैं।

(पादरी फिर चुकलाने लगा और इससे काँप बग)।

बिरास-पादरी जी। क्या आप कहते सको है कि ये भूत-प्रेत कैसे उत्पन्न होते हैं और कहा रहते हैं?

पादरी-हम नहीं जानता।

राइन-पादरी जी। इसद लोग हो मरने के बाद भूत-प्रेत बनते होगे। जब जब मैं पढ़े-पढ़े से पोलता हो जाते होगे या उनका कर्म मैं से बने के लिये मैं जाने भर जाता होतो तो ये बहा से निकल कर जहाँ मैं चले आती होगे और लोगों को तप करते होगे। पादरी महब-सुनो। भूत-प्रेत कुछ भी यह जानना पारम्पर्य है। इस पारम्पर्य से चम्कने के लिये संकेत भर के ईश्वरियों को आर्ष (हिन्दु) बन जाय चाहिए। यही मुक्ति का मार्ग है।

पादरी-मरने पर ईसाई भूत-प्रेत

कामते हैं, आर्ष (हिन्दु) नहीं, इसका क्या प्रमाण है?

पादरी-पादरी जी। हमारा आर्ष (हिन्दु) धर्म पुर्नर्जन्म में विश्वास रखता है। मरने के पश्चात् पुनर्जन्म दूसरा जन्म प्राप्त कर लेता है, परन्तु आप के धर्मनुसार ईसाई भ्रम कर जाय के दिन एक जन्म में लेते रहते हैं। इससे सिद्ध होतो है कि ईसाई लोग ही भूत-प्रेत बन सकते हैं।

पादरी-भुम दोमों जीवन हो, हमारा सब बात कर देते हैं।

बिरास-पादरी जी। हमने यह सुना है आप लोग दूध और घी के डिब्बे का तलाक देकर हम गरीब और अनपक्ष लोगों को जब ईसाई बन लेते हैं तो फिर मिशन के नाम पर अपने बच्चे लेते हो, उनके रिश्ता-रिवाज, धर्म और स्थिति बदलते हो, उनकी लक्ष्मियों की सखी का जन्म के नाम पर अपने बच्चे बल्लुते हो, उनको प्रति रक्षक मिशनर जानने की विचार करते हो और न जाने काले को युद्धित कर दो और बाकि बिपदरी का ध्यान किए बिना उनके बच्चयक-नमस्तुतियों को खोदिए करते हो। यदि ये बात सत्य है तो आप सेवा नहीं कर पाओ बहा धरती आप कर रहे हो। अन्धकी की शक्ति के पश्चात् हमारे जन्मों पर से एक-महालक्ष्मियों की तुलना का पुष्प अभी उगाय नहीं कि आपने अपने फलस की उत्पत्ति हमारे गले पर रख दी।

अपको बिहित होना चाहिए कि हम मनवासी देखने में भले हो काते, निर्धन तथा अनपक्ष हैं, परन्तु हमारे जन्मों पर से एक-महालक्ष्मियों की तुलना का पुष्प अभी उगाय नहीं कि आपने अपने फलस की उत्पत्ति हमारे गले पर रख दी।

अपको बिहित होना चाहिए कि हम मनवासी देखने में भले हो काते, निर्धन तथा अनपक्ष हैं, परन्तु हमारे जन्मों पर से एक-महालक्ष्मियों की तुलना का पुष्प अभी उगाय नहीं कि आपने अपने फलस की उत्पत्ति हमारे गले पर रख दी।

पादरी जी। इस-आपके धर्म को बुरा नहीं कहते, परन्तु हमको दैत, कास, अवस्था के अनुसार हमारा देशीय धर्म और सम्मत्त ही हमारे अनुकूल है। कोई भी विदेशी धर्म और सम्मत्त हमारे अनुकूल

नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त जब हमारे धर्म में ही सारा की सम्मत्त लेक बातों का सम्मत्त है तो फिर हम अन्य विदेशी धर्म को क्यों अपनाने।

पादरी-यदि आप ईश्वर की तरफ में नहीं आवेंगे तो आप को हम दूध की या डिब्बा नहीं देंगे, आपको अपने बच्चों से खारा बना और पैसा नहीं देंगे और अपने स्कूलों तथा अस्पतालों से आपको लाभ नहीं पहुँचावेंगे।

बिरास-पादरी जी। आपने हम आर्षों (हिन्दुओं) को चकानने में भूल की है। हम लोग खेने, पादरी, मकान और दुकान को धर्म के सामने कुछ नहीं समझते। हम क्षत्रिय लोग हैं। महादत्ता प्रकाश के सत्य मिलकर हमारे पूर्वज बार बार जोड़ कर जंगलों में खो-खो लिये और बात की रोटीया काई परन्तु अन्धकार के प्रलोभने और लक्ष्मियों के समुद्र फिर नहीं झुकवा और अपने पूर्वजों से आपको लाभ नहीं पहुँचावेंगे।

पादरी-देखो। तुमको धर्म में भूलकात के नाम पर तुम लोगों को अन्धक बना जाता है। तुमको हाथ का कोई धर्म नहीं पीछ न जाना भी नहीं जाता। ऐसे धर्म में रहने से क्या लाभ है? अगर तुम ईसाई बन जाओगे तो तुम्हें कोई अन्धक नहीं मनेगा और तुम सक्के समझ हो जाओगे।

बिरास-पादरी जी। ये सामाजिक कुरीतिया सचो धर्मों में ही परन्तु हमारी सरकार ये अन्ध भूलकात को बर्नानु बन कर दिया है और जो भूलकात को मनेगा उसे दमद दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त हमारे देश में आर्ष सम्मत्त बैसी संस्था गत 100 वर्षों से इस सामाजिक कुरीति को समाप्त करने का प्रयास कर रही है परन्तु गत आप अपनी आसक्ति में तो भूल करिए। आपके ईसाईसिद्ध के सिखा बुरीप, अमरीकी और अफ्रीका में करते लोगों के साथ कैस व्यवहार कर रहे हैं? क्या वह बात सच नहीं है कि क्या गरी ईसाई लक्ष्मियों को साथ बैठने, उठने चलने, पढ़ने और लड़ने-विद्या आदि करने एक में बूना करते हैं और बाले लोग ईसाईयों के इस अनपक्ष का लक्ष्मर विरोध कर मीत के बाद उतरते रहे हैं।

(बिरास की बात सुनकर पादरी चौकलक रह गया।)

राइन-पादरी जी। क्या यह सच नहीं है कि आप धर्म और लेखक जोड़ ईसाई बनने पर हमें हमारे बच्चों को सरकार द्वारा दी जा रही विदेशी सुविधायें व सहायता आप न हो सकेगी। वह सच है कि फिर दो बार भी-दूसरे के डिब्बों पर हम अनपक्ष

होना बहा लाभ क्यों छोड़े?

पादरी-तुमको सरकार मान्य नहीं कम मदद करेगी, हम तो तुमारी बात नहीं बदल करता है।

राइन-पादरी जी। आप जानते क्यों से इन बातों में नये और भूलो भी भस रहते आए हैं और इस इस चीजन के आदती भी हो गए हैं। इसलिए हमें यदि कुछ दिन और अपनी रका करते हुए इसी प्रकार रहक पड़े जब हम सचर रहेंगे परन्तु इस धोड़े से प्रलोभन के लिए हम अनपक्ष और अपने परिवार का धन नहीं बिखरेंगे।

पादरी-तुम हमको बात समझता नहीं-हम तुमको पछा-लिखा कर ईसाई बन देंगे।

बिरास-पादरी जी। आपको इतिहास को चाहिए कि हमारी सरकार ने हमें किशा प्राप्त करन अविषाय कर दिया है। ऐसी स्थिति में हमारी सरकार को हमारे लिए खूब ध्यान रखी है। इसलिए इस प्रलोभन में ना हम नहीं फसेगे।

पादरी-ईसाई हो जाने से तुमका कल्याण हो जाएगा।

राइन-हमारा कल्याण हो या बिपक्ष। जब आप हमारा धन भस्करुती और सम्मत्त चीन लेते और आप बहू सबक-आय बाति में स निम्नलक्ष्मर विदेशी धन, सक्कति आप सम्मत्त को मनेने वाले अस्पृशक-धन में बहा कर मनेने तो फिर हमारा कल्याण कैसे होगा।

पादरी-भाई प्रिय होत है कि अब सम्मत्तियों ने तुमारा दिमाग खराब कर दिया है और बा बात भल नहीं होने देते।

बिरास-पादरी जी। तोभाय न आर्ष सम्मत्त के सत्यपक्ष भड़कि दलनन की विद्याप्राप्त ने हमारे अन्ध सोस दी है और अब आप इन गमना में हमारे निधन, भोल और अनपक्ष भावियों को लोभ-लपटा देकर उनका धन व जीन सकोने आए हमारे को देश के सिद्ध का विरोध के पश्चात्त दलत पण न कर सकेगा। आप भारत में सेक करने नहीं आए, अण्डि हरीद अमरीका आदि देशों से आप करोड़ों लक्ष्यों के धन पर हने खरीदने आए हो और चिकित्सन की भाति इसप्रकार बकने आए हो। आप द्वारा बनाय गए ईसाईयों को स्वतन्त्र गानलेड और खरखरक प्राप्त की मांग इस बात के सत्य प्रमाण है कि आप हमारे सेवक नहीं-भ्रमर हैं।

पादरी-हम सामग्य किता किन हमारी दास बना नहीं मनेगी।

ऐसा कहकर विदेशी इसल मिश्रणी बहा से भाग गया और वह गम उतकें बल्लुत में आने से बच गया।

◆ *Here's Where You Start: The Key Thought*

The thought that you must carry all the time, like a big sign hanging over the stage of your living, is this:

**I am going to keep my thinking and my attitude calm
and cheerful right now.**

That thought you are to have always with you, repeating it over and over to yourself until it sticks there without conscious effort. Just as the present moment is always with you, so is the thought, "I am going to keep my thinking calm and cheerful — right now."

Whatever happens, whatever situation arises as the day goes along, keep that *one* thought active and alive.

And, of course, situations will arise, every day, to which you have gotten in the habit of reacting with one of the unhealthy emotions. Then you will say to yourself, "Whoa, there, old fella, here's where we need calmness and cheerfulness."

Then you must substitute a healthy emotion — one containing equanimity, courage, resignation, determination, cheerfulness and pleasantness — for that unhealthy stress emotion you might otherwise have — the one containing fear, apprehension, remorse, disappointment, anxiety, or frustration.

◆ *Substituting Healthy Emotions for Stress Emotions*

At first you'll find that you have usually *started* stewing over something, or you've already become irritated and upset before you remember to say to yourself, "I am going to keep my thinking and my attitude calm and cheerful — right now." As you practice, you'll be *ahead* of stress with the key thought, and be able to stop your descent into stressing emotions.

Either way, the moment you remember, "I am going to keep my thinking and attitude calm and cheerful — right now," you stop the thinking that generates the stress emotion

and start a train of thought that will generate healthy emotions. Everybody develops his own tricks for substituting a healthy emotion for a stressing one — RIGHT NOW, when it is needed.

On the occasions that are just “nasty little situations” of minor importance, one of my patients learned to begin whistling, and soon he trilled himself into complacency, equanimity and cheerfulness. Another patient, who had a good voice and liked to sing, learned that if she sang she could change her emotions for the better at once. Another patient has learned to find beauty in the little things about her when she needs the lift. And a man told me that he keeps planning a new experience ahead that he can turn to and think about whenever he finds his emotions are running toward the stressing side.

Many people find prayer a ready way for starting a pleasant stream of emotion. But it is important to get into the prayer the same attitude of calm and cheerfulness. For instance, it would not do to pray like this: “Oh, Lord, I feel miserable, and the situation I am in is terrible. Won’t you help me, God?”

The supplication should run more like this. “Thou hast created a wonderful, wonderful world for our enjoyment, O Lord. Give me the courage, the resignation, the determination, the equanimity, the cheerfulness, the pleasantness to enjoy this wonderful life Thou hast given me from Thy bounty.”

These are all useful methods of substitution. They will help you out of those numerous little snarls that come along every day — the sum total of which can get you down.

◆ *Mastering That Nasty Little Moment*

These nasty little situations are easy to handle by remembering, “I am going to keep my thinking and my attitude calm and cheerful — *right now*,” and then deliberately call-

ing up and tossing in a healthy emotion instead of allowing the stressing one to go ahead. It is very important in developing emotional stasis that you do handle stresses in this way. For although each of these minor stresses may seem trivial, yet these seemingly trivial episodes, if allowed each time to run a stressing course, will by themselves be enough to produce chronic emotional stress and E. I. I. Eighty per cent of the average patient's stress arises from these poorly-controlled and relatively minor situations.

◆ *If the Going Is Smooth*

If you happen to be traveling through a good, smooth period of living, then, for heaven's sake, allow yourself *to feel* happy. Fill the hopper with equanimity, cheerfulness, and pleasantness. Go the limit to enjoy the delightful magnificence of your world. Life is wonderful if you allow it to be.

◆ *Four Things to Do If The Going Is Rough*

The big situations that may arise in your living, (you and I have had them, and will continue to) are not as readily dealt with as are "the nasty little moments." Suppose your wife is sick, you can't get (in fact, you can't afford) help, the children are at loose ends, and it looks as though your plant was about to shut down, you already are working only three days a week. Creditors are after you. That, my dear fellow, is not a spot where simply substituting an emotion is going to do the trick.

There is a general mode of procedure to keep in mind.

1. First, stay outwardly as cheerful and calm as you possibly can. Lighten an awkward situation with a bit of humor, wry though it may be. (Wry humor is, after all, the best variety.)

2. Avoid running your misfortune through your mind like a repeating phonograph record. Do not let yourself get irritated, upset, or hysterical. Above all, don't start pitying yourself.

3. Lay your plans always to turn every defeat into some kind of a victory, remembering that the best victory is to have kept your courage, your equanimity and pleasantness. Everyone will admire you for that.

4. Run these flags up on your masthead and *keep them flying*:

Equanimity ("Let's stay calm")

Resignation ("Let's accept this setback gracefully.")

Courage ("I can take this, and more.")

Determination ("I'll turn this defeat into victory.")

Cheerfulness ("Bowed but not broken")

Pleasantness ("Still good will toward men")

◆ *The Story of Two Men*

You should know about these two men, and remember them as you deal with your problems. They are as different as night and day. One of them, Sam, is the perfect example of emotional stress. The other, William, is the epitome of emotional stasis.

◆ *Sam, King of His Own Stew*

Sam's world, if someone other than Sam inhabited it, would be a dreamland. The *only* bad feature in Sam's life is his own condition of emotional stress, which, mind you, Sam is not accountable for, since he got it through bad family education.

Sam is a well-to-do farmer and a director of a bank in a neighboring town. Sam has a wonderful farm which he inherited from his father. From his father, too, he received a grouch of the kind fairly common among "successful men." I don't think a grouch like that is inherited, it's acquired by living in the shadow of someone else's grouch. His mother was grouchy too, I imagine she got it living with Sam's father, or, perhaps, his father married the woman because she had the type of grouch he felt went with a solid citizen.

In spite of the fact that Sam had never had any hardships,

no financial losses, no extraordinary family catastrophies, no blows beneath the belt from unkind fate, he, nevertheless, walked through life as though utter and complete ruin were just around the corner

On Sam's side of the street, the sun never shone. Sam was like the man walking in a park telling a friend how unfortunate was his every move, saying, "Some people buy bonds — they go up Some people marry — she is a princess. For me — everything goes wrong " Just then a bird flew overhead, the complaining man took out a handkerchief and carefully cleaned a fresh spot from his lapel. "See?" he explained, "For some people they sing "

I have asked Sam's family, and Sam's neighbors, whether they have ever heard Sam say a hopeful, pleasant word, but none of them ever have Oh, yes, I almost forgot. His wife thinks that Sam did say something pleasant the first year they were married, but that was so long ago she is no longer sure.

To illustrate how Sam's disposition operates, I drove into his farm one day in July just about the time the oats were ready to be cut Sam had 60 acres of the nicest oats you'd ever want to see I said, "Sam, that's a wonderful field of oats you have there " Sam answered mournfully, "Yeah, but the wind'll blow it down before I get it cut "

I watched the oats Sam got it cut before it blew down He got it threshed before it burned up. And I knew he received a good high price for the oats. So the next time I saw Sam I said,

"Sam, how did the oats turn out?"

"Oh, I suppose good enough," he replied, "But a crop of oats like that sure takes a lot out of the soil "

Another year he had corn that ran 165 bushels to the acre. Before it was harvested, Sam was in my office and I said, (conversationally, as well as to see whether Sam was running true to form), "How's the corn this year, Sam?"

And Sam said, "Terrible! It's so heavy I don't know how we're going to get it in."

At another time in October, I met him on the street. It was one of those beautiful dreams of an October day that we so often have in Wisconsin. With what I thought was contagious enthusiasm I said,

"Hello, Sam. Wonderful day, isn't it?"

Sam's answer was "Yeah, but when we get it, we'll get it hard."

These outlooks are typical of Sam.

You will remember in Chapter 4 we talked about the type of emotionally induced illness that Sam has. People with Sam's emotional color *always* develop emotionally induced illness, certainly by their middle fifties. And when they get it, they get it, like Sam's weather, *hard*. Very often they are invalids for the rest of their lives.

◆ *William, King of Living*

The other man to contrast with Sam is a man still to be seen on the streets of our town. His hat is respectable but old. His coat is clean but worn. His smile is sincere, the look in his eyes is glad. He is called William.

William, too, inherited a good round sum from his father, just as Sam did. And in an adventurous sort of way he tripled it and quadrupled it, and enjoyed it, as only William knew how to enjoy.

Then came 1929 and 1930. The bankers (and one was particularly bad) set upon William gleefully, and cleaned him out. I am told, on good authority, that with a little lenience William could have come through the depression in good condition. But this one banker snapped up what William had, while the snapping was good. William went on W. P. A.

I stopped one day when I saw him digging in a ditch with a string of other men. William was 60, and he hadn't worked at manual labor for years, if ever. When he saw me he smiled a great big smile and rested on his shovel.

"You might almost say," he laughed, "that you are watch-

ing an honest man earn an honest dollar. But it isn't quite true. I earn only 79 cents of it. The rest of the time I lean on my shovel and talk. But then that's what the Government wants — it's not so much to get this ditch dug as it is to help the public's morale, and so the 21 cents I don't earn shoveling, I make up for by boosting the general morale of these fellows working here with me."

All the fellows down in the ditch laughed with him. They had been feeling good ever since he joined them. He always made everybody feel good.

William still had a few irons in the fire and he made a little money over and above his W.P. A. intake. But then both he and his wife, whom he adored, developed an abdominal malignancy at the same time.

Each had an operation. He lived and was cured. But he lost his wife. And it took all his recent savings to pay the hospital. Through the whole thing, William never changed; he never talked about himself, nor complained.

He had a pleasant story, an interesting anecdote, cheerful greetings, whenever anyone came to see him in his hospital room. His wife's death must have made a great hole in his life, but he never let on. He filled it with the old smile which shone now beneath the battered hat that was all he could afford. Here and there, he made a little to live on, one way and another, but always happy.

Then he developed a malignancy of the larynx. More operations. I'd see him in the office, and he had so many interesting things to tell me. I had difficulty finding out how *he* was. And, miraculously, he was cured of the malignancy in his larynx. He still goes around the town, smiling, interested in everything, and interesting everyone in something.

Probably the most remarkable thing about William is this. The banker who cleaned William out in the depression has never had a friend. I have never heard anyone say a good or kind word about him — except William.

William thinks the banker is a man of great capacity, and told me once, "People think the man has no heart, but he is

kind, really. Nobody seems to pay any attention when he is kind, but they sure talk about it when he does the kind of thing a banker necessarily has to do."

One of William's neighbors, having admired the manner in which Will kept his head up, the cheerful smile on his lips, and the friendly, unwhining greeting through all his misfortune, stopped Will one morning and said, "William, if you'll excuse me, I want to say simply that I admire the way you come through misfortune after misfortune. I'd sure like to know your recipe. Would you mind giving it to me?"

William smiled warmly. Like everyone else, he liked a pat on the back.

"Well, I'll tell you. A long time ago I sat down to try to figure out my next move. It didn't look as though there was another move. I thought a long time. And then the answer came to me. I got up and repeated it to myself, 'William, you might just as well cooperate with the inevitable.' And that's what I've been doing ever since — cooperating with the inevitable."

♦ *The Importance of Handling the Average Moment*

Let me give you one more example of the general procedure for you to follow, this time an example of how to handle, and how not to handle, the "nasty little moment."

Some time ago, I chanced to go Christmas shopping with two ladies in the department stores of Chicago. These two ladies were twin sisters.

The first of these sisters had left a chronically-ill husband at home, and had a boy fighting in the Far East. The second sister had nothing in her life to cause a ripple.

The first sister knew the art of enjoyment, that is to say, she knew how to attain emotional stasis. She made herself enjoy the entire day.

When we went into a department store, she would look around at the holiday decorations in genuine pleasure and

say something like, "I just love to shop at Christmas, the stores are all so gay"

If we stopped at a counter looking for some particular article, she would exclaim with pleasure, "My, they have such a wonderfully rich selection of everything. I've got a better choice of better things right here than any Roman Empress ever had," or, "Oh, wouldn't Charles just be thrilled to death with this? Why it just suits him to a T"

We had lunch in a department store restaurant. She said as we entered, "I always like to eat in here, it's so nice and big, and the meals are always so delicious" She enjoyed the whole meal, and we started out again with a neat tip to the waitress.

Her twin sister, on the other hand, had no reason for acting differently, except her acquired habit

As we entered a store — the very same store — she looked around in horror, "Just look at all the crowds. I just hate to do Christmas shopping"

At a counter she would say, "They have so much you just don't know what to choose They simply have too much Last year the thing I got Charley he didn't like, and I know he wouldn't like this either. And look at the prices. It's positively robbery, that's what it is"

In the department store restaurant, nothing was right or satisfactory. She complained to the waiter of every bit of food that came before her, and finally she became irritated because the waitress reached in front of her She made a scene with the manager that I thought would never be over. She entirely spoiled her own meal, and she could have spoiled her sister's and mine if we had not (knowing her) found her intensely amusing.

The next day the pleasant twin felt fine and chipper, and was about her usual work But the self-made battle-ax was sick abed with a migraine headache, as I knew she would be. "Why in the world," she grumbled belligerently, "do I get these headaches? Oh, oh, I'm so sick"

**A SUMMARY OF THE AIDS
FOR DEVELOPING EMOTIONAL STASIS
PRESENTED IN CHAPTER 8**

I. Practice thought control. When you catch yourself starting a stressing emotion like worry, anxiety, fear, apprehension, or discouragement, *STOP IT* Substitute a healthy emotion like equanimity, courage, determination, resignation, or cheerfulness.

II Carry this idea every minute of every day: *I am going to keep my attitude and thinking calm and cheerful — right now*

III When the going is good and smooth, allow yourself the delightful feeling of being happy.

IV. When the going gets rough

1 Stay outwardly as cheerful and as pleasant as you possibly can. Lighten an awkward situation with a bit of humor, wry though it may be

2 Avoid running your misfortune through your mind like a repeating phonograph record. Above all, do not let yourself get irritated, upset, or hysterical.

3 Try to turn every defeat into a moral victory.

4 Run these flags up on your masthead and *keep them flying*

-
- *Equanimity* ("Let's stay calm")
 - *Resignation* ("Let's accept this setback gracefully.")
 - *Courage* ("I can take all this and more.")
 - *Determination* ("I'll turn this defeat into victory.")
 - *Cheerfulness* ("Really, I'm holding my own," or, "Bowed but not broken.")
 - *Pleasantness* ("I'll still have good will toward men.")
-

9. TWELVE IMPORTANT PRINCIPLES TO MAKE YOUR LIFE RICHER

Your maturity and emotional stasis will take a great step forward if you can maintain certain attitudes toward several of the important broad aspects of living. These all involve departments of living that seem to give many people considerable trouble, departments of living in which people are apt to react with typical immaturity and develop much emotional stress

It is best to formulate a definite mature plan of action in handling these aspects of life that cause people so much stress. Let us examine such guiding principles. They will save you an immeasurable amount of stress.

♦ 1. *Keep Life Simple*

Keep yourself responsive to the simple things that are always near at hand and readily accessible. Don't get in the habit of requiring the *unusual* for your pleasure, a failing one is very likely to find in people having more than a little money or education.

Life becomes a tremendously interesting adventure if you learn how to get your pleasures from the world that lies immediately before your five senses.

How easy and simple it is to live enjoyably when the simple, interminable blue of the sky, with its long wisps of white cloud, becomes a pleasant thing to behold, a thing of beauty that thrills you every time you care to look skyward. How easy to live when the grain in the panelling of the door arouses your admiration, or a scrambled egg satisfies, or plain Mrs. What's-her-name down the street becomes an object of keen interest because of her absorbing preoccupation with her lawn.

How simple and how nice to live like Gilbert White of Selbourne, like W. C. English, John Muir, or Thoreau, occupied with the constant, wonderful world of color, sound, smell, and sight that is available every single instant. If you tune yourself to it as Walt Whitman did, your every moment is a walk down an avenue of ready-made enjoyment.

W. C. English, a remarkable man. One of the finest men it has been my great fortune to know was a man who made himself entirely happy in the world that lies at the tips of our fingers, visible to our immediate sight, and always within hearing. His name was W. C. English.

I met him when I was in college, he was already in his sixties. W. C. English was John Burroughs, John Muir, and Gilbert White of Selbourne all rolled into one. He enjoyed everything around him. His life was simple, his only needs were eyes to see, ears to hear, nose to smell and fingers to feel.

He needed no automobile to travel. He could see more afoot. And in a mile afoot, he found infinitely more wonder than most people find in ten thousand miles on wheels. He knew every plant, every bush, every tree, by its scientific name, as well as its common name. He knew the places where the pink lady's-slipper grew, where to find the fringed avens. He knew what plants the Indians used for food, for paint, for other purposes; he knew how to prepare them. The few people who have eaten one of his meals of wild Indian

vegetables beside an oak fire on the bluffs of the Wisconsin River have had one of the rare experiences men can have

He knew the insects They astounded him. Through personal observation he knew the life histories of some insects that were known to no other man. He enjoyed the birds and could spot and name them from far off The Wisconsin River Valley he knew as no other man has known it. He thoroughly knew his world, and was entirely at home in it At night he was at home with the stars and the sounds of the forest

He showed me how to catch sight of a wild deer, where to find the badger, how to trick a fox into showing where he lived, where to expect a rattlesnake and how to pick him up He knew about geology, fossils, and caves

In all this, he was not a pedant, but just a smiling, pleasant man with his hat tipped back on his head, striding along easily with long strides, enjoying a world in which *everything* interested him.

I have seen him spend a whole afternoon watching a jumping spider He lectured when he needed money, or wrote an article But he had no great need for money, because he was richer than Henry Ford and John D. Rockefeller combined. He would chuckle when he heard of other people's misfortunes, asking why people should be foolish enough to cause themselves so much trouble. For him the people he met were as interesting as the plants and birds, and he treated them with the same solicitude

He was one man who was truly loved and respected by all who knew him. His wife always said that she adored him more every year They lived 60 years together.

We can't, of course, be W. C. English's, or live like him But the point is, we should cultivate the ability to find our major and constant enjoyments in the common things which are always at hand To be able to do so gives living a most tremendous lift whose value cannot be overestimated Developing a capacity for enjoying what is at hand, of course, carries with it simplicity in living

Now, mind you, it doesn't preclude soaring into the heights,

but it makes soaring what it is, namely, a *soaring*, after which one again returns to set one's feet on the terra firma of the world of our five senses, rather than making soaring a permanently insecure detachment from which there is no return because there is no place to return to.

◆ 2. *Avoid Watching for a Knock in Your Motor*

Among the world's most miserable people are those who cannot get over the idea that they have something terribly and intrinsically wrong somewhere — something very rotten in the state of their constitutions. They are forever miserable, listening for a possible knock in their motors, a grinding in their differentials. They belong to a tremendously large organization — the "Symptom-a-Day-Club," in which it is required that the members start the day by waking up and immediately asking themselves, "Where am I sick today?"

Bellyachers are miserable people deserving our greatest sympathy and help. They have gotten the way they are because of

(1) *Parents who were chronic bellyachers*, and who gave their poor miserable children the idea that our bodies are hellholes of aches, pains, and agues.

(2) *Doctors who gave them an organic substitute explanation for their E I I*. These doctors were either inexperienced or were thinking more of their fee or their time, than they were of the patient.

(3) *An interesting physiological fact*: if any of us stop and ask ourselves, "Where do I hurt?" we can by self-examination find some place where we hurt. The bellyacher by habitual self-examination is constantly finding these places and playing them for all they are worth. All one needs to do to turn one of these insignificant, unimportant pains into something genuinely severe is to keep one's attention on the pain. It soon grows ten times as severe.

A common fuel for the bellyacher's fire is a common type

of muscle-sheath and tendon pain known as fibrositis. Fibrositis *never* turns into anything serious. Although it is primarily an emotionally induced symptom, it is aggravated by muscular exertion, and by temperature and moisture changes. It is exceedingly common, and there are few people who do not have it.

Some people, like myself, have fibrositis somewhere practically all the time. The bellyachers manage to squeeze every ounce of pain out of their fibrositis. Not knowing that it is *merely* fibrositis, they add apprehension to it; if the fibrositis is in the chest, they are sure they have heart trouble, if it is in their scalp, they have a brain tumor, if it is in the abdomen, they have the cancer that is the beginning of the end.

Sometime when you haven't anything else to do (God help you), center your awareness for an hour on the sensations that arise in your throat. At the end of the hour you will understand how a person who has allowed himself the apprehension that there is something wrong with his throat can feel so sure that his throat is plugged, swollen, inflamed, dripping, abscessed, cancerous — in short, fulminatingly catastrophic — beyond anything the medical profession has ever witnessed before. What a sneering look of contempt the M. D. receives who assures such a throat searcher that he has nothing wrong with his throat!

There are a terrific number of people, physiologically sound but emotionally unsound, who have developed the idea they are unwell, and who no more expect to be well in the future than you and I expect to grow younger. Sad to say, in the development of this idea they have often been ably abetted by some lazy physician who offered them an easy organic explanation for feeling the way they do.

For instance, I had as a patient a lady who was sure she had some unusual fluid trickling about in odd ways in her abdomen. She had already had three major operations. She had a small myoma of the uterus that actually amounted to exactly nothing.

She had been told by a surgically-minded physician that the

myoma was the cause of her trouble and should be taken out. I thought I was doing pretty well in allaying her fears and explaining her feelings. Then, in a moment of doubt, she returned to the surgically-minded individual of the first part.

He operated, assuring her afterward that not only had he removed the offending uterus, but, that through his magnanimity, her ovaries, too, would never after cause her any trouble. She felt well and was fairly happy for two months. Then she had a new set of complaints

Now her thinking was, "If my former trouble was caused by *something* that had to be removed, this one is, too " Now rational treatment is even more difficult than it was before I am trying again, but I'm afraid the idea is pretty well fixed in her mind that she has a diseased organ again, and is never to be well *She never expects to be well.* She is a sitting duck for the next physician who suggests an operation

But it isn't always the doctor's fault Josephine was a pretty maiden lady who was sacrificing herself to take care of her mother and father. The plans she had once made for her own adventure in living had been laid aside On the surface she appeared pleasant enough, but, fundamentally, she rebelled secretly against her lot.

She had an ulcer, and she centered all her complaints around that. Her complaints, and her parents' complaints, became so wearing that her physician consented to an operation for her ulcer Now, several years later, she is just as miserable abdominally as she was before, this time without an ulcer The physician was literally pushed into an operation. He knew he could remove her ulcer, but he also knew he couldn't remove the situation that would produce new abdominal difficulties after the ulcer was removed

Never before in history have people been bombarded by so many warnings of ill health as we are today. The radio and television are constantly suggesting symptoms in order to sell a remedy which even the truly sick do not need Anyone in a properly receptive mental state can feel the necessary symptoms and buy a bottle of the stuff the commercial on

the radio or television makes so alluringly curative. Daily papers and magazines whoop up a disease and recite enough average feelings as symptoms, so that anyone can imagine he has the disease, or that he soon will have it. Never before in history has a public been made so aware and so afraid of the diseases which our day is heir to. This constitutes a tremendous factor in the onset of emotionally induced illness.

A person may have symptoms from wrong emotions. If he pays no attention to these symptoms, either because he knows what they are, or because he has other more important things to think about, he cannot be said to have emotionally induced illness. But the moment he gets apprehensive, and concerned, about the symptoms he feels, and allows them to make him miserable, he has emotionally induced illness.

One of my patients was an executive of a large concern. He was always under terrific pressure, with large responsibilities. As he went about his work, he frequently felt a tightness in his chest, and because it was not actually uncomfortable, and because he was intent on his job, he paid no attention to it but went on his way.

During a routine physical examination he mentioned the tightness to the company doctor, who told the executive that he probably had early coronary heart disease. From then on the poor fellow was licked, he thought of his heart all the time, and became extremely apprehensive whenever the tightness appeared. He became unable to work and was a complete invalid for a year. It took numerous examinations by the best heart specialists in the country, and very intensive assuring therapy, to get the man back to his work. Finally, he could again evaluate the tightness for what it was — a manifestation of the harrying and worrying, anxiety and hurrying, that was a part of his job.

But be sure you are organically sound. Here is the way to take care of your health. Have a good thorough physical examination every year by a sensible doctor, to assure yourself that you are sound, or practically sound. Between the yearly examinations *believe you are* sound. If something

turns up to cast any doubt in your mind as to your condition, go to the same doctor. If your fear turns out to be groundless (as fears usually do) make nothing further of it. It is so much more enjoyable to know that you are well than to believe there must be something morbidly wrong with you in spite of what the doctor says.

We saw in Part I how a constant, morbid fear that there must be something wrong will eventually produce E. I. I.

♦ 3. *Learn to Like Work*

The chances are that you, like most of the rest of us, have to work for a living. As with every other necessary factor in your life, you might just as well like it and avoid making trouble for yourself by not liking it.

A person who has convinced himself that he doesn't like work has a monotonous repetition of unpleasant emotions while he is working, and he is well on the way to an E. I. I. There was a time when I used to suggest to a person who didn't like the type of work he was doing that he find himself a job he did like. But I found that usually such a person didn't like the second job any better than the first. The root of the matter was that he just didn't like work — period.

It is perfectly obvious that anyone not liking work will have a dreadful set of emotions while he is working. And, as is usual with such people, they intermittently find an excuse for not working. Then the economic pressures that go with no income produce an even more dreadful set of emotions.

The loafer is not the happy man. There has long been a myth, half-believed in every generation for centuries, to the effect that the lazy loafer is a happy person. A happy, lazy loafer is such an outstanding envy to the folks who slave for a living that he draws a great deal more comment than most human beings do, and more than he is entitled to. But he is, nevertheless, a very definite exception to the rule. The rule is that most lazy loafers are miserable people. Of 25 lazy

loafers I know personally, only one is outstandingly carefree and happy. And he happens to be a very energetic man, he is merely energetic in unproductive ways.

Unless, then, you expect to end up either in prison or on relief, you had better persuade yourself that you like work. Dislike for work carries with it unpleasant emotions in more ways than one.

We have our likes and dislikes because they were suggested to us, sometimes boldly and outright, sometimes insidiously and slyly. It is very easy, especially if you are still young and not too strongly set in your ways, to keep suggesting to yourself that you *like* work. The stronger and more frequent the suggestion, the better the "take." After a little practice, you can get up in the morning, pound your fists on your chest, like Tarzan, and yell, "Come on, work! Bring on the work!"

A young person in high school or in college is often desperately troubled and bothered about what kind of work he should choose, or what kind he is most adapted to. Actually what choice he makes is not very important. Any person can do a number of things equally well, some people could succeed in any kind of work. The important ingredient is that the individual *wants* to work. With that one quality, he will make a good doctor, a good plumber, or a good teacher. Without it, he won't be worth having around at any kind of a job. What's more, he will be a drag to himself.

If a person likes to work, and has learned the simple joy of doing something well, if he feels pleased at producing something of value to society, he will be generating pleasant emotions for himself all the time he is working, as well as for the chap who hires him.

A person who has more than enough work to keep himself occupied, and who likes work, seldom develops E. I. I. He does not have time to "think." "Thinking" usually means thumbing mentally over troubles. I mentioned earlier in this book that the group in my local society who have E. I. I. least often are the farmers' wives who have eight or nine children,

who take care of their homes, and also work on the farm. They don't have time to "think" or to get sick. As one patient, who had too little to do, put it, "I'm all right until I start to think."

Work is therapy. Liking to work is a wonderful prophylaxis against E. I. I.

◆ 4. *Have a Good Hobby*

A fascinating and creative interest apart from your work is an absolute essential for happy living. Two of our basic needs are the needs for new experiences and for creative effort. A good hobby supplies them both.

Without a hobby, spare time becomes a boring span of time during which our minds are more and more apt to cogitate upon our troubles.

There are any number of interesting and creative hobbies; I do not have to name them for you. On the whole, I would say that the creative hobbies are more satisfactory than the collecting hobbies. But collecting hobbies are not bad.

I remember one patient, a lady in her early seventies, who for 40 years had carried on a monologue of how miserable her abdomen felt. She could occupy hours telling the miserable stories of her visits to the country's greatest doctors, what each did, what each said, what each tried, and how her abdomen emerged victorious each time and continued unimproved or even worse than it had been. There were embellishments and details which varied a bit with each recounting, but even these became old and worn to the immediate family, who were tired of the tale and probably tired of seeing the raconteur live on to tell it yet again. Her children avoided her to avoid hearing the story *ad nauseam*. She added their alienation to the current chapters of her miserable saga.

On one visit, as I listened to her extended story, as I had listened many times before, I managed to get a word in edgewise, saying, "Why don't you get yourself a hobby?"

I received no answer at the time — she went right on into her transverse colon and all the mischief that lay therein. But to my surprise, she called up two weeks later on the telephone and said, "I've got a hobby."

"Good," I answered, "What is it?"

"Button collecting," she replied.

My immediate feeling was, "Oh, pshaw — button collecting!" But since then, I have watched her collect buttons, and I think I'll take it up myself sometime. It has done the intestinal lady a world of good. In fact, it has made a likeable lady out of her.

Now when she hears about a certain button, she will go out searching for it — perhaps, the search may take many days. When she finds the button, she puts it on a card with similar buttons and puts the card up on the living room wall. Now when visitors come to see her, she actually finds it more to her liking to tell them the stories of the buttons than the story of her miserable bowel. Her family is drifting back, interested, also, in the buttons.

One day the lady went to Madison to see the Governor of Wisconsin, at that time Governor Goodland. He was 84 years old, she 74. When she had been admitted to the Governor's presence, she said, "I've come, Governor, to ask you for a button from your vest to put in my button collection."

"I'll be glad to give you one," the Governor replied, "But I haven't anything to cut a button off with."

The lady had foreseen that difficulty. She promptly extracted a scissor from her handbag and handed it to the Governor. That worthy man proceeded to cut all the buttons from his vest and all the buttons from his coat.

As he handed them to the lady he said, "There you are, madam. I'd give you more, but I have to get home."

◆ 5. *Learn to Be Satisfied*

There is one understandable excuse for being dissatisfied: when there is obvious negligence, dishonesty, carelessness, or incompetence on someone's part, for example, your Con-

gressman's. But it is obviously *useless* to be dissatisfied when a situation cannot be altered, or when dissatisfaction can be seen to be entirely useless.

For instance, you meet people who are obviously disturbed by the weather and, just as easily, by everything else. Living in chronic dissatisfaction is about as close to living in Hell as anything the world has to offer. The real tragedy is that it is so useless and unnecessary.

You remember the twin sisters I went Christmas shopping with. The one found it just as easy, and much more pleasant, to be satisfied with all the things her sister found it necessary to be dissatisfied with.

This habit of dissatisfaction is often acquired innocently by a child living in a family where one or both parents are continually at odds with everyone and everything else.

Other people acquire the habit of dissatisfaction in a different way. Albert was a boy who was awkward and "queer." The other children loved to use him as a scapegoat for their cruelty. Albert gradually came to suspect and dislike all other people. He came to dislike things other people liked or thought important. Today he registers dissatisfaction with everything and everyone, excepting himself, whom he is unconsciously defending in everything he does and thinks.

A few others become habitually dissatisfied because a series of misfortunes has soured them on everything, and they weren't originally equipped with the fortitude to rise above it. This kind of thing is apt to happen to the man or woman who picks a lemon in marriage and then has to live with it. There are so many people attached, really tragically attached, to marital lemons that it is a great credit to *homo sapiens* that so few murders are actually committed. Henry once told me the secret, and Henry knew, for he was irrevocably riveted to about the sourest lemon I ever saw. Well, the secret, Henry said, was to cultivate a taste for lemons.

If I ever have enough money to erect a statue to anyone, it will be a statue for Henry. Henry, through 33 horrible years, took a terrible, unmerciful beating; while he took it,

he maintained a cheerful disposition, a warm, friendly outlook on the world and an unusual degree of good will toward men. There have been saints who were not half so deserving. And many men like Henry are flowers born to blush unseen, and waste their sweetness on the desert air. I hope someday I can raise enough money for a statue, or a sculptured group to praise them all.

A classic example of dissatisfaction. A young lady patient of mine had to be hospitalized with emotionally induced illness. She was a mess. Her underlying trouble was that she had become thoroughly dissatisfied with *everything* in her life. She had been educated in an excellent eastern school to be a secretary and had a wonderful position in Washington, D. C., when World War II came along and brought a certain young handsome army captain in and out of the office in which she worked.

One and one add up to four — I mean two, at first — they were married and had two children by the time the war was over, over, that is, for everyone but Ellen. Then she found herself living in a trailer, bringing up her children in a trailer (soon there were three).

The first time I was called to see her, she was in bed at one end of the trailer, and the captain stood wringing his hands at the other end. She told me then, in no uncertain terms, and in a voice that made the captain's fingers white, that she didn't like housekeeping "A-tall," AND she didn't like living in a TRAILER, OR keeping house in a TRAILER, AND bringing up children in a TRAILER was TERRIBLE, AND (this she didn't say, but implied) she wasn't sure she liked her husband in a TRAILER — AND she CERTAINLY wished she had stuck to her secretary's job in Washington.

I was sure, from other remarks, she was dissatisfied with her physician since he wasn't getting her over her nausea and dizziness. She welcomed the idea of the hospital for the simple reason it took her out of that so-and-so trailer. Without giving her a diagnosis, I *ordered* her (we were past the sug-

gesting stage) to send to the library for the four Pollyanna books they had.

Now, many people may consider them silly books, but usually the people who call them silly are on the defensive because of a rotten disposition, and they half-way know it. Anyway, the young lady read the books. I didn't say a thing; at the moment, she was enjoying the hospital.

One morning she volunteered her own diagnosis. I had known all along she was bright enough. She said, "I've been thinking, or trying to think. Good Lord, what a little fool I am. I've been dissatisfied with keeping house, I've been dissatisfied at having to bring up children in a trailer, I've been dissatisfied with my husband because he couldn't provide something better, I've been dissatisfied because I'm not a secretary with a good job.

"All right, Doc, I've been thinking — I'm a damn fool. I can't change this, at least not right away. You and Pollyanna win; what am I making myself miserable for? Here's the answer: Keeping house in a trailer is, after all, very easy and no trick at all. If Jud and I don't like the view out of our living room window, we can move the trailer and get a better view.

"As for bringing up children in a trailer, there is a great expanse of outdoors for them to run around in, and you don't get that on 33d Street. I'm going to make a go of it, and I'm going to start planning a little house, the kind Jud and I want some day. AND — bless me — I wouldn't trade this for the best secretarial job in the world."

You see, *she had the idea, the simple idea, that it's easier to be satisfied than dissatisfied, and much healthier.* She read all the Pollyanna books — I guess there must be about 16. She quickly learned the art of being satisfied. She evolved her own little mental tricks and had a lot of fun doing it. It wasn't long before she was perfectly well.

As I say, she really had a great deal of good sense. She soon found happiness in her family. Finally they moved into the house she and Jud had dreamed of. I like to visit them to see

how pleasant and cheerful a family can be when they understand how important it is to stay that way

It's not hard to feel good. In regard to satisfaction and dissatisfaction, remember two things.

First, it is as easy, and much pleasanter, to find elements of satisfaction instead of dissatisfaction in the daily run of events. All that is required is *the will* to feel satisfied. The wise individual knows that life is one damned frustration after another if you allow yourself to be frustrated, but it is also one satisfaction after another if you are determined to be satisfied. *Trouble is where you make it*

Don't want what you can't have. Secondly, another trick for dispelling dissatisfaction is to quit *wanting*, wanting this, wanting that. This, of course, goes back to our first aid, which was cultivating the simple and the things at hand. I knew a man of moderate means with a large family, who made himself miserable wanting things he couldn't afford. First, he longed for an expensive camera. He worked himself into such an irritation of desire that he finally bought it, although he could ill afford it, and his family could afford it even less. When he had that, he began to fairly itch for a power saw and could think of little else until he had that; next, he had to have a drill press. And so it went on. He was always dissatisfied with what he had and thought he needed more. His family, meanwhile, were deprived of much they really needed.

It would have been just as easy for this man to have found pleasure in things that it was easier for him to have. His education had been faulty, there had been no one to show him how to find enjoyment without expense. With a little help he might have learned to enjoy the beauties and wonders which surround us on all sides. Had he invested a dollar for a copy of Gilbert White's, *The Natural History of Selbourne*, he would have found there is more in a simple walk than in a houseful of gadgets.

Learning the trick of being satisfied goes a long way toward making us well-adjusted, efficient, happy, and the possessors of a rich and rewarding life.

♦ 6. *Like People and Join the Human Enterprise*

In a world where people live next door to each other, rub elbows in the subway, and meet bumper-to-bumper on the highways, it is disastrous to emotional stasis to take a dislike to the race and to the individuals who comprise it. Letting people get in your hair is far, far worse than getting bats in it. There are many more people than bats.

Some people dislike everybody. It is surprising in meeting people with E. I. I how many people there are in the world who dislike practically everyone, from the president, whom they have never met to their next-door neighbor, whom they wish they had never met! They have nothing complimentary to say about a single soul, and are very derogatory toward everyone. Their immaturity has isolated them in a shell. Yet they *have* to live in the world of people. The extent of their cooperation in the affairs of people consists in getting what *they* require out of society.

One of my patients was a man who had risen to be the superintendent of a manufacturing plant employing six thousand people. He was sick. In the beginning of his illness, he would suddenly be overcome by a spell of weakness, trembling, dizziness, and vomiting. This occurred whenever he went to his office, which he shared with the other assistant manager. These spells became more and more frequent, and, before long, he began having them at home whenever he merely thought about his office. Naturally he lost weight, and both he and his wife were quite certain that he had some serious malignancy and his days were numbered.

The root of his trouble was that he didn't like the other assistant manager who occupied the same office with him. He said, "The first time I saw him, I didn't like him. I didn't like the way he combed his hair. I didn't like the way he whistled through his teeth, and the way he always started every sentence with the word 'listen,' and ended every paragraph with 'don't you know.'"

On questioning him further, I learned that he had never liked anyone. He hadn't liked his father, his mother, his brothers and sisters. He couldn't say that he cared for his wife. In short, he had never liked anyone.

He was a surprised man to find that he recovered from his illness when he began to suggest to himself the things he could find likeable about the man he had to work with, to assure himself that this man had likeable qualities, and to take the trouble to cultivate him and take him out for a round of beers.

Most people's peevishnesses are an expression of their dislike for other people. I asked one of my patients to write down a list of his peevishnesses, since he seemed to have so many. He filled out both sides of a sheet of typewriter-sized paper.

The first peevishness he listed was "people chewing gum." "I can't stand anybody chewing gum," he said, "It just makes me grit my teeth." His second peevishness was, "My wife rocking in a rocking chair. I just want to jump up and down and scream when she does that." His third peevishness was, "My daughter playing the piano." And so on, and on. You can imagine how miserable his peevishnesses must have made his family.

These dislikes are essentially childish. Dislikes like this are childish arrests in the selfish, self-centered attitude typical of childhood. Because people so afflicted are in their shell, they either never make friends or they drop the friends they start to make. This they blame not on themselves (Heaven forbid) but on the other people, whom they regard as being incapable of friendship. Next, on finding themselves isolated, they begin to pity themselves and to feel persecuted. They become hypochondriacal and develop deep-seated inferiorities. In all these ways, in addition to the plain irritations which other people cause them, these individuals lead a miserable life.

One of the finest sides to living is liking people and wanting to share actively in the human enterprise, the sum total of the effort the human race is making to get out of the jungle state and frame of mind. The greatest pleasures come by giving pleasure, to the fellow who works with us, to the chap

who lives next door, or to those who live under the same roof

There is no such thing as an "individual" in our society. Each one of us is an "individual-community." If everyone in the United States were to begin today to live entirely as an individual without the materials and services he receives from the community (the people around him) there wouldn't be more than a couple of hundred people alive at the end of a year.

Entering consciously into this human enterprise, feeling one's self a part of the community, and looking upon one's self as an "individual-community" is an important element in maturity.

♦ 7. *Get the Habit of Saying the Cheerful, Pleasant Thing*

There are some people, like Sam, who have never been heard to utter anything but a jarring note. Such a note ruins the present moment, a steady stream of them turns the whole day into a junk pile. Some people do it regularly; usually one hears it from the very high and the very low. The very low think they ought to gripe, so they gripe. The very high think they should sound worthy of their position, so they gripe at the taxes and the political opposition; they lambaste everyone under them.

Hardly a moment arises during an entire lifetime that wouldn't benefit more by a sally of humor or a cheerful lift than by a mean barb or a sharp gripe. I know executives who carry on under tremendous pressure as affably and kindly as a girl skipping down the street. They are the boys who get along and stay out of the hospitals.

On the other hand, there is the great-tycoon variety. They snarl and hiss and backfire, slugging everybody verbally — in short, making constant, ugly asses of themselves. You do not have to envy this great tycoon type, gentle reader, this constantly enraged bull who paws and bellows. You may be sure he is feeling just as miserable as he sounds. In his climb up

the ladder of success, he is just as miserable on the top rung as he was on the bottom rung. The added difference is that on the top rung he is dizzy with his own eminence, and that starts another immature rush of emotions that gives him, as well as those around him, a pain in the neck.

Get up on the right side of the bed. Get the habit of starting out the day right. A neat little trick is to look at your husband, or your wife, when you are both awake, and, even if it is an overstatement, say, "Good-morning, dear; you look fine this morning."

The next neat little trick is to go to the window, look out, and in a beautiful baritone, or soprano, that reaches to the end of the avenue, sing, "Oh, What a Beautiful Morning." Should it be raining, you say enthusiastically, "Ah, what a fine rain. Certainly good for the soil."

Sounds a bit silly, of course, but it pays off. Positively the easiest way to lift your mind out of the mud is to dash off a series of pleasant remarks, or still better, a good funny story. The more adept you become in pleasantries, cheerios, and humor, the easier it is to stay out of despondency, frustration, and E. I. I. Incidentally, good humor is a quality which endears you to other people. No one loves a crepe-hanger. Everyone likes to have someone around who has a sense of pleasantness and humor.

Be pleasant to your family. It is particularly important in family life to develop the habit of pleasant conversation when the family is together. Do not, for your own, your children's, or your digestion's sake, make the family meal a recitation of troubles, anxieties, fears, warnings, and accusations. And what is more important, don't let the feeling pervade your family that everyone is so taken for granted that a pleasantness or kind word is unnecessary. The crabbed note that clangs daily in so many families is a good foundation for many of the neurotic characteristics of later life.

A sense of humor is a wonderful adjunct to common sense. There are various degrees and varieties. Practically everyone can develop a sense of humor if he goes after it.

One of our town's clergymen was about as humorless as a dried apricot. Moreover, it was very difficult for him to engage people in a conversation. He gradually overcame both defeats in this way: every day he read a good story and memorized it. The next day he would tell his story to everyone he met. Every day he would do the same. Usually the person to whom he told his story gave one in return. Gradually he came to recognize a good story when he heard one, and gradually he could pull a story out of his bag for almost any occasion. He became known around the country as the clergyman with the good story. People were happy to see him approach.

♦ 8. *Meet Adversity by Turning Defeat into Victory*

Many people are precipitated into E. I. I. by some adversity. Everything they had appears at one moment to have vanished, and they are completely at a loss to go on. Futility and frustration are piled on disaster. The underlying crack in most of the people who give way beneath adversity is the immaturity of selfishness and egocentricity. The death of a person near to them is calculated in terms of what it means to them, personally, in the way of services lost.

One poor woman who had always been highly selfish and self-centered became hysterical after her husband died, to the point where she insisted that her son withdraw permanently from college to keep her company. "Otherwise, I'll be alone here! I can't be all alone! I've got to have someone here!" and so on. No real thought or kindness for the man who had passed away, or for the son whose life she was continuing to ruin.

Do you remember William — King of Living — we talked about in chapter 8? At the time his wife died of a malignant disease of the intestines, he was in the hospital convalescing from an operation for the same thing. No married couple had ever been more firmly attached to one another, nor more appreciative of each other's company than Mr. and Mrs. William had been.

He took the news of his wife's death thoughtfully. He considered it silently for a few minutes. Then in a very appreciative, straightforward tone, he began to tell of incidents which illustrated what a remarkable and fine person his wife had been. After that he never referred to her or her death. He never bemoaned the fact that now he would be all alone. When he left the hospital to return to his two rooms, in which he was now to be alone, he did so without a mention that it would be changed or that the rooms they had called "home" would be without the presence of his wife.

When I called on him there, he was just the same as before, he was just as cheerful, he was just as interested in the great wide world as he had ever been. He never dropped a note to indicate that his life was different now, or empty. Soon he was out and around, talking to old friends (and everyone is his friend), apparently unperturbed.

A few years later I met him on the street outside my office. "Well, howdy, Doctor," he said, "You look as though you had to get somewhere fast."

"No," I replied, "No hurry, just a habit. I'm on my way to see a type of patient one always hates to see — a woman who has been upset and in bed ever since her husband died four months ago." Then I added that few people were able to handle adversity the way he could.

"It isn't hard to do," he said, "if you keep your feet where they belong — on the ground. When you can't change something — you'd better accept it, and figure out how you can keep living the best possible way. When a man loses his wife, or a wife her husband, what is mourning but just plain feeling sorry for *one's self*? There are long philosophical arguments leading up to that last statement, Doctor, but you're too busy to hear them right now. I'll give them to you later." He laughed, and walked on.

♦ 9. *Meet Your Problems with Decision*

In the multitude of practical problems you are obliged to meet in the course of living, you cannot possibly always be

right, or make precisely the move that would be to your greatest advantage. But if, by and large, you can act using the principles and aids you are reading about in this chapter, your mistakes will not loom large or be very important.

Furthermore, *it is better to adjust your thinking to allowing and admitting a few mistakes than it is to keep milling and turning every little problem over and over in your mind.* Doing that results in a troubled, apprehensive outlook that will certainly produce E. I. I.

Of the total number of decisions we have to make, only a very small percentage will be improved as the result of long continued study and consideration. Also, a great many of the decisions fall into the same category as deciding whether one wants to buy the pink-flowered set of dishes, or the dishes with the gold design. These are decisions in which the issue is usually of a minor nature, either of two actions will do perfectly well

The best rule to follow, therefore, is to make your decisions without a long huffing, puffing, rumpus, and fuss. Decide what you are going to do about a problem, then quit thinking about it.

One of my patients had a severe recurrent fibrositis, so severe that she would be in bed with it at times for weeks. No type of therapy would do the least bit of good. She was a very vigorous and self-assured individual, and I knew she would resent my telling her that her fibrositis was due to a wrong set of emotions. However, seeing her in a few of these attacks, I was certain that there was a recurring factor in her life that was responsible for her attacks.

I was planning on how I could most diplomatically bring this to her attention, when (to my relief), she offered her diagnosis of her own accord, "I think I know what is bringing these attacks on, Doctor. You may disagree with me, but I am sure by this time that there is some sort of a connection. My idea may be all wrong, but I've noticed that every time my husband gets into one of his terrible scrapes, I get an attack of my pain and have to go to bed."

"You are perfectly right," I assured her, "I was just getting ready to suggest the same thing"

"Well, Doctor," the poor woman asked, "How am I possibly going to handle it?"

"You must, of course, continue doing your best to help your husband, and get the best help for him. On the other hand, he has gotten himself into a particular rut which he is likely to stay in for some time. Every time he precipitates himself into a mess, and you know he will continue to do so, *decide at that time what you are going to do about it, then make yourself quit thinking about it.* It is turning the thing uselessly over and over in your mind, even after you know what course you will take, that is the thing that brings on your fibrositis."

She practiced this simple instruction with understandable difficulty at first. But it gradually became easier as she practiced, and the husband gave her plenty of practice. Finally, when the tremendous decisions came, which she always had feared would eventually come, she was well enough practiced that she could pass through them with a minimal amount of somatic disturbance, and had nothing nearly as severe as her old fibrositis.

Some decisions just can't be made. In our living we are apt to come upon a piece of trouble (and it is usually a tough, large piece) to which there is no apparent solution. The important thing in handling this variety of trouble is to tell ourselves that *there is no solution other than to QUIT THINKING ABOUT THEM.*

Mrs. K—— had a family of three children and a husband who had been drunk just about every day for fifteen years. The depths of misery to which that woman and that family descended are beyond simple description. Every possible treatment and approach had been tried to break the man of his drinking habit. None had more than a very short beneficial effect. For certain reasons, the woman did not wish to divorce him. Her misery, and the children's misery, grew deeper and deeper.

Then one day she came to an important decision.

She said to herself, "We had better give up the idea that Albert ever can, or ever will, stop drinking. From here on in, I'm not going to torture my mind anymore over Albert or his drinking. We'll take care of him, of course, but we'll quit worrying about him. Instead, I am going to devote every energy I have toward making the rest of my life, and my children's lives, as happy as they can possibly be under the circumstances."

She realigned herself in relation to her problem.

She was admitting that her problem was insoluble, and that there was no use expending any further worry or thinking upon it.

Her realigned efforts worked wonders. She was like a new woman. The children began to take on a new dignity in place of the beaten looks they had worn so long.

♦ 10. *Make the Present Moment an Emotional Success*

Getting rid of lousy emotional habits should not and need not be a complicated procedure. Above all, keep it simple. Reduce it to the terms of a common denominator — *keep your attitude and thinking as cheerful and pleasant as possible* — RIGHT NOW.

The only moment we ever live is the present moment. It is the only time *we ever have* to be happy.

Some people live on an expectancy basis, always looking for something in the future, completely losing the only value they have — that which is in the present moment.

The boy in high school anticipates college, in college, he anticipates the joy that will be his when he gets an engineering job. When he gets his engineering job, he believes that joy will come when he marries Mary and has a home; and so he goes on anticipating.

There finally comes a time in his life when further anticipation is no longer rosy. That point is accompanied by a tremendous reorientation of thinking, values, and emotions. That is the point where the individual begins, visibly, to look

old, licked, and beaten. At that point, too, anticipation is metamorphosed into thinking about the wonders and glories of the past (which are past)

Plan for the future, but don't brood on it. Naturally, we have to plan for the future, but we shouldn't make our present moment a constant thinking about it. Beyond the necessity of providentially planning the future, constant thinking of it and living in it, entail fear, concern, and apprehension.

It is utterly silly to be constantly worrying about what the future may do to our affairs, cattle, health, children, yes, even our life after death. Being upset over the future isn't going to alter it a great deal. Most of our worries are interest we pay ahead of time on things that never happen.

The best insurance for a satisfactory future is to handle the present hour properly, do a good job of living now, be effective in your work, your thinking, your pleasantness, your helpfulness to other people, **RIGHT NOW**. Yes, **RIGHT NOW**. The future will turn out to be as good as your present if you keep on handling **THE PRESENT MOMENT** correctly. That's an important trick.

◆ 11. *Always Be Planning Something*

A basic psychological need in every person is the need for new experiences. Without new experience, life sags down into a rut of interminable drudgery.

To have *the expectation* of a new experience coming up is always a lift to the present moment, and you should always be planning an experience. It may be only a day's outing, or a half day of something on a Sunday, or merely a new feather in your hat. Your planning needn't be anything elaborate, except on rare occasions. The important thing is that it be *new experiences you are looking forward to*.

The planning is just as beneficial in supplying the right kind of emotions as is the new experience itself. Barney Olds, whom I could just as well have used instead of William as an example of the king of living in chapter 8, was a man who

had met one catastrophe after another with superb equanimity, resignation, determination, courage, and cheerfulness. He finally had an illness that kept him in bed for three months; then a recurrence kept him in bed for a solid year. He never complained.

I said to him once, "Barney, don't you get tired of being in bed?"

Barney laughed heartily, "No. I have a good appetite, that's half of living. *And every day I have a good cigar*; that's the other half."

Barney enjoyed life more, confined to bed, than most people do on a holiday. He loved to plan trips to distant parts of the world, to Tibet, Manga Reva, to Tasmania, and so forth. He would write to travel agencies and steamship companies for information. He would get books and literature from the library about the place he was "going to." At the end of each "trip" he knew as much about the land of his destination as though he had actually been there. One travel agency was afraid it was missing Barney's business, and sent a representative to see him. After that, the travel agency helped Barney play his game by sending him copies of official tickets to the places he was "visiting." Barney enjoyed himself all the more.

◆ 12. *Don't Let Irritating Things Get Your Goat*

In almost every moment there are worries or irritations that would get under your skin IF YOU LET THEM. It is hard to conceive of a single irritation, at least in the usual run of things, that *ever needs* to get under one's skin.

Whenever you are confronted with an irritation that is knocking and trying to get in, try the trick of forming the "magic circle" with your forefinger and thumb, holding it out before you, and say, "Nuts to that. I'm not going to let it get under my skin." A little practice with this magic circle and you will soon be able to say "Nuts" very agreeably and pleasantly to most of the potential irritations that come along.

♦ *The Best Part of Being Human Is That You Can Learn*

By including these twelve items in your general attitude, you will make a big stride toward emotional stasis and maturity. Living will begin to take on a general glow of enjoyability. You'll find yourself changing in very fundamental and effective ways, you'll begin to feel the grand feeling of "Boy, I feel good!" and life will become enjoyable.

The really best quality of human beings is that they can always learn something new, once they see the necessity for learning it. In my practice, I have seen hundreds of people rise to that capacity and turn themselves from a state of emotional stress to a credible state of emotional stasis. If that hope and that possibility did not exist, I would long ago have left the practice of medicine for other fields, because more than half of the practice of medicine is curing E I I.

Before leaving this chapter, I wish to anticipate a question that is frequently brought up, "Why don't you include religion as one of your aids?"

♦ *Religion and Emotionally Induced Illness*

The answer is in no way a disparagement of religion.

It is true that many people are relieved of emotional stress when religious faith comes into their lives to occupy the vacuum that was made by the lack of one of the basic psychologic needs that are discussed in Chapter 14. These are people in whom there is a deep sense of insecurity, or people in whose lives there has been a great lack of affection or a minimum of recognition, or people who have a deep feeling of complete personal incompetence.

But it is equally true that religion, per se, neither increases nor decreases the individual's chances of getting E I I.



The clergy and strongly religious people have E I I just as often as non-religious people.

One excellent minister, for instance, developed a very bothersome colon because of the terrific pressure of work

that the great charge under his care entailed. Another good churchman had marked dizziness, weakness, and headache as a result of a prolonged and tough campaign to raise money for a new church. These, of course, are stresses of the type anyone might have. But sometimes the stress arises out of religion itself as in the case of the militant and crusading minister who was greatly concerned and disturbed over the wickedness of his small town congregation and who succeeded, after a violent campaign, in bringing them to do as he wished. The physical effect was a prolonged dyspepsia, which finally became a frank ulcer.

It is evident in medical practice that a religious person needs the attitudes we are presenting in this book just as much as the non-religious. As a matter of fact, the attitudes presented in this book will beautifully augment and complete religious living, because the attitudes that comprise maturity are exactly the things the great teachers of ethics have always been driving at.

KEY POINTS IN CHAPTER 9*Important Points to Watch in Living*

- 
- 1. Keep life simple.
 - 2. Avoid watching for a knock in your motor.
 - 3. Learn to like work.
 - 4. Have a good hobby.
 - 5. Learn to be satisfied.
 - 6. Like people.
 - 7. Say the cheerful, pleasant thing.
 - 8. Turn the defeat of adversity into victory.
 - 9. Meet your problems with decision.
 - 10. Make the present moment a success.
 - 11. Always be planning something
 - 12. Say "Nuts" to irritations.
- 

10.

ACHIEVING EMOTIONAL STASIS IN THE FAMILY

♦ *The Family Is Our Number-One Cause of Disease*

The most important single educational factor to which most people are subjected is the family in which they grow up. Because of the amount of time a person spends in the family and the authoritative nature of the control which the family has over our early thinking the family has more to do with molding our personalities and our ability to handle living than any other factor.

In view of this tremendous effect the family has upon its charges, it is very sad that such a tremendous number of families are muffing their opportunities, and are doing a poor job.

It is very obvious, in seeing patients in the office, that our families are by far the greatest cause of wrong emotions our society has. Not only in their childhood families do so many people contract emotional stress, but equally in the families of which they have themselves become a head. The family —

our past family, and our present family — is by far the most common cause of E I I., by far our most prevalent disease.

The saddest part of this family failure is that with a small amount of steering the families that have been off-center for generations might be guided into the proper channel, where they would become an effective educational factor for good. But, as in other fields of emotional guidance, there are no organized programs for accomplishing such an improvement.

First, let us review the family atmospheres that produce immaturity and emotional stress.

♦ *Family Atmospheres That Produce Stress*

1 **A kill-joy atmosphere in the family.** One of the common family atmospheres productive of the wrong kind of emotions is the KILL-JOY ATMOSPHERE. In such families a dismal, pessimistic attitude toward everything prevails. "Oh, what do we want a picnic for anyway? It will probably rain, if it doesn't, the ants will eat everything up." In families like this, joy is nipped in the bud before it ever starts to bloom.

Betty came from a family like this, a family of constant gloom. Like the rest of her family, Betty had no sparkle or lustre, nor did any of her known ancestors. Her family life provided her with none of the qualities that would make her popular at school. Betty was passed over by the students and by the teachers, it wasn't a dislike they had for her, but she was so negative that she always faded out of consideration. She was just never invited to other children's homes because a gloomy atmosphere always attended her presence. Betty's mother never invited other children over to play with Betty because her mother was gloomy and didn't like fun. And, of course, Betty developed a gloomy attitude toward her own physiology, the same attitude her mother had regarding her own health.

By the time Betty was 13, she was a confirmed hypochondriac. She was apprehensive of every manifestation that her gloomy emotions produced, until her health, or her supposed

lack of it, became her major concern. She joined the great and numerous Symptom-a-Day Club. When she awakened in the morning, her first thought would be, "How am I sick today?" After she was 13, Betty was not without medical attention any year of her life. Her apprehension concerning her health was strongly augmented by her mother's insistent concern. By the time she was 40, she had had four operations and a surgical menopause.

Betty's father, as well as her mother, was a glum pessimist, entirely taciturn and humorless. He was that way because of the family *he* was brought up in. The line of such families probably went back to neolithic times. He was the "Sam, King of his own stew" you read about in chapter 7 whose wife said that possibly he had said something pleasant the first year they were married, but that it was so long ago she could no longer be sure.

2. The critical atmosphere in the family. Another family atmosphere that breeds the wrong kind of emotions is the CRITICAL ATMOSPHERE. In such families, the atmosphere is charged with criticism of everybody. Usually the father starts it originally, but it becomes so universally prevalent among all the members of the family that all a visitor can say is, "Who flang that last brick?" An argument in the family is frequently this, "I'm not either losing my temper. You're the one who is losing your temper." As a matter of fact, all of them have permanently lost their tempers.

Barbara had the misfortune to have been born into a family like that. As she grew up she became, of course, the mirror of the family, and carried the atmosphere of criticism to school with her. In school she had a great deal of trouble because of her critical attitude toward the teacher and children. And at home her life consisted in running a critical gauntlet in which all the other members of the family were arraigned against her. At ten, Barbara had emotionally induced illness.

Cold war in the home. There are some families in which the critical atmosphere is maintained in the form of cold

warfare instead of more or less open flinging of bricks. The criticism here is in the nature of sharp cutting insinuations, often delivered in dulcet tones. Clifford was a master at this sort of thing, when he and his wife Betty had guests in of an evening, Clifford would get in a cutting criticism of Betty by saying at the bridge table, "Better not let Betty keep score, she'll just get our accounts hopelessly bawled up," insinuating that Betty couldn't keep her household accounts straight. Or he might say conversationally, "At our house we never know when or where we're going to eat until the can is opened."

This sort of thing, which went on year after year, always hurt Betty a great deal, and as time went on, Betty was sick a great part of the time with emotionally induced illness. Notice that Clifford, who was responsible, was hit by the boomerang of having to pay the medical bills.

Critical influences from outside the family. Sometimes an illness-producing stream of criticism may issue from an odd source in an otherwise normal family. Jane was a fine girl and married George, a fine boy, who was deeply in love with her, and who, in a very understanding way, took good care of Jane. Jane's life was going along splendidly until she brought her first-born home from the hospital. George secured the services of a practical nurse to help Jane with the housework and with the baby.

This practical nurse was an old-timer who knew everything better than Jane did, or the doctor did, for that matter, and she openly criticized the way in which Jane was handling the baby. She would criticize everything, including the formula the pediatrician had given the baby. She would make remarks, "I don't think the baby is getting along well. There is something wrong with it, it just doesn't act like a baby should." Then Jane would cart the baby off to the pediatrician who would assure Jane that the baby was perfectly all right. Whereupon, back home, Old Battleaxe would remark, "Well, you know sometimes these doctors don't tell you everything."

As this sort of thing continued, Jane began to feel poorly

without knowing why George and the doctor, at first, did not know what was wrong, either. Then they both caught on. Jane was a capable girl, intelligent and alert. Her baby was a great event to her, a great challenge and opportunity for intelligent, creative motherhood. But the Old Battleaxe had completely deflated Jane's confidence in herself and had sent her into a state of constant worry and deep-seated concern. When the doctor and George found Jane's trouble, the remedy was simple and George applied it promptly. He fired the Old Battleaxe. Jane was soon getting along fine.

The remedy isn't always that simple. Barbara, for instance, couldn't fire her father and mother.

3. **The atmosphere of dislike.** Another common family atmosphere which produces the wrong kind of emotions is the **ATMOSPHERE OF DISLIKE**, or the atmosphere of lack of affection, an atmosphere that is fatal to anything good that the family as an institution stands for.

Usually this atmosphere of dislike stems from the basic fact that father and mother do not like each other, and the only reason they hang together is "for the children's sake." In the atmosphere of such a home, the children quickly learn not to like each other. Love, or dislike, comes to children largely by example. The parents have no genuine affection for the children, and the children reciprocate with even less.

In this kind of family nobody wants any of the other members. No one is necessary to anyone else, and when a person feels he isn't necessary, he never develops full mature individuality. No one in a family like this is made to feel important or desirable for himself. No one ever gives or receives any appreciation. Life is like eating dried, tasteless prunes.

Ellen was the youngest of seven children in a home where no one really cared about anyone else. Being the youngest, she was the target of everyone else's ill will. Every member of the family was criticizing Ellen as soon as she was old enough to understand. "Oh, she's dumb." "She isn't going to be able to get through school." No one ever helped Ellen.

By the time she got into school, she had a deeply grounded

inferiority complex. She looked past her teachers because everyone told her she was stupid. When Ellen, after a hectic childhood, at last grew up, she married a boy who had had the same kind of a past and the same kind of an inferiority complex. When she had children, she was sure she lacked the ability to rear them, she had no confidence in her ability as a housewife. Hers was a constant life of worry.

Ellen has been sick most of the time since childhood and is still sick today. It is not so easy to correct the factors in her illness as it was in the case of Jane, George, and the Old Battle-axe.

4 **The atmosphere of selfish egoism.** Another family atmosphere that breeds the wrong kind of emotions is the ATMOSPHERE OF SELFISH EGOISM, which is a little different from the atmosphere of criticism, although it, too, usually starts with the father.

Virginia, who had been doing all right alone, married a boy who was a pathological egoist of the kind whose only concern is himself. This was not immediately apparent in Roger because he was the kind of an egoist who doesn't talk about himself. But every thought he had was for himself. When Virginia married him, of course, she didn't know what she was getting in to.

Roger was decent enough, but he used Virginia solely for his own purposes. Roger was addicted to hunting and fishing, and that's what he was forever doing — without taking Virginia along. Outside of that, he liked to play cards, and bowl, so he did that. Virginia was alone at home most of the time. Roger liked only a few foods, so they were what the family ate. Roger's work took him on the road much of the time, and Virginia was alone at home bringing up one, two, three, and four children. When Virginia began to complain about not feeling well, Roger had no sympathy and no patience.

Today, Virginia is a very sick girl and her health will not readily be brought back to normal. Roger does not see what *he* has to do with her health, and he now regards Virginia

as an obstruction to his pleasure. Virginia's children are mal-adjusted and are functionally ill too

5. **The complaining atmosphere.** Another bad atmosphere in a family is the COMPLAINING ATMOSPHERE. No family is more miserable than the one that has in it a perennial and perpetual bellyacher. Most often the bellyacher is the mother, although I have seen families in which it is the father.

When a family contains someone who is constantly complaining, there is no possible enjoyment for anyone. These complainers awaken in the morning and start analyzing themselves for symptoms. It's usually easy to find a symptom somewhere, especially in the morning before you've had breakfast. Everyone of us has a pain somewhere or other most of the time, if we wish to make something of it. If you ask yourself, as you sit there, "Where do I hurt?" you can find a place that hurts. These complainers are forever looking for those places and allowing their minds to play over the painful areas all day long. The most pitiful part is that they paddle the rest of the family with their miseries.

In 99 cases out of 100, these complainers have nothing more wrong with them than an emotionally induced illness, but to hear them expound on their health, you would think they were fully equipped pathological museums. In the family they succeed in producing an atmosphere of gloom and anxiety, and these are the elements the children acquire. Gloom, anxiety, and hypochondriasis is the educational influence such families give their children.

In addition to making the family miserable, these complainers are poison to the bank account. One lady had, during the course of her miserable life, seen fifteen doctors, four cultists, two spiritualists, and had eight operations, had been in three sanatoria, and had spent a total of \$32,000.

6 **The atmosphere of fear and anxiety in the family.** One businessman I know gets up in the morning with an anxiety, and jumps anxiously from one anxiety to the next until he goes to bed, and then keeps himself awake with more anxieties.

For instance, *every morning* he hesitates and debates what particular tie he will wear, and sometimes goes into a dither over it. At breakfast he worries whether he is using too much sugar on his cereal and immediately wonders whether he has diabetes. Driving downtown to work he will debate with himself whether to take one street or another and, having taken one, worries that he should have taken the other, lest fate decree that he have an accident on the street he is on. Coming to his store he worries about the show windows and about the whistling of one of his clerks.

His family has caught the same worrying habit—it's very contagious. His wife picked it up, his children have grown up in it. To them, it is the normal natural way to live. They just haven't experienced any other way.

Some day, if they are lucky, they may be released from the habit sufficiently to realize they are unhappy, that they are personally maladjusted, and that they have emotionally induced illness.

7 The atmosphere of in-law domination. Another atmosphere that can be very bad for the family's emotions is the **ATMOSPHERE OF IN-LAW DOMINATION**. In-law domination may be very obvious and yet not easy to deal with.

Helen was a fine young lady who hailed from Philadelphia. She married a young man and went to live in his home town, a small village of 250, loaded with his relatives, some of whom were Banshees. Some of these relatives saw Helen settled in a new modern house and felt that Helen was getting the deal *they* deserved but didn't get. They made good every opportunity to pick on Helen, to hurt her in little underhanded ways. Helen became ill, and after a while she was too sick to work. Then the Banshee relatives really swooped down on her like vultures, and finished her up. After that, the only time Helen ever felt well was when she returned to Philadelphia for a month's visit. In the course of a few years she became practically incapacitated by functional disease. She was finally carried off the battlefield by the divorce court, and within a year she was back to her normal self. Ever since then she has been well.

Young people should live by themselves. With few exceptions, it is best for young people, just starting out, to live independently and far enough removed from their elders to have complete control and command of their own families. In close proximity, parents are always finding it easy to offer suggestions, if not orders, a thing which neighbors do only when asked, but a thing which parents are apt to do when not asked. In one family where the newlyweds lived in the same house with the parents, the mother-in-law was well-meaning and only wished to be helpful. The daughter-in-law, too, wished, above all, to get along with the mother-in-law. They did get along, seemingly very nicely, but with the mother in the lead and guiding position, which frustrated the daughter-in-law's need for independent, creative living. In-laws, grandmothers, and grandfathers had best live apart from the children and allow the children an independent life.

♦ *A Family Doesn't Need to Be a Bad Influence*

Those we have reviewed are, of course, only a few of the bad atmospheres that make our families our most important breeding ground for disease. In a physician's office, it becomes apparent that a great many families are doing a perfectly rotten job and are providing their members with the wrong kind of emotions. Many other families are not doing as good a job as they might.

The pitfalls that a family can fall into are so numerous that it might seem discouraging to the well-intentioned homemaker or the intelligent newlywed.

However, there is no need for discouragement.

If you introduce into the family atmosphere the same rules that bring emotional stasis to the individual, you will have a family whose influence on its members is a healthy one. You will have an atmosphere which develops maturity. You will have a family that is a unit of enjoyable life for everyone in it.

◆ *Home Is the Place Where —*

Robert Frost once said, "Home is the place where, when you have to go there, they have to let you in."

We can paraphrase that to define what a home *should be*: "A good home is the place where, when you desperately need a lift, you'll be sure to find one." A *lift*, you understand, not more irritation, not nagging, not arguments, not a scathing look, not a lack of sympathy, but a *LIFT*.

Your first job, as a member of your family, is to keep your attitude and your thinking calm and cheerful — **RIGHT NOW**.

Your second job is to help the other members of your family keep their attitudes and thinking calm and cheerful **RIGHT NOW**.

Here are a few ingredients to work into the daily living of your family

◆ *Family Atmospheres That Produce Emotional Stasis and Maturity*

1. **Emphasize simplicity in living and simplicity in enjoyment.** As the American standard of living has increased, a greater and greater array of mechanisms have been dangled invitingly before the consumers' eyes. The trend in American living has been to put so much emphasis on the means for enjoyment — fine houses, automobiles, better television sets, cameras, electric ranges — that in the process of getting the means, we provide ourselves with frustration and anxieties. Yearning, longing, and then paying the installments become so constant we never learn how, indeed, we never have the opportunity to learn how, just simply to *enjoy*.

The way to proceed is to learn the art of enjoyment first. Minimize the need, or the longing in the family, for new installments. **RIGHT NOW** enjoy what there *is*: the green of the trees, the blue of the skies, your own whistling, having fun with each other. Leave out conversation of yearning for what you haven't.

The idea is to utilize the little, ever-present opportunities for pleasantries, the immediately available chances for a humorous sally, the RIGHT NOW moment for being nice to each other

2 **Get the idea of the family enterprise.** As soon as the children are old enough to understand, indoctrinate them with the idea that the family is meant to be a wonderful place for everybody in it; it's everybody's job to make it a wonderful place for everybody else; it's an enterprise for everybody, by *everybody*. The family enterprise is a cooperative effort in which father, mother, sister, brother, all have an active interest and a personal responsibility. The family enterprise is the primary and most important activity and responsibility that father, mother, brother and sister have

Don't forget this, the children will acquire and carry on the family enterprise if mother and *father* do their share. Usually it's the father who is just a boarding and bored member, always off to business, the races, and Heaven knows where. If the top brass takes the proper initiative, the children will invariably follow

The family enterprise becomes a continual round of mutual projects, of things done together, games played together, stories told around the fire, group studies of interesting things and places, Sunday afternoon nature jaunts, yearly family trips to the fair, laughter, conversation, and gaiety *that everyone* (and that includes father) engages in and which everyone helps everyone else to enjoy

3. **Attach the family to the human enterprise.** An important idea to get into family living is that the family is in tune with the wide community which surrounds it. Beside the responsibility the members have to one another in the family enterprise, they have a similar responsibility to the HUMAN ENTERPRISE. This is quite a necessary step in the development of the children's maturity. It is part of that aspect of maturity which consists in turning our ego away from purely selfish considerations out toward the welfare of others. Never to develop this sense of the human enterprise is to bury

ourselves for life in a pit of very stinky little emotions. If the children get the idea that the most important thing for anyone is the welfare and the happiness of the other people in our individual-community, they will have the instrument for producing a highly satisfactory emotional color, and they will find that life is filled with the highest kind of enjoyment.

Furthermore, the idea of the human enterprise in the family brings to the members of the family a kindliness, a sympathy, and an understanding for other people, *which you cannot live happily without*.

Part of the family enterprise consists in projects directed toward meeting, knowing, and helping the great wide world outside parties, "get to know your neighbors" picnics, family trips through industrial plants, family trips into the great wide world, adopting a war orphan, other projects that the family can, as they go about them, specifically label "Human Enterprise." Getting to use the name "Family Enterprise" for one type of activity and the name "Human Enterprise" for another, in itself teaches maturity and awareness of purpose in the children. Whatever helps the children is sure to help father and mother.

4 Develop a family ability for turning defeat into victory. Whatever happens, when events occur that might disappoint or frustrate, the attitude in the family should always be, "We are not going to let that get us down, we are going to make the best of it, and the best is going to be pretty good!" This gets easier and easier to do, and as the family becomes competent in its use, there will be very little that can sour the family's day.

The particular maturity that is taught to the children by the tactic of turning defeat into victory is *flexibility and adaptability*.

The family is all set to go to Parfrey's Glen on a picnic when the rain begins to pour, so what? — yippee — it's just as much fun playing games in the living room with the picnic later on the living room floor.

Handling the lesser upsets in that way makes it easier to

meet the tougher assignments. Mother gets sick and goes to the hospital, everyone pitches in, not only on the work, but in holding up the family morale and mother's morale. It's doubly important, then, that every member keep the family clicking with heads up and chins out.

The trick of turning defeat into victory can become a game, with everyone trying to see who has the best solution for licking the upset, and then all cooperating on the best suggestion.

5. **Without affection, the family is a failure.** General affection is easily generated in a family if there is affection between father and mother. Affection must include everyone equally and must not be partial. Everyone is made to feel necessary and indispensable to the general family operations. Animosities between the children need never exist if they are nipped in the early bud, and if no animosities ever exist between father and mother. If there is bickering, strife, and verbal warfare in the top brass section of the family, the children will almost surely grow up to be bickering and disagreeable. They in turn get married and start another cycle of foolish disagreement and bickering.

A doctor gets tired of seeing these silly nincompoops who lose most of their affection for each other before the first year of marriage is over. It is so completely childish and unnecessary. The answer to any marriage is that you should be mature enough to rise above the problems it entails. With ten cents worth of good intentions, a nickel's worth of sympathy, and a quarter's worth of understanding, affection would grow through the years.

If the parents have affection, one of the rules in the family can be that no one is *ever* to quarrel or bicker with anyone else. That rule is not hard to maintain if the example comes from the top.

6. **The general tone should be kindly cheerfulness.** There is no such thing as the "dumps" in families where everyone pitches in to help the one who, because of some outside factor, needs a lift. Such a home is the place where, when you need a lift, you'll find it.

Here again the example is set by the top brass. If the parents never get crabby at one another, or allow themselves the misery of feeling lousy and mean, a rule in the family can be that no one is to engage in this nefarious activity.

7 Discipline should be reasonable, firm, yet pleasant. Parents in unhappy families probably will not believe this, but in a happy family there isn't much call for discipline. Misbehaving children are unhappy children. If the children are provided with a happy, pleasant atmosphere, two-thirds of your disciplinary problems disappear.

Children must be taught certain fundamentals, like respect for others' rights and for others as individuals. They should be taught to respect their elders, they should be taught the advisability of not flouting convention and living well within the law. Honesty and integrity are absolute requisites.

There will be times, of course, when discipline will be necessary. Then discipline should be based on the reasonable ground that we act thus and thus because that way of acting is for our own good, and we do not act otherwise because it is bad for us and bad for those around us. This basis for action can be explained just as well in a pleasant, well-meaning manner, it adds nothing to do it in a fit of splenic anger. For a wrong action there should be corrective explanation, and then a disciplinary measure carried forward without wavering or retracting. Punishment twice for the same offense will hardly ever be necessary.

8. The family should instill confidence into its members. It is important that the family should give the child a feeling of confidence — not only confidence in financial security, even if it isn't there, but confidence in his place in the family as someone who is respected for himself and as someone who has an important responsibility in contributing to the welfare and enjoyment of the family. No child, however awkward or backward he may be, must be made to feel that he is any less useful or important to the family.

Thus a basic psychological need is satisfied and a step in the development of an important aspect of maturity is made.

9 Mutual enjoyment in the family — right now. An indispensable idea in the family is that family living is a series of mutual enjoyments — every moment and RIGHT NOW. It *means* mutual enjoyment to its members, a pleasant quip or a jolly phrase when father passes son in the hall, or when Mary comes into the kitchen with mother. The family *means* mutual enjoyment, the glad word, the bit of fun, the happy smile — RIGHT NOW

RIGHT NOW, of course, "What are we waiting for — why wait — this is the time — right now — right now is the time to show affection — now is the time to operate the Family Enterprise — *this* is the moment — why wait any longer?" It is perfectly all right to plan for the future, but don't spend your present in the future

◆ *How Does Your Family Rate?*



Stop right now and ask yourself, "What kind of a family do I belong to?" Is it the kind of an enterprise that is producing the wrong kind of emotions, functional disease, personal maladjustments, and unhappiness? If it is, be fair to yourself and admit it

Then take the next step. Set an example

And the next step. Hold a get-together with your wife or your husband, include the children if they are old enough, and talk this over, lay plans to have the kind of a family where, when your spirits are low, you will be sure to find a lift.

THE IMPORTANT POINTS TO REMEMBER IN CHAPTER 10

Your family will become a center of good, happy living, and an influence for maturity and emotional stasis in its members, if you introduce into the family these things:

- 
- 1. Simplicity in living, and simplicity in enjoyment.
 - 2. The idea of the family enterprise.
 - 3. The idea that the family is part of the human enterprise.
 - 4 A family attitude for turning defeat into victory.
 - 5. An atmosphere of affection, mutual respect, and regard.
 - 6. A general tone of kindly cheerfulness.
 - 7. Reasonable, firm, yet pleasant discipline.
 - 8. A feeling of mutual confidence and security
 - 9. An atmosphere of enjoyment – RIGHT NOW.
- 

11.

HOW TO ATTAIN SEXUAL MATURITY

There is one *very* important spot in human living in which people's education has been either *nothing at all* or *worse* than nothing at all. That spot, of course, is sex

More people show immaturity in their sexual life than in any other field of human activity. That is why doctors see so many people whose emotional stress is intimately related to immaturity in sex and sexual matters. There are a tremendous number of people who have made a mess of sex, or sex has made a mess of them.

Maturity in any field has to be learned. How can you possibly blame anyone for an immaturity in sex when no sensible effort is made to show him how to become mature? Where but on society and its institutions responsible for education — the family, the school, the church — does the blame rest for sexual delinquency, sexual stress, sexual mess?

♦ *Biology and Civilization*

The sex instinct is a relatively weak instinct compared to

some of the others. The biological urge for food is *much* stronger, and so is the desire for security. A person can go for a long time, even for a lifetime, without satisfying the sex urge, but no one can stand food and security deprivation very long.

The relative insignificance of the sex instinct is further apparent in the fact that the cooperative effort we call "civilization" is mainly an attempt to supply food and security, *not sexual satisfaction*. Had the sex instinct been the strongest and most demanding of our biological urges, civilization would, doubtless, have been patterned to supply sexual satisfaction.

The biological urges being what they are, and civilization being the kind of thing it is, everyone can be allowed to be promiscuous in eating, or promiscuous in developing security, but it became apparent thousands of years ago that the very basis of civilized society would be destroyed if everyone were to be allowed to be promiscuous sexually. The social and economic consequences of complete sexual promiscuity would be simply catastrophic.

The restraints are necessary. Granting that we want the economic benefits of a cooperative enterprise like civilization, we have taken the only course in regard to the sexual instinct that we possibly could have taken. That course has been to put the sexual instinct into well defined shackles of restraint. And *that* is what provides our sex problem.

The only way to shackle a thing as fundamental as a biological instinct, without upsetting the individual, is to develop a good educational process for showing the individual how he can possibly manage the instinct within its shackles. *But civilization had to curb the instinct long before it developed wisdom enough to devise an educational process.*

Is it any wonder we have the trouble with sex we do? You've got to be careful how you put a cork in a bottle of highly charged liquid. Either the cork will blow out or the bottle will burst.

The more you study a tough problem like sex, the more you become amazed that we human beings get along as well as we do, and the more you become convinced that the bunch of us are pretty remarkable little people. The whole race muddles through.

♦ *The Sex Urge Is Not the Mainspring of the Human Being*

Sigmund Freud and the psychoanalysts have developed the idea that sex is the mainspring of the human personality. It is true that sex causes a great deal of trouble for people for the reasons set forth above, but not because it is the mainspring. It isn't. Sex is, as human biological urges go, a relatively little spring that has been jumping all over the box. It is a spring that has been jumping all over the box because of these factors.

1. Every person is equipped with the sex urge
2. The structure of our civilization makes it imperative to curb this urge to a very considerable extent, so that it still serves the purpose of reproducing our kind without upsetting social and economic structures
3. Although society makes such a curb necessary, society makes no organized effort to show people how they can handle their urge without trouble to themselves
4. There are numerous agencies, within society, deliberately fanning up people's sexual desires, largely because they find it profitable to do so

Many commercial enterprises capitalize on shaking up the fizz in the charged bottle. These efforts to shake up the fizz have never been as prevalent as they have been in the last fifty years, and are one of the chief reasons why one out of three marriages is ending in divorce.

Commercial advertising, newspapers, magazines, movies, television, find "cheesecake" attractive to the unrequited yearnings and earnings of a sexually-uneducated public. It

helps roll the dollars in, but is hard on those whose excited sexual desires get them into emotional or legal trouble.

Some youth (or immature adult) who is having trouble trying to adjust his sexual inclinations opens a magazine (any of our better weekly magazines) and he finds stimulating "cheesecake" on every other page. The sexual longings that he has been trying to stifle are freshly stimulated, his imagination is stimulated, and a fresh set of stressing emotions are stimulated. If he stops there, the youth (or the immature adult) is just plain lucky. He may go on to get into trouble.

◆ *The Popular Brand of So-Called Sophistication Is Immature*

"Sophistication" has become a popular concept in mid-twentieth century United States. A person is not in the mode if he is not "sophisticated," by which is meant a varying degree of looseness concerning sexual taboos. There are, of course, various levels, or depths, of sophistication, beginning with sexy stories in open mixed society (the more shriekingly daring, obviously the more sophisticated) and progressing in ten easy lessons to situations of grossly illegal intimacy, in which the intimacy gradually becomes rancid and the illegality ever more bitter.

The philosophy underlying sophistication assumes that sophistication is sexual maturity — maturity in the same sense we defined it in chapter 7, namely, that *maturity is the capacity to handle human living with a minimum of trouble and a maximum of enjoyment*.

There are two distinct parts to the philosophy of sophistication. Some people subscribe only to the first part, others go along with both parts.

The first part states that treating sex as an unmentionable human misfortune, to be regarded definitely as a sordid affair to be admitted reluctantly even into marriage, is merely to increase the amount of misery that the tromped-upon sex

urge can produce This first part of the philosophy of sophistication is, doubtless, correct. I am in full accord with it.

The second part of the philosophy of sophistication is that sex constitutes a major sport that is always in season, that licenses are free, and the game is to be pursued through all the byways of so-called romance

This second part is a gross error, as most of those discover who have to learn the hard way Almost without exception, the apple that is picked turns out to be much less of a pippin than it seemed to be on the tree, and worse still, it contains a large worm of discomfiture The miscreant realizes too late that it is much easier to stay out of trouble than to get out of it once he is in it.

◆ *The Trouble with So-Called Sophistication*

A person who has strong sexual urges that he represses and denies can develop a severe and serious, acute and chronic, anxiety state But the person who resorts to the liberation of "sophistication" will suffer equally severe anxiety states. He can bring himself, as I shall show you in a moment, to the brink of considering and committing suicide There is no anxiety state more advanced than that.

Even short of the state in which suicide becomes a consideration, the devotee of "sophistication" has other anxiety backgrounds Being apprehended by the law, or being dragged before a court is neither the major trouble nor its culmination There is the personal degrading effect of lying, the constant fear of apprehension, the feeling of guilt. Then there is the broken home, or worse, a home in which things are not going smoothly, or still worse, a home in which growing children are being brought up in a poor atmosphere

What a silly, foolish, "sophisticated" adult does to himself is to a considerable extent his business, but it leaves the realm of private affairs when children are ruined for life because their family gave them wrong emotional patterns and habits

Even the sophisticate acknowledges the futility of "sophistication" when he has arrived at the point where he is ready to jump from a bridge or reach for a pistol. No system of action is mature or good that can possibly bring a person to the brink of suicide. And "sophistication" can. Let me give you a couple of examples.

◆ *Anything That Can Lead to Suicide Is Best Omitted*

Richard Roe was a smart, quiet fellow. At least *he* thought he was. He meant no harm to anyone. He was a good husband, and a good father. Also, he didn't intend to be exactly mid-Victorian. Well, you know — it wasn't infatuation for another woman — not that kind of "triangle" thing, just an arrangement with a person of the other sex who, too, wasn't exactly mid-Victorian, but, shall we say, merely modern or advanced.

Richard carried on for a long time without anyone being the wiser (not even Richard). He thought, "This isn't hurting anyone else. I wouldn't want it to." He met the girl in various ways, at various places.

Then one night they were at a motel they had often frequented. The manager suspected an irregularity and intercepted the couple in the midst of a tryst. Richard had registered under an assumed name as husband of the lady. He was in a legal "spot." In fact, he was in a hot spot. He and the lady left before the police could be called, but the manager had secured his right name and address.

For two days Richard sweated. He came to see me because of indigestion — and told me his trouble. In addition to a physician, he had gone to a lawyer, too.

Believe me, *there was a miserable man*. He was trying to stave off utter and complete disaster. Mind you — **UTTER AND COMPLETE DISASTER**. For two days, Richard was as miserable as any human being could be. Physically *he felt terrible*, and he needed medical aid.

On the third day the motel manager filed his complaint,

at ten-thirty, Richard was given the summons; at ten-forty-five Richard had put a bullet through his head

The newspapers did not print news of the summons. They printed news of Richard's death. The reason why Richard died never got out. The family honor was saved. Richard was not. Richard was dead.

Doctor Mac, let us call him, was a nice sort of a guy, until he decided to give in to the urge and look at life in a broad, serene way (Without any malice, you understand, but why shouldn't there be a little fun? After all, there are the Kinsey reports)

So he made advances and the affair went on, until his accomplice became pregnant. Seeing the commercial value of her situation, she refused to let the doctor perform an illegal abortion (she would have had him there, too) but threatened him with suit.

The woman had come to me for examination when she thought she was pregnant, and told me the story in a boastful sort of way. Doctor Mac faced complete ruin — the suit would have thrown things wide open, of course. But more than that, in the state in which Mac lived, immoral conduct would cost him his medical license to practice. Knowing that the woman was just as responsible for the affair as was the doctor, I tried to talk her out of her intended law suit. She was too silly to listen.

On the first inkling that she had seen a lawyer to start a suit, Doctor Mac committed suicide by taking arsenic. Everyone thought he died a natural death. I never saw the woman anymore, but I read of her drowning a month later.

♦ *More Often, the Trouble with Sophistication Lies This Side of Suicide*

Alwin had been a pretty stable fellow and an astute businessman. Then he came to my office with something obviously functional. He tried to act his usual self. He swore he

had nothing to upset him or worry him. His trouble became more acute and gradually took a new course. He was apprehensive and worried, which was unusual for him. I told him he wasn't fooling anyone by playing anxious-free, and jokingly suggested he was having an affair. Whereupon, he unfolded a lurid tale. He hadn't met any legal noose, like Richard or Mac had, but he was worried just the same.

◆ *It Is Easier to Stay Out of Trouble Than to Get Out*

The point in all this is, why start out on a track that can lead to a spot where suicide becomes a serious consideration, or, short of that, a course that can result in serious emotional illness?

There are communities in which sexual irregularity has become so accepted that discovery is not often attended by anything as drastic as suicide. But I know from personal conversations with the doctors in such areas that functional illness holds a terrifically large place in the lives of the people in these communities.

◆ *Other Forms of Sexual Immaturity beside "Sophistication"*

I have talked about "sophistication" first because so many people mistakenly consider it to be sexual maturity. But there are other forms of sexual immaturity that produce much more emotional stress than does "sophistication."

A doctor's office during the course of a year sees many people with emotionally induced illness because they have brought sexual immaturity into marriage. Less often we see young people, or unmarried people, to whom sexual immaturity is also a source of emotional stress.

◆ *Sexual Difficulties before Marriage*

Youth is as innocent in the awakening of his sex curiosity as he was in his desire to eat, but the attitude of his elders

makes the whole business seem at once bad and yet darkly inviting and mysterious. He is ordered to abstain, and then subjected to numerous varieties of sexual suggestion. Finally, the intimacy and privacy necessary for experimentation are only as far away as the car in the family garage. It, of course, isn't, and wasn't, even in the horse and buggy days, anything like a good or a healthy set-up.

Then we add the final spice, which is that, owing to economic circumstances, marriage must be delayed ten or fifteen years beyond the awakening of the urge.

Here is a spot where a little planning by society, or the development of an educational method, would be an excellent thing. As it is, the advice these young people get is pretty poor and misleading stuff.

Youth's sexual urge leads them in one of three directions. First, the youth may be lucky enough to have someone with the necessary amount of good sense steer him, or her, in the less troublesome direction.

Secondly, they may break down the barriers and experiment with sex, possibly they may break down the barriers forcibly and come up for assault or murder. If they cross the barriers amiably, they precipitate themselves into the types of trouble we spoke of above. Thirdly, they may take masturbation as a way out.

◆ *Masturbation Is Often the Source of Poor Emotions*

Many people come to the doctor with emotionally induced illness because they are worried and apprehensive over a strong unconquerable habit of masturbating.

For instance, a twenty-eight-year-old single woman had tiredness, headaches, and a long string of symptoms because she was sure that her habit of masturbating was wrecking the foundations of her health. Her symptoms had become more severe after she found and read an old family health guide in which the writer stated that masturbation is invariably fol-

lowed by such dire physical consequence as sterility, tumors, heart disease, cancer, and insanity. The author of that article was a far more enthusiastic moralizer than scientist, a fact which the poor lady did not know. She felt that she had all the physical degeneration described by the author, and she was certain that her mind was going too. She had arrived at the point where she was unable to do her usual work.

There is another variety of poor emotions that result from masturbating, that are even more prone to produce E. I. I. These emotions arise because masturbating causes the individual to withdraw into himself and into a dream world of his own making. He develops introvert tendencies, lives in social isolation, and prefers to live in his world of dreams and fantasies. As a consequence, he lacks effectiveness in the real world, he lacks decisiveness, he staggers along through life, unproductive, unhappy, and alone. His emotions are predominantly brooding, regretful, and generally unhappy. He or she presents a sad regressing picture.

To put it simply — masturbation is immaturity. It is a childish way of satisfying one of the basic needs. Just as with other forms of immaturity, it is bound to be unsuccessful in a world which calls for maturity.

◆ *Sexual Perversion As a Source of Poor Emotions*

There are, of course, people made miserable by the guilt, the difficulties, or the stigmata encountered by following one of the many types of sexual perversion, of which there are 14 or 15 different varieties, the most common being homosexuality. Sex perversions are evidence of deeply-seated personality difficulties that require individualized treatment.

Consequently, we will dismiss further discussion of the perversions in this book, except to offer assurances to the reader that boys and girls whose lives are rich with outside interests, who have had good training at home in thinking and acting carefully and critically, do not develop sexual perversions.

Nor need parents be afraid about the danger of their sons and daughters coming in contact with homoerotics and thus being misled into unnatural sexual relations. Careful investigations disclose that the individuals who take up homosexuality were definitely homosexuals before they met their seducer.

Another misconception that requires correction is that it is the man who is markedly feminine, or the woman who is markedly masculine, who are most apt to be homoerotic. There is not the slightest connection. The male homoerotic is just as apt to be the athletic masculine type, and the female homoerotic a perfect feminine type. The unfortunate feminine man and the unfortunate masculine woman have enough of a handicap without adding this misconception.

♦ *Sexual Immaturity in Marriage*

Sexual difficulties in marriage are extremely frequent, extremely provocative of emotional stress, extremely apt to start the schism that leads to divorce, and are always caused by sexual immaturity on the part of one or (usually) both the partners. There are many varieties, of course, of sexual difficulties in marriage, and we can mention only the most frequent here.

The difficulties start most often on the honeymoon, which to most newlyweds is the end of the dream world youth paints of the marital state. The *usual* experience on the honeymoon is that the boy and the girl find that it isn't as wonderful as they thought it would be, and they blame each other. If the boy and the girl can overlook the first years in which their experiences are vaguely somewhere between success and failure, they may find at the end of 30 years that the experience *can* be the rainbow they found it wasn't on their honeymoon.

Most young men, when first married, have the imagination of rabbits, the romantic capacity of sloths, and the sexual technique of oysters. When you mix this combination with the

fears, the discomforts, and the misinformation which the girl has accumulated, you end up with nights filled with horrible experiences

If a fair amount of maturity exists in the couple, such as sympathy, understanding, comradeship, and good-will, all may not yet be lost and the marital craft may yet be rescued before it flounders. But with many couples, who have no maturity in other directions to save their sexual immaturity, the disillusionment of the beginning grows into the final break of the end.

When sexual immaturity brings one, or both, of the partners into the doctor's office with E I I, it is very apt to center around frigidity in the woman. Over 40 per cent of the married women I see in my practice get no sexual enjoyment out of their marriage, and provide little enjoyment for their husbands. Wife happy? No — miserable. Husband happy? No — just as miserable.

Frigidity is most often the husband's fault. Much of this frigidity on the part of the wife is not her fault, but is due primarily to the clumsy, selfish technique of the husband, not merely in the first delicate experiences of marriage, but forever after.

As many women put it, "He has not thought of anything but his own wishes. He leaves me cold and disgusted. Now it only makes me nervous. I hate the whole thing."

You will always find that these husbands are immature children in other aspects of living as well as in sex. Mentally, their maturity stopped at age eight, physically, they went on to develop hair on their chests. Many an otherwise excellent girl has been precipitated into chronic illness and chronic unhappiness by this common variety of inept and immature husband. Even though she may try to meet the situation philosophically, the situation proves to be too difficult.

Frigidity may be the result of faulty education. In a relatively smaller number of women, such frigidity is sometimes the result of poor sex education in their childhood. Rose, for instance, was the unusually attractive daughter of a family

that lived in a tough part of town. Because of the bad influences of the neighborhood, the mother stringently indoctrinated the young Rose against the entire matter of sex, scaring her on the entire subject until Rose had the idea that sexual intercourse was far and away the worst experience that could ever befall a woman, that it was, in fact, worse than death. Rose never did know why or just how she ever became married. Marriage for her was a hateful, hideous experience. After bearing two children, conceived in utter agony, Rose added the fear of another pregnancy to her already unwholesome sex outlook. She developed an intractable ulcerative colitis and has spent years in and out of hospitals.

Frigidity in the wife is an important cause of yet another grave marital difficulty — unfaithfulness in the husband. As one English Earl remarked, he greatly preferred to have his romantic efforts returned by the appreciative and enthusiastic embraces of the chambermaid than to suffer the reluctant frigidity of the Countess. Every man, earl or no earl, is made of the same material.

Appetite is not the same in both partners. Another common source of difficulty in marriage is a failure on the part of the partners to recognize the *usual* difference in sexual appetites in man and woman. In general, men are moved by the sexual instinct more frequently than are women. Unless this difference is appreciated by the partners, and each tries to meet the difference at least half way, irritation, disgruntlement, and deep displeasure are bound to result. This common situation can be avoided only if each has enough maturity to appreciate the individual needs and desires of the other.

There are many other varieties of difficulties arising in the complex relations of marriage. We are not going to review them, but deal with them merely by saying that they all, without exception, result from immaturity, and are all to be corrected by developing maturity.

◆ *Sexual Maturity*

Sexual maturity begins with the attitude that sex is not bad in itself, and, when rightly used, will enrich life and add materially to the pattern of enjoyment

The phrase, "rightly used," is the key to the whole business.

First, "rightly used," means acknowledging the existing restrictions on sexual activity as a necessary and a good thing so long as people are trying to continue the social and economic projects we call civilization. Obviously, to keep out of trouble, sex had best be used within the legal limits, *that is to say, only in the married state*. This is the one side to maturity — minimizing trouble

Secondly, "rightly used," means developing the capacity to make the sexual aspect of marriage a satisfactory, complete, and constantly finer experience for husband and wife. This is the other side of maturity — developing the capacity to handle living for maximum enjoyment

The first meaning of "rightly used" concerns chiefly the person out of wedlock, and the second concerns those who are married

◆ *Handling Sex Before Marriage*

As far as a sex program for youth is concerned, an excellent, or even a good, solution does not exist. The best that can be done to help youth is to mobilize a few factors in their behalf that will help tide them over

The first thing we can do for youth is to be frank about the whole business. It doesn't do to tell these young people they have no problem, or to imply that if they have, it is of their own making. It is best to lay the cards on the table, and admit their elders had the same problem — and for them, as for youth now, the fact is that before marriage, there is no altogether satisfactory answer. Then we should try to make it clear that marriage is a satisfactory answer only if personal

qualities of maturity can be developed before they get married.

The second help is not to insist, or even to imply, that the sexual urge should be forced out of mind. Instead, the youth's mind should be given interests and urges, important and lively enough to take up a good portion of his time, interests worthy in their own right of demanding the best the youth has.

Ways to help control the urge. Such urges are the urge to become proficient in a sport, adept and skilled in a handicraft, socially accepted and liked, capable of adding a desirable skill to the community enterprise. Not only will a wealth of such pursuits serve to enable the youth to forget much of the time that he is a sexual animal, but it will also develop the maturities so necessary to his future.

General mental maturity, the capacity to think, is the best step toward sexual maturity. A family which gives the youth a sense of belonging to the family enterprise, an education that gives the youth a keen sense of being a part of the human enterprise, a good mind with generally sound ideas — these are the best measures for sublimating the sex urge to a distinctly secondary level. Such a sublimation of interest and such a development of new urges must be provided, principally by *the family*, and also by the schools, churches, and by youth centers.

The need for youth centers is usually underestimated by our communities, and when the youth centers *are* provided, it is often in too niggardly a fashion. A good youth center in a community, designed to give youth high interests in their off-hours, is the most important organization outside the family. Any community with the interests of its young people truly at heart can much less afford to be without a youth center than it can afford to be without paved streets or a municipal water supply.

A youth center is in the nature of a necessary public utility which only the municipality can provide.

The third help is for adult society to fan the sexual flames

of youth as little as possible. It is entirely laudable to lift sexuality out of 19th Century prudery, but it is still necessary that parents, teachers, psychologists, and psychiatrists take pains to point out to adolescents the dangers of "petting" — the danger of excessive sex stimulation under conditions which do not provide for its proper gratification.

One sees high school teenagers, either regrettably pregnant, or what is almost worse, with wrong emotional habits resulting from petting, which will give them lifelong nervous difficulties. If young people are to be overstimulated by sexy literature, sexy movies, sexy stories from their elders, plus the opportunity provided by the family automobile, their elders should not be surprised when they seek a natural outlet for their sexual tension. By and large, our society is dealing youth a wretched hand, and then asking them to play a good game. The pay-off is apparent in present-day divorce rates and marital difficulties. For the foolish things people do all the people pay.

♦ *Sexual Maturity in Marriage*

Lamentable as poor handling of sex may be in the pre-marital individual, it is even more lamentable when sex produces clouds of wrong emotions to a married couple, as it does with great frequency.

In marriage, as in adolescence, general maturity is the best guarantee of sexual maturity. The same sympathy, understanding, and willingness to cooperate that stamp maturity in general are absolutely essential if marital sexuality is to be something other than a source of trouble and internecine strife. The golden rule of sympathy, understanding, and kindness must be the basis of marital sexuality, just as it must be the basis of mature social ethics. Most people at the time of marriage have for each other the feeling we call affection. Affection is entirely essential, but unless it is augmented by the golden qualities of sympathy, understanding, and kindness on the part of both marital partners, it will

soon be replaced by remorse, disillusionment, bickering, and dissatisfaction.

Sex must be a mutual delight. The sexual relationship in marriage should be a truly cooperative enterprise in which neither wishes to derive pleasure at the expense of the other, and each is more intent in providing the maximum enjoyment for the other rather than for himself. They learn that finding pleasure in each other is a much wider thing than sex, and includes many more things than sex, but in which sex is an important factor.

Creating a mutually enjoyable experience becomes the object of each, and no rules apply except that whatever is done be good and pleasant to both, and enjoyed by both.

When two married people are personally mature together, sexual married life consists of mutual appeal and response, offer and acceptance, enticement, surprise, suspense — all achieved by constantly shifting aggressiveness and passivity, activity and relaxation on the part of each partner.

To two such people the pleasure to each from pleasing the other becomes so intermingled with the pleasure of being pleased and of knowing that the partner is pleased and wants to return the pleasure, that their two personalities become indistinguishable and become truly one through the years.

Each shared pleasure reinforces and builds up a long series of potentially limitless shared experiences of ecstasy. The physical and mental components of pleasure react and enforce each other. Such married partners become more and more indispensable to each other. No marriage can be a successful enterprise in which there is not such a sexual unity.

Egocentricity and selfishness are the childhood arrests that most commonly make a mess of marriage. The only person capable of true affection is the person who can forget himself and his own immediate interest while he places the welfare and interest of someone else foremost. When both husband and wife can do that, they will have no domestic nor sexual trouble.

Assuming now that both marital partners are capable of working for the other's welfare, the stage is set for marital success

The next quality to maintain in the family between husband and wife, and later between parents and children, is the idea that *TODAY, RIGHT NOW, we are going to be cheerful and pleasant and make living enjoyable* Quarreling and fighting and bickering are permanently and completely out of the picture because they accomplish exactly nothing. Under *no circumstances* are they justifiable.

The "value" of "blowing your top." There is a school of psychiatrists who think that "blowing one's top" is a good way to work off something bad. This view is held mostly by psychiatrists who cannot control their own tops. There is nothing to it. Blowing one's top serves no good purpose, one blowing more firmly sets the habit for the next blowing. If both husband and wife are given to blowing their tops, something usually cracks sooner or later, such as patience, affection, or the standing invitation to cooperate. Children blow their tops, it is a childish adult who finds it necessary to do so.

Marriage should and can be based on this fundamental assumption: *"We can make life more enjoyable for each other by living together; neither of us has any right to make any moment miserable for the other."* That becomes a perfectly simple, satisfactory, and practical formula if husband and wife each have about a dime's worth of sympathy, understanding and good-will

In such an atmosphere, the sexual side of marriage becomes a growing experience that constantly makes each more indispensable to the other; sexually their experiences are as cooperative, sympathetic, and understanding as are the other aspects of their life together.

Young married couples should know something about the anatomy and physiology of sex. Ignorance is the only deterrent to human possibilities. When I see young couples going afoul in marriage because their sex life is going sour, along with their other marital enterprises, I refer them to a

sensible and concise discussion of sexual relations such as *Sex Manual* by G. Lombard Kelly, M D *, which I advise them to read together. Sometimes it is sex that goes sour first in marriage, sometimes it goes sour because everything else has gone sour.

When a marriage gets sour, the first thing for wife and husband to do is for *each of them* to bring cheerfulness and pleasantness back into their attitude toward the other.

KEY POINTS TO REMEMBER IN CHAPTER 11

The individual's sex problem consists in adapting his biological urge to the restrictions imposed by society. Society has imposed the restrictions, but hasn't taken the trouble to teach the individual how to make a mature adjustment. Maturity and emotional stasis in sexual matters boils down to three rules

-
- 1. Tell yourself, in no uncertain terms, that in matters of sex you are going to play the game according to the rules. It is easier to keep out of trouble than to get out of it once you are in it. For all-important reasons — legal, moral, social, economic — sex *must* be confined to marriage.
 - 2. The successful sublimation of sex in the unmarried person (or in the married wolf) consists in providing the individual with interesting, absorbing, and vigorous activities, and in helping him mature in as many other departments of living as possible.
 - 3. Sexual maturity in marriage is dependent on developing the qualities of general maturity, especially sympathy, understanding, unselfishness, cooperativeness and affection.
-

* Published by *The Southern Medical Supply Company*, Augusta, Georgia
This book cannot be secured without a prescription from a doctor

12.

WHAT TO DO WHEN YOUR WORK IS GIVING YOU THE JITTERS

♦ *The Emotional Stress of Our Industrial System*

Never has the civilized world had the wealth of useful goods and materials that our present-day industrial system provides. That, of course, is a wonderful benefit and help to all the people.

But never has a method of production inflicted on its personnel such a flood of disagreeable emotions as does our present day industrial system. This, of course, is a primary source of unhappiness and emotionally induced illness for a great many people.

When the industrial system began in England, it was the laborer in the sweat shops who had most of the bad emotions provided by the system. But today it isn't primarily the common laborer, or the white-collar man at the foot of the ladder, who suffers most emotionally because of the system. The greatest victim is the man at the top, or near the top, who masterminds and manages the system. We see here the operation of nature's balance of compensations.

The businessman or the craftsman, before the industrial

age, experienced *few* of the conditions that in today's world produce tense emotional states in corporation executives, vice-presidents, store managers, sales force, assembly line workers and so forth. The incessant competitive business growth, departmental growth, and the pressure of piece-work, competitive striving, angling for advancement, low-interest, repetitive jobs, are at once the elements that make the industrial system great, and the elements that give men the emotional jitters and emotionally induced illness.

♦ *The Executive Has Stress*

Werner had come up the hard way in the sales division of a company that makes several well-known nationally advertised products. The company was old, and didn't amount to much, until one of its new products made a national hit far above anything even the company heads ever expected. From then on, the board of directors wanted to continue putting out "hits."

Werner, by working around the clock for the company, on a small salary, and having no fun for himself or his family, had achieved a good position in the sales division. Then he was placed in charge of sales for a new product that the board hoped would outdo the original "hit." What an opportunity! Werner thought; and there *were* opportunities, including the opportunity never to feel physically well again. The board would call Werner in and show him a comparative chart silhouetting him against some more successful department. The board would ask him for a progress report before the expected time. The board would ask for an explanation of a lower-than-expected sales curve. The board would pound its fist upon the table.

With every new pressure from the board, Werner developed a new pressure in his upper abdomen and chest. After one board meeting he checked his lungs, after another his heart, once his stomach, again his gall bladder.

He was an organ on which the board was playing a dismal tune. Even before Werner was made head of sales, he could never brag that he felt fit as a fiddle. But after his climb to sales manager, with the heat of the board upon him, he became a symphony of complaints, which included a completely equipped indigestion, finally centering around a perennial full-blown ulcer.

I met him the first time on a train. The poor fellow told me of his symptoms, ending with, "And the doctors don't seem to understand it." That last statement usually means the patient doesn't understand it.

Werner worked up a tremendous tension and a diabolical indigestion, trying to bring his product before a reluctant public. Actually, the product he was given by the board to promote was developed 20 years too late. It died a slow, expensive death, and with it, Werner went down in the company, a functional wreck. The effect of the system was exactly the same as if the board had inoculated Werner with tuberculosis. Yet the members of the board considered themselves kindly human beings, they were playing the part of good businessmen, as far as Werner was concerned.

Now take a top-flight success from one of the boards — as a matter of fact, he has been on twenty-two boards at the same time — Old H——. He worked, he pushed, he pulled, he got there. But getting there meant holding on, holding on meant advancing with a bunch of enterprising young fellows yelping at his heels. There came a steady competitive fight to stem off a reorganization, sleepless nights on which he'd gotten out of bed and walked for blocks, jittery spells when he tried to rest a minute on plane trips he took to secure stockholders' votes, finally a blackout when he hemorrhaged from an ulcer that he had, in his frenzy, tried to ignore. He was a great success — he beat the reorganization — he controlled the stock — he was really a great financier. But as a man he was jumpy, jittery, restless, constantly nursing an ulcer — himself a financial success, and also a financial success for the doctors.

◆ *The Half-Way Man Has Stress*

Now let us look at some of the lower rungs on the ladder.

There is no form of modern business management that is more competitive than being the manager of a chain store. I've known many of these managers — fine fellows, everyone of them, smart, honest, hard workers. They had to be to survive the rigid screening process they went through to ascend from clerk to manager. But I have not seen a single one who did not have, in the course of his managership, some form of functional disease.

Bill went farther than any of the others I ever knew, he finally ended as a manager over ten large districts. We X-rayed Bill four times from stem to stern while he was store manager in our town, to assure him that his abdominal pain and constipation were no more serious than his sour stomach and frequent belching. Every advancement, every move to a new city, was punctuated with more X-rays. The last time I saw him in his plush office in Chicago, he was still belching, still eating antacid tablets by the handful, and I could tell from the occasional wince that strolled across his face that he was still having abdominal pain.

Then take Joe. Joe had been a good man in the brass foundry; so good he was made foreman of 27 men. Then his headaches began, and the pain in his neck and in his chest. Then men above him wanted output; the men below him wanted to loaf. Between them, Joe was in a vise.

◆ *The Laborer's Job Gives Him Stress*

Take a look at the lowly assembly lines. Henry left the farm for the glamour of the factory. There he was given the thrill of putting the spark plugs into the engine block as it came down the line. The company speeded up the line. Incidentally, Henry had to speed up too. Then the engineers added two more cylinders, they weren't thinking of Henry.

Henry became more and more ailing. After a necessary leave of absence, he was put on a punch press doing piece work. After two years he broke down again. Now he's back on the farm. He wonders why he ever went to the factory.

A very interesting thing happened in another plant — in one division a dozen men run grinders over sheet metal, producing a piercing terrific noise. I've seen four men from that division with ulcers in the last two years, how many more quit because of stomach trouble, I do not know. You remember that Dr. Hans Selye produced ulcers in dogs by subjecting them to a constant piercing disagreeable noise!

◆ *Worry and Accidents*

It's the worried man in industry who has most of the accidents. Attention to the job is interrupted by a train of thought about a disagreeable problem — possibly trouble with the wife at home — possibly worry over the house mortgage — possibly anxiety over a dozen different things — then zingo! zip! he loses his hand in a press, or a moving rod pierces his arm. Seventy-five per cent of the accidents happen to repeaters.

◆ *The Pressure Is the Same in All Industry*

In every line of modern industry and business, the competitive pressures are the same, probably nowhere greater than in the newspaper game. An editor friend of mine says there is no one on his paper from the editor (himself) on down who doesn't have a few physical complaints. And he adds, "In addition to feeling punk physically, these fellows are fundamentally unhappy, because the pace and the pressures are so great."

◆ *Perhaps Industrial Civilization Is Worth It*

What price modern productive methods? What good is

wealth acquired with a raw stomach? Far better a sweet stomach and a modest living. But where, in modern business-industry, can you find a sweet living without a sour stomach? The tension of bigger and better commercialism ruins almost every job you can pick up.

Modern business and industry is one of the great reasons for the terrific prevalence of the emotionally induced illness of our time. In certain respects the system is a childhood arrest — it is psychologically immature. At a certain age the child is constantly competitive, pitting and matching himself against all comers, striving to beat his fellows, constantly endeavoring to excel. As a person matures, this competitive spirit melts into a cooperative willingness to share with the other fellow, to give rather than to take. Such maturity is frightened off by our present economic Frankenstein.

To be mature in this sense, to act with mature decency when competitive striving calls for selfish pushing ahead, means inevitable failure in the kind of system we have. Anyone who follows such mature principles as noncompetitive cooperation, a desire to be of benefit to human beings as human beings, a feeling for helping people out of difficulties, can be a financial success only by a most miraculous series of accidents.

I know several financial failures, that is to say, men who never succeeded in any business or in any commercial endeavor they ever undertook. Almost without exception, they are among the finest human beings I have ever met.

◆ *Still, We've Got to Eat*

Nevertheless, we do have to make a living. Maybe you've gotten your functional illness as a direct result of our business-industrial system. You are going to have to continue living in it and being a part of it.

Then (to yourself) play it as a game, something that's a great big lark, something done because it's ENJOYABLE, not

a duty Play it cheerfully and pleasantly, and don't let the trap of competitive striving catch you

It's barely possible that following this advice, you may never drive a Cadillac, but you'll enjoy eating peanuts and watermelon at a picnic you get to in a rattling good 1937 Chevy. You may even end up in the poor house, but you'll have a good time getting there, and you'll live to sing at the funerals of the poor devils who beat you up the ladder

A BRIEF SUMMARY OF CHAPTER 12

The industrial system, as we know it in this country, is a wonderful provider of human needs But unfortunately it is also a great provider of stressing emotions to the people who make it run Great responsibilities, the constant demand for great effort, and the fight to maintain his gains are common stresses of the top executive The competitive fight for advancement, with its overshadowing insecurity, is the lot of the man on the way up Non-creative and low-interest jobs with monotonous repetitions bring a deep form of stress to the laborer

The only good, long-range answer is that industry must gradually humanize itself, as some portions of industry are already trying to do.

For the individual who is caught in his job, the only answer is to try to sneak enjoyment in through the back door, to make himself as cheerful as possible, and to be upset by the irritations of the job as little as possible He himself must dictate the level of his emotions, not allow the job to dictate them for him

In short, the man who is being crushed by industrialism can put the methods you are reading about in this book to good use.

13. MEETING THE AGING YEARS

♦ *Emotional Stress Increases with the Years*

E I I is prevalent at all ages, but it grows more and more prevalent in the declining years of life — the very time an individual should be gliding into a calm, easy harbor, instead of back into the storm. This is true partly because of the conditions and situations that the aging person must try to cope with, on the other hand many people handle age poorly simply because they never handled any part of their lives well. The inability grows larger like a giant snowball toward the end.

This increase with age in the incidence of E. I. I. is a new development in our century. It has come about because aging today is attended by far more stress than ever before in history. For several thousand years the social and economic status of the aged did not change at all, the conditions of the aged in the Fourth century, B. C. were practically identical with those of the Nineteenth century, A. D. Today, the status of the aged is very different from what it was 100 years ago, and, in another 50 years, the changes will be even greater.

The important change in our time has been *a tremendous increase in the absolute and relative number of people over 65*. In 1900, one person in twenty was over 65. Today one in eleven is over 65, and by 1980, it will be one in seven.

◆ "Senility" Is Often E. I. I.

The functional illnesses of age may be any of those of earlier years, but they tend to assume one similar pattern because the prevalent emotional picture in old age is insecurity (of finances, of health, of the future), apprehension, disappointment, discouragement, and so on.

These emotions, you will remember (Chapter 3), are the ones that stress the pituitary to produce the somatotrophic hormone (STH) with its attending joint, arterial, and kidney effects. In other words, STH effects *are* degenerative effects.

We have no way of judging, as yet, just how much of the degenerative disease of the aged is emotionally induced, but probably a large part of it is. Without the degenerative diseases, which are so chronic and slow and debilitating, the aged person would go along smoothly and fairly vigorously to a happier and more kindly end.

It is important to note that the group of people over 65 is the *only* group whose life expectancy has not increased since 1900. At any age up to 65, you can expect to live longer than an individual of the same age in 1900. But after 65, you cannot expect to live longer than a person of the same age did a hundred years ago. This holds in spite of the fact that practically no old person today dies of pneumonia or other infection, and in spite of the fact that people even with some of the degenerative diseases, such as heart disease, can be carried on for years longer than might have been possible even 20 years ago. It can mean only that degenerative disease has been accelerated in our time, and the cause of the acceleration is an increase in emotional stress.

At first sight, it is hard to believe that much of what we

regard in the aged as natural deterioration is actually E. I. I. But let me give you an example that will illustrate the truth of such a statement.

George W_____ illustrated perfectly the way in which the emotions characteristic of old age produce degenerative disease, *and how a change toward the right kind of emotions will produce a reversal of the degenerative changes.* You have to see this sort of thing to believe it

I was introduced to George by his physician, Dr. K. M. Bowman, a well-known San Francisco psychiatrist. George, at 83, was working on the stage of the theater in the San Francisco Municipal Home for the Aged. He was the stage manager, and he was getting ready for a production the people of the Home were putting on that night. George was as active as a good man of 60, and you could tell he was greatly enjoying his work.

"George," Dr. Bowman said, "Hold out both your hands."

George did. There was a slight tremor in them, especially in the right, but it didn't amount to much.

"How bad did you shake two years ago?," Dr. Bowman asked

George demonstrated with a terrific wobbling of both hands

"He isn't exaggerating," Dr. Bowman said

Then he told me the story. When he had first seen George two years before, George was living with his son and daughter-in-law. He had been bedridden for six months, he shook so hard he had to have help in eating, he was so weak he couldn't take care of his own toilet

George had been a stage manager on Broadway in his prime. He was a master at his work, one of the best in the business. He had one child, a boy, who moved to the West Coast when he became of age. When George was 48, his wife died. The theater business was declining, some of his shows went sour. For a number of reasons, George began to drink, and he lost the job he had had for 23 years. From then on, he

went from job to job, occasionally managing a small, obscure stage, but usually just a common stagehand.

At 72 he was destitute, and his son sent him enough money to come to San Francisco. There George lived with his son, to whom he had become almost a stranger. His habits were not too tidy; his ways were not those of his hosts. I suppose at first his son and daughter-in-law had intended to make the old man happy. But the relationship, especially on the part of the daughter-in-law, became one of belligerent and bare tolerance. George knew he wasn't wanted. The city was new to him, he had no friends there, there was no one around the few legitimate theaters who cared to talk to him. So George began to ail, his degeneration became more and more rapid, and it was not too long before he was in bed. They had a doctor once or twice. The doctor called it hardening of the arteries and senile debility.

Then Dr. Bowman chanced to see him. He examined George and said, "We're just finishing a new theater with a fine stage up at the Municipal Home for the Aged, and we need a stage manager from Broadway. I'm going to take you up there."

George was excited, but he didn't think he could ever get out of bed again. His son and daughter-in-law were even more dubious, but secretly they were happy to have him move out of their care.

He was moved in an ambulance, and carted out to the theater stage in a wheelchair. In two weeks he was walking out, and, in another two, he was as active as an old tomcat. He improved rapidly after that.

Around the Home, Dr. Bowman showed me at least eight other people we just chanced to meet who had stories of a reversal of their degenerative disease just as remarkable as George's.

The demonstration that degenerative processes in the aging *can be* the result of *emotional stress* as well as "natural senility" requires a laboratory — like the San Francisco Municipal Home for the Aged. In the average community there

is usually little chance to reverse the stressing situation which is producing the degeneration of the aging person

The San Francisco Municipal Home for the Aged has that *necessary* difference most homes for the aged do not have. One of the best contrasts is afforded by the unimaginative, expensive depositories being built in so many counties for the aged. The central idea of the San Francisco Home is that it is a COMMUNITY of elderly people, run by elderly people. The bookkeeper, the vegetable purchaser, the engineer, the plumber, the stage manager are residents who are old hands at their trade. The Home aims to be self-supporting in a financial way, in a recreational way, and in an essential-service way

♦ *What Getting Old Today Means*

Don't think that getting old today is the same kind of thing that getting old was 50 years ago. Times change, and so do the factors that the aging have to contend with

Financial insecurity. First is the matter of financial security. How well off are you, or how well off are you going to be at the age of 65? With the depreciation of the dollar, which means lower annuities, with the high tax level, with the hesitancy to employ people older than 45, more people than you think are not going to be self-sufficient at the age of 65. The average family today, maintaining the standard of living that everyone has become accustomed to, is just barely able to scrape along, let alone save. We always think that next year we will start to save. The only person who doesn't procrastinate with saving is the financier, or the banker, or the insurance salesman. Don't envy them. They have other problems that give most of them severe functional disease.

One third of people over 65 have no income whatever of their own, and 75 per cent have an income of less than \$1000, including old age assistance. At least there's the Federal old

age assistance, you say (if you're under 50) Thank somebody for that. That, at least, is the difference between eating *something* and eating nothing, between sleeping in a bed *somewhere* and sleeping out in the park. Would you (supposing you are 40) like the idea of having to go on "relief"? You can bet your last dollar you won't like it any better when you are 65

Job insecurity. The last resort of the scoundrel is to suggest, "Why doesn't the old fellow get a job?" The scoundrel doesn't appreciate that in the present labor market it's getting hard for the fellow over 45 to pick up a fresh job

Here is a man of 60. He is a skilled tool maker, his accident liability is considerably less than a younger man's, his absenteeism will be definitely less, his dependability in a pinch will be greater, he will be less aggressive in fomenting labor trouble. Yet he can't get a job, even though a doctor would pronounce him physically fit. Why can't he, why can't the others of 60 or over — no, let's say 50 or over — get a job so that they might support themselves?

Because, being a vigorous young nation, we worship youth and *slight* (that's a mild term) old age. Old age is regarded as a regrettable incident, necessar, (God forbid) for others, an incident which we hope will not be prolonged beyond reason (which isn't long), an incident which will be as troubleless to the younger members of the family as possible (somehow *they* cannot see *themselves* at 65).

The older man doesn't get a job. Some efficiency expert found the younger man more dextrous, turning out more parts for the company. He didn't stop to think that the older man was putting something human into the company, he didn't know that something human in a company would be worth more than lucre. He didn't find out that the company would be still making enough for everyone (including the stockholders and management) to live

Not being able to make a living or having enough to live on isn't all — it's just the beginning of the troubles which the aging have to take on

The insecurity of children's indifference. There's the matter, for instance, of changing family sentiment regarding the aged. I can remember the time when "Honor thy father and mother" was taken seriously. If it was the last thing they were able to do, the children felt obliged to see that their aging parents were well cared-for.

Today it is *usual* for children to stand by without emotion (except a sigh of relief) and see their parents placed upon Federal aid, or if the presence of their elders becomes irksome, it is quite satisfactory to see them placed in a nursing home. This has gradually become the attitude that is acceptable to the society in which we live. It is not going to be changed for decades, if ever

But the truth is that it's terribly hard on the old folks. They remember when these same children had to be fed, had to be protected, required long hours of their time and care. And the compensation is to be set aside as though they had never mattered. For these children they lived. What has it brought them? These children they loved. Now who returns any love? There are plenty of people, don't you fear, who have broken hearts (that is to say, severe pituitary stress) because they have been so damnably let down in their needy years.

More than just the children are at fault. But it isn't only the children. It's *everybody*. Everybody around them regards the aging person as someone who is just in the way impeding progress. Slow on the street; slow getting off of buses, yes, slow to die. Actually and truthfully, the old folks aren't wanted by society. The best indication of that is that we call them a "problem." A problem and the makings of it are not wanted. The kind of county homes we throw them into as a last resort is an indication that we don't really care a great deal for the aged.

Don't think the aged don't sense these attitudes, don't think for a moment that these factors do not have a great deal to do with the health of the aging. That is the point I'm trying to get across. The social solution is evident enough — either children should become old-fashioned enough to care,

or society become interested enough to provide adequate community life for those it is now throwing out of society. But that still isn't all that stresses the pituitary to produce *STH* in the aged.

Fear of ill-health. There's the matter that they don't feel well (suppose it *is* functional) always, always, they fear that complete disability may be just around the corner. The ordinary young person goes into a tailspin when he is told that he needs to be incapacitated for two years. As a matter of fact, it is very seldom that we doctors dare to put it to a patient so simply. Well, now, suppose you have to be afraid, as an elderly patient always has to be afraid, that your age may bring you to your bed tomorrow of a wasting disease you can never be rid of!

It takes a lot of courage in the aged just to act cheerful and never say anything about these fears!

Fear of death. And, too, — you youngsters to whom death is still something that never happens — to the aged (and they think of it, never fear) death is closer at hand than it has ever been. Most every living thing, unless it is very, very miserable, wants to keep on living. And so they think, during those long nights (many are the aged who don't sleep well) of the experience that lies threateningly just ahead. They feel like the Irishman, "If I knew where I was going to die, I'd sure stay away from that damn place." But for them the situation has lost its humor. It's the *BIG THING* that's just ahead, *HOW* and *WHEN* is it going to be?

Loss of friends. But there are all kinds of other sad things for the older person. Their friends who once dropped a cheerful word, their spouse, who once offered a helping hand, their dog, who once wagged his tail, have all gone. Have you ever in the deepening twilight stood out on a lonely sweep of the earth — have you ever felt an awful lonesomeness pulling you down into the soil — a lonesomeness so deep as if to say, "This and only this is all, there is no more?" If you have, you have just a little inkling of how the aged person feels who is *really*

alone in the twilight, without a soul to care, or show the least parting affection.

You'd think that after 70, 80, 90 years, one would at least deserve, — if not a band and a celebration — some appreciative recognition from society for having accomplished his feat — staying out of jail, bringing up a family, and just generally carrying on through all the difficulties of the years. But a posthumous text is the best the children and society can wring from hearts that (never fear), too, will grow old.

Poor housing for the aging. Then take another social cause of distress to the aged — the matter of housing. Fifty years ago, two-thirds of our elderly people lived in rural areas. Today, two-thirds live in cities. With this change they have lost the sympathies, friendliness, and neighborliness of the small communities. Today, 50 per cent of our aged have unsatisfactory housing and living arrangements, and a large portion of the other 50 per cent are realizing with dismay that their industrial pensions or other income that had, heretofore, been adequate, no longer cover increased rentals and increased food costs. A person on a Federal pension is expected to feed and house himself on seventy-five dollars a month. Housing on such an income can be only the very worst available, a dreary inhospitable room where one must be ashamed to have visitors.

An age that is dark when it should be golden. And so, old age is for most of the aging in our society the dark age instead of the golden age. For more and more people, the last years mean more and more misery. Those who are now under 55 may think they have their troubles, but when they are 65, they will really know what trouble is.

The troubles of the aging are so acute and so fundamentally devastating, that the miseries of the older people are frequently sending them beyond emotionally induced illness into frank mental derangement. Twenty years ago most of the people in mental institutions were young or middle-aged. The old stayed sane. Today four out of every ten admissions to mental institutions are over 65! The cause?

Simple! The conditions our aged are asked to meet are enough to break men's minds. These patients are often labeled "senile dementias" But don't forget, they are degenerative dementias, emotionally induced. The proportional admissions of the aged to mental institutions has increased considerably faster than the increase in the total number of the aged.

◆ *It's Your Problem, Too*

Practically every adult living today will live to be 65 and over. In 1925 there were 20 younger people for every person over 65. Today there are only 11 younger for everyone over 65, and in 1975, there will be only 8 younger for everyone older than 65. You see, you are going to get there too! The problem of the aged is not like the problem of India. You will probably never have to live in India, but you will most certainly live to be older than 65. What is to be done about the problems of oldsters?

You are 20 or 25 or 30

What are you doing about your old age? Now is the best time to start planning.

You are 40 or 45 or into the fifties.

You cannot afford to waste time when time is so precious.

You are 60 or 65

There is still time to do much — you have a long time to live.

You are in the seventies or eighties

Contentment, which is something inside and not outside, can still be yours for the trying.

◆ *What Will We Do About Old Age?*

This

Whether you are 20 or whether you are 60, the sooner you develop a mature idea of what your program will have to be

after you are 65, the happier your old age is going to be.

Maturity in old age means essentially what maturity at any age means — it means that as an individual lives, he enjoys what there is to enjoy, his friends, family, work, spare time, and the wonderful world, and he develops a great kindness and thoughtfulness which enables him to be a giver to all, but especially to those weaker and less fortunate. Finally he is able to compromise and see the other fellow's point of view instead of disagreeing and rearing up into a fight.

♦ *Practically, Maturity in Old Age Means This —*

If you are young

1. **Develop emotional stasis now.** We talked about the tough situations our oldsters are faced with. But the most important source of trouble is not any of these. By far the greatest trouble oldsters have — I should say about 75 per cent of their trouble — is that in their upper years their emotional states have at last caught up to them, as emotional states always do by the time we are 65. The reactions a person allowed himself to have when he was 20 become more obvious as a person grows older. Nine times out of ten, the old man "who is just as sweet as he can be" was always a kindly, understanding person. The old lady with an acid tongue and a battleaxe approach to the ordinary incidents of life, was that way when she was 40, and also, though possibly less obviously so, when she was 20. Unless we work on them with conscious thought control, our emotional states in old age are the quintessence of our earlier dispositions with most of the masking flavors filtered off.

So, whether you are 20 or 60 you can still learn kindness, love for your fellows, cheerfulness, and an eye for the thousands of little enjoyable things about us that cost nothing.

All through life we have a choice — we have the same choice whether we are 20, or 40, or 60, or 80, except that, at 80, we have more strongly established the habit of making the choice.

in one certain direction. But even at 80 a resolute person can change the habit in his choice. We have the choice between reacting with *equanimity, resignation, courage, determination, and cheerfulness* on the one hand, or with *crabbiness, grumbling, worry, and apprehension* on the other.

The choice is your's — RIGHT NOW

If a person *realized* that he had a conscious choice between the two ways of reacting to his world, *and he knew the consequences of taking one or the other path*, he would not hesitate in choosing equanimity, resignation, determination, courage, and cheerfulness. As in many simple truths, the better choice is so obvious it is missed. Somewhere our education should have made it crystal clear that the choice was ours, and that with a flip of our mind a good emotional state was ours, with all the trimmings

2. Plan future finances. Save something regularly to add to retirement income. Cut your present scale of living if you need to. Remember what Thoreau once said, that any event that requires a new outfit is not worth the trouble

3. Plan a place to live when you are advanced in years. Will you have your home or will you have money to pay rent?

4. Expand your interests by developing hobbies — gardening, farming, or anything that you can use later when you are done in the office or the shop

Instead of retiring, start a little trade or a little business, be it ever so small. Get your mind active in new fields; go to night school, take a correspondence course in some new subject. Get acquainted with books.

5. Since you are going to be old some day, start making people see the problems of the aged as realistically as you do — they are going to get there too. Above all, help turn sentiment against the type of county old-age homes that are being built in so many states. These are poor solutions to the problems of the aged and the very fact of their existence will, in years to come, forestall a better answer. Throw your opinion

and your efforts toward the establishment of the San Francisco-type of home for the aged, which is a community plan on a community scope. These obviously cannot be built by most counties. They will have to be built at the state or Federal level

If you are already aged:

1. Cooperate with the inevitable and accept gracefully whatever fate may bring.

2. Whenever an old friend departs, seek a new one; life is as empty or full as you make it.

3. Try to be flexible and adaptable in your thinking; avoid prejudice; don't criticize youth for being as they are.

4. Dress neatly; sew up the holes in the old garments very carefully. Retain good, clean manners.

5. Do not dawdle; pursue interests as though you meant business.

6. Above all, keep the disposition pleasant and cheerful. Greet people with a smile and a kind word. Don't gripe except when no one else can hear you, and when you can't hear yourself.

7. Never let yourself know how tired you are. Just sit down for a while, telling yourself that doing so was what you had in mind, anyway.

8. Don't worry about dying. Everyone who lived before you stood it.

A SUMMARY OF CHAPTER 13

Instead of being a Golden Age, the sixties, the seventies, and eighties are an age of increased emotional stress owing to financial insecurity, job insecurity, children's indifference, the fear of ill health, fear of death, the loss of friends, poor housing, and general public indifference. Much of what is

regarded as senile degenerative disease is actually emotionally induced illness, in which STH factors are prominent

If you are young, prepare for age by developing emotional stasis, that is to say, a happy disposition — now Plan future finances and a place to live when you are old Develop new active interests, against the time when your job runs out

If you are already aged, you can produce contentment inside, even if there isn't any reason for it outside Cooperate with the inevitable, find a new friend when an old one leaves Stay flexible and adaptable in your thinking. Do not criticize youth. Dress neatly. Keep that disposition pleasant, greet people with a smile. Sit down when you must, but don't let yourself know how tired you are. And as for death — didn't everyone before you stand it?

14.

THE FULFILLMENT OF YOUR SIX BASIC NEEDS

There are some people with E I I. who are unaware of any emotions that might be responsible for their illness. These people frequently have fundamental emotions of a wrong variety because their *basic psychological needs* are not being filled.

The ordinary human being, like you and me, has six basic instinctive needs — six psychological WANTS — things that he feels deeply inside himself he must have. If one of these needs is not filled, a deep-seated restlessness is produced, a vague unrequited longing, and an undercurrent of disappointment that colors every minute of the day and night.

Such an individual may be adapting himself very well, otherwise, to his environment, managing to put up a cheerful pleasant front, but deep down inside, there is a great gnawing longing because one or more of his psychological needs is only an empty yawning sore of misery.

♦ 1. *The First of These Basic Needs Is the Need for Love*

Everyone (even the person who seems to hate everybody

else) has an inner desire and need for love — he wants to receive the affection and high regard of at least one other human being. Receiving such affection makes us feel important and valuable, it makes us feel that we have a place in the order of people and things.

The proper fulfillment of this need adds a glow of warmth, richness, and beauty to what is otherwise very dull living. If there is no love from anyone, no high regard from a single other soul, a deep vacuum is made in a person into which are sucked the emotions of distress, longing, lonesomeness, and, eventually, social hostility. And these unhealthy emotions are present constantly, day and night, tainting the fundamental background of living.

This lack may begin in childhood. There are many unfortunate people who feel the sting of the lack of affection from early childhood on, because they have the bad luck to have been born into a family where real affection simply does not exist. Mother and father wage a continual cold war against each other, with periods when the war gets pretty hot and the air is filled with angry words, with, perhaps, a dish or two for punctuation. What they can't take out on each other, the parents take out on the children.

The children, learning by imitation, imagine that constant bickering, quarreling, spite, and hatred are the stuff that all life is made of, so sisters and brothers return blow for blow. Everyone feels alone, hunted, exploited, uncomfortable, and on the defensive. These boys and girls may get quite old, or may go all the way through life, without ever getting the idea that there is such a thing as affection, or that there are human beings capable of it. But the psychological need for it is present, and these people have a restlessness, and a yearning, for something they haven't got. Basically, they are very unhappy.

The odd and tragic thing is that they don't consciously realize it and, of course, they don't know that it is lack of affection that underlies their restlessness.

This sort of thing isn't at all uncommon. It often shows its effects (which are functional disease and gross unhappiness) in some of the best families.

Verna was a beautiful girl whose mother died when she was a baby. Her father, who showed very little affection for her at any time, put the girl in an orphanage where she found more abuse and psychological torment than affection. At the age of fifteen, she met Eugene, an only child and a wealthy boy, with a very protective and selfish mother.

Eugene was captivated more by Verna's sexual attractiveness than anything else, and for the first (and only) time in his life, he did something his mother did not want him to do — he eloped with Verna. Verna had received no affection in the orphanage and she received less as the wife of Eugene. Eugene was too selfish, too self-centered and dependent on his mother to be capable of affection for Verna. Eugene's mother, who always lived just a few blocks away, resented Verna's position with her son and did her best to hold Eugene and turn him against Verna in every way she could.

For years this went on. When children came, the mother worked on them to turn them against Verna, in this she succeeded to the point where a 16-year-old daughter repeatedly told Verna, "I hate you!" The need for affection wasn't the only need that went empty in Verna, some of the others that we are going to talk about, likewise, were empty gulfs of despair. Verna experienced years of functional disease which grew gradually to the point of complete disability. When the cause of her illness was explained to a much-doubting husband and mother-in-law, they went through the outward appearance of affection. But wise Verna sensed this as a sham. The only thing that could have altered the situation would have been for Verna to start life all over. It was only with great difficulty and self-discipline that Verna began to feel a sense of value in the returned good-will of other people when she went into Red Cross work on an all-out scale.

Even worse than Verna's situation is the situation of a girl

who has been brought up in an affectionate family atmosphere and then finds herself married to a man who is capable of about as much affection as a cold blob of cottage cheese. These husbands (and there are a lot of them) forget their wives are human beings with human wants and feelings.

These chaps have little idea that there are such things as human wants and feelings — outside their own. They have a childhood arrest in certain essential compartments of their personalities. If they are capable of any affection, they never show their wives the capacity. After all, it would be easy for the big lugs to show the little woman some affection in many little ways every day. A hug, a kiss, a pleasantry, a compliment on her appearance, or an appreciation of a meal, would put a few blooms in the arid desert that such a woman, unfortunately, inhabits.

It finally serves the big fool right when he has to pay a long, hard medical bill for functional illness of which he is the cause. But this, too, he turns against the wife, blaming her for the sickness his immature stupidity produced. Men like this are one of the big reasons for functional illness in married women.

Sexual love is basically important. The thing we call love, the kind of thing we mean by affection, is a complex thing composed of various parts, and part of this basic need for love is the basic need for sexual love. In any marriage, conjugal affection is intimately bound with sexual affection. A marriage can seldom be unified, affectionate, and mutually satisfactory if the sexual experience between the partners is not unified, affectionate, and mutually satisfactory.

If, for one reason or another, sexual love never develops in a marriage, or fades away and disappears, one or both of the married couple becomes restless, dissatisfied, grumbly, irritable, and complaining. The functional disease produced by this kind of a situation is often hard to treat because the patient would rather not tell about the trouble, consequently it can never be remedied. Sometimes this kind of trouble is

hard to remedy anyway. But this type of trouble produces some very odd results

For instance, Mrs. T_____ had a severe fibrositis of the lower back, so severe that she went to many clinics and many hospitals. The usual treatment did her very little good.

Mrs. T_____ was a career woman. Both she and her husband held important and responsible positions that took precedence over their home life. After their day's work, they came to a home (managed by a housekeeper) used only for meals or for social entertainment. Their sexual life gradually grew thinner and more disinterested, partly because of Mrs. T_____’s tendency to deprecate sexuality in favor of her career, and finally because Mr. T_____ found more satisfaction in a secret mistress.

At first the decreasing sexual atmosphere of their marriage was welcomed by Mrs. T_____. Then she developed fibrositis, which on the surface had nothing to do with Mrs. T_____’s womanliness. But then she, too, was catapulted into the arms of a lover, and for the first time in her life experienced sexual satisfaction. The remarkable thing was that her fibrositis disappeared *at once*.

Because of her career position, and also because of a profound feeling of guilt, Mrs. T_____ periodically tried to deny herself to her lover. With each of these episodes, the fibrositis returned, only to disappear when this illicit love was allowed again into her life.

In many other ways, sexual incompatibility or unhappiness in marriage is the primary cause of functional disease in husband or wife, or both.

The old people must be loved, too. A group of people who commonly suffer from the need of love and affection are the aged, who must walk more and more alone as those whom they loved, and those who loved them, are taken away by the robber, death. An old man loses his wife, the only person who showed him affection, and finds in her place a daughter-in-law, who shows him in many little open or half-hidden ways that he belongs in the category of a "necessary-care-

which-we-will-have-to-tolerate" And so the last of life, for which the first was made, becomes a toasting on a spit turned by a mean wench, assisted by her children, silently aided by the unfeeling attitude of the man's own son. A great deal of what in older people appears superficially to be degenerative disease characteristic of old age is in fact functional disease, the result of the lonesomeness, futility, despair, and sadness that have become the closest companions of their nights and days

► 2. *Your Second Basic Need Is the Need for Security*

Freud said that man wants most of all to be loved. Adler, that he wants most of all to be significant. Jung, that he wants security. All three are valid, man is complex and needs many things.

You feel secure if — and only if — there is enough income to buy at least the necessities of life now and in years to come, if your right to life is protected from irresponsible fiends and egomaniacal tyrants by a just government, if you are relatively sure that you will not be struck down by a devastating disease or catastrophe, if you have about you people you know will help you through a deal of trouble.

Because *complete* security is an impossible thing, many worry warts defeat an otherwise secure state by worrying over the insecurity of security. They worry about cancer, and experience, thereby, more agony than death, again and again. To them, government policies spell their certain ruin 30 years hence. They are sure that disaster, in one of its endless forms, is always around the corner.

Such people, of course, never know a feeling of security. Because of continual insecurity, they lead miserable lives, mentally and physically. They become wracked with functional disease. The trouble with people like these is obvious, they are always worrying right out in plain sight before the entire world.

But many people who *are* in insecure positions never show it outwardly, and very often even minimize their insecurity to themselves. Yet down beneath the surface of moment-to-moment emotions, they have a deep feeling of insecurity, felt through its physical manifestations.

An executive may feel an insecurity in regard to his position because capable younger men are coming up and pushing at his heels. A man may feel insecure about life itself — the boy in battle, the Jew in Nazi Germany, the anti-communist in Soviet Russia. There may be the insecurity felt by a woman whose husband wants a divorce. There may be the insecurity felt by the boy who is the target of bullies in a boarding school. There is the insecurity felt by a man in any kind of a serious jam.

There are hundreds or, perhaps, thousands of varieties of insecurity this world can concoct for those who live in it. Even though we keep them in the background of our thinking, these insecurities can become the type of monotonous repetitions of unpleasant emotions that lead to functional disease.

One of the common ingredients that people discover in old age is a feeling of insecurity. They need to fear ill health, particularly disabling illness. Many need to fear financial insecurity. Many feel insecure as to what the end of life may bring them. There is the inevitable feeling of insecurity at losing loved ones whom they depended upon for certain assistance and qualities of life.

So, to a lack of affection many aged people must add lack of security. At the time when life should be gentle and kind, it becomes cruel and forbidding. When the race is nearing the end and a fellow is coming down the homestretch, there should be the cheering of the audience along the way, instead there is the jeering of the insensitive, and the interrogation of the welfare department.

The types of emotion that these situations saddle upon the elderly persons are those emotions that stress the pituitary production of STH. The chronic STH effects are essentially

those of degeneration of the kidneys, the arteries, and the organs, in general, as you saw in Chapter 4. Thus it is that degenerative changes are accelerated by the old person's adverse situations. If the type of emotion in such individuals is changed by fulfilling the basic needs in which they have been deficient, such as the needs for love and security, the processes of degeneration are reversed to such a degree that the individual seems to become years younger.

Many families are made to feel the pangs of insecurity because of a nonsupporting husband, whether the lack of support stems from alcoholism, laziness, or bad luck alters only the intensity of the emotions, not their essential color. The impending loss of home, property, and prestige add up to headaches, disturbances of the gastrointestinal system, and a host of other functional effects.

▶ 3. *The Third Basic Need Is the Need for Creative Expression*

The child building with blocks, the housewife making a set of curtains, the financier planning a new holding corporation, the girl writing poetry, the carpenter building a house, — all have the very satisfying feeling that out of raw materials they are creating something new.

No one, including you and me, has fundamental happiness if he is not being constructive either in his leisure hours or in his work. It is natural for everyone to identify himself with the world of human beings and to feel that he is assuming a part in that world. The universal urge toward creative expression is a vague kind of restlessness that becomes more and more unpleasant and disturbing if it is not put into action. But when it is put into action, there is the accompanying thrill — a sort of mental breathlessness, and an inward joy of *doing* and *creating*.

Creative activity must not be thwarted. There is probably no frustration greater than a thwarted person with an intense

desire for major creation. There was Ethel, for instance, whom I saw because of a functional illness she developed because her desire for creation was nipped in the bud by an unthinking family.

Ethel married Roger. They were both fine people with excellent families behind them. Through high school and college, Ethel had built up plans of the kind of home and the kind of family she wanted to raise. At the time of their marriage, economic conditions in the country were bad, and Roger's parents invited the newlyweds to live on the first floor of their own home. They moved to the second floor. Ethel's mother-in-law was a considerate, kind individual who wished to be tactful and kind to Ethel. She cautiously and carefully suggested to Ethel that she might do a certain thing in such and such a way. Ethel was truly grateful for the tip and followed the suggestion. The mother-in-law was encouraged, by Ethel's enthusiasm, to make more suggestions.

As Ethel's children came, the mother-in-law took a more and more active hand. Ethel had an inner, unexpressed feeling that she had in fact become a member of Roger's family and was rearing no new family, was creating no home of her own. Her dreams were dissolving into nothing. Worse still, she couldn't get out of her predicament without being rude in the extreme and making life miserable for all of them. Ethel grew gradually more frustrated and began more and more to suffer ill health. This was an additional indication to the mother-in-law that her help was needed. The mother-in-law was, in fact, the mother of both families; Ethel was a dependent child. And Ethel became quite ill.

Because Roger and his parents were intelligent people, the doctor could at last make them see Ethel's predicament, they could be shown that Ethel needed above all to be the Ethel she had always hoped to be, she needed to be allowed to create her own home and her own family. Ethel and Roger moved away by themselves in a new home they planned together. Ethel recovered.

There are many people just as deeply upset, just as frus-

trated as Ethel, because they have been unable to follow an urge to do or to create certain things, an urge they may have felt since childhood. These people may appear to be cheerful people on the surface, but the deeper color of their emotions is anything but happy — their thwarted drives end in restless, unrequited yearning, anxiety, discouragement, and finally, perhaps, a loss of self-esteem.

◆ 4. *The Fourth Need Is the Need for Recognition*

There is in everyone the need to feel that he and his efforts are being appreciated — appreciated by those for whom we strive.

Everyone needs to be regarded by *someone* as being of *some* importance, and doing *something* that is of *some* good.

It often happens that a man may leave a perfectly good position because he feels that his efforts are not being properly appreciated. He resents the fact that although he worked above the call of duty and did an extraordinarily good job, none of his superiors or equals showed any indication of having recognized it. His need for recognition is given a severe blow. He leaves.

The unthanked home-maker. But consider the housewife. Actually, from a standpoint of sheer dreariness and the amount of time spent on the job, she has the toughest job there is. But most of our housewives never receive a word of recognition from one year's end to the other. They, and their washing and ironing, come to be taken as a matter of course by their husbands and children. The meals are accepted in the same silent air of "after all, we have this coming." Everyone assumes that the house cleans itself, that the things they drop pick themselves up, that clean clothes get into the closets automatically, that the comforts of home just naturally exist without anyone's skillful touch.

This lack of recognition for a difficult job, this thanklessness, goes a long way to make homemaking the world's tough-

est job. The husband quits his job because of lack of recognition, but the housewife doesn't quit hers. But she feels all the more keenly the disappointment at the lack of recognition. Much of the tiredness that goes with constant housework rises directly out of the lack of recognition the housewife receives. Her tiredness is the tiredness of a human being who is being relegated to the position of a lifeless, meaningless drudge.

The unthanked oldster. Again in old age, there is this matter of lack of recognition.

Most of the recognition for his work, or recognition of him as an individual, goes out of an older person's life with the death of his friends. An important element in what we mean by friendship is the trading of mutual recognition. A man who has no friends can fill his need for recognition only by sheer capacity, and that avenue is no longer open to the elder who is denied a job at his old trade. The people who remain surrounding the elder regard age as incapacity, and generally do not regard the old as worthy of respect because they are old. Especially when he is poor, the elder is regarded as a social inconvenience. If he is rich, he becomes an exploitable opportunity. In place of recognition, the aged person is treated as a failure, a burned-out being who is about to be flicked away. A person who lived courageously and well, whose earlier actions benefited the younger generation who are now critical, is often ushered out coldly and unsympathetically, under a hail of spiritual, if not physical, stones. Gone the recognition, gone the acclaim, just an old man no one really wants. Such a crying need of recognition brings emotions that hasten the end.

Appreciate your child, but don't spoil him. At the beginning of life, too, recognition is important — just as important as love. The intelligent, advanced child is apt to be showered with too much recognition — he may be buried in it so that he can never get his head out into the clear and really evaluate himself for what he is, and forever after he lives under the handicap of too high an opinion of himself.

On the other hand, the slow and awkward child's feeling of recognition may be very negligible. He tries in his halting imperfect way to do something that might bring a bit of the recognition which he, like everyone else, longs for. But instead, the reactions of those around him make him feel that his efforts belong in the failure class. He feels that he does not measure up to his brothers or sisters. All the attention he receives is on the disciplinary level. Compliments rarely come his way. He develops an increasing sense of incompetence. The important element of self-esteem gradually leaves him, perhaps never to return. He is always miserable and restless. He may seek even the kind of recognition that the doer of bad deeds receives. He becomes a lost cause because his need for recognition is a lost cause.

◆ 5. *The Fifth Need Is the Need for New Experiences*

A human being cannot be kept in a dull monotonous routine without developing a monotonous repetition of unpleasant emotions, and functional disease with it. Any kind of a job, long continued, carries with it a certain amount of monotony. But the most monotonous job can be made bearable by the thought of a new experience that lies ahead. As one housewife said, "I'd scream if I didn't have that trip to the Black Hills next month to look forward to."

It's an emotionally bad day that starts without the hope or expectancy of a single lift. Even a trip to the meat market might be called a lift, so might an airy conversation, or an interesting person.

Here again the housewife is decidedly in a more unfortunate position. The average day offers more variations and opportunities for new experiences for the male of the species. He goes outside the house and outside the neighborhood to work, meets and talks to people, and his work itself may hold interesting variations. These ready opportunities for new experiences are not available to his wife.

Probably the best example I have seen of how a dearth of

new experiences can produce severe functional disease was Mrs. S____. She was only 26 when I first saw her. She was staying with her mother because she had been sick abed almost three months. Whenever Mrs. S____ tried to get up, she became so dizzy and faint she had to go back to bed. She was obviously hyperventilating. I remember when the call first came to see her. I was occupied, and I sent a fourth-year medical student who was a preceptee in my office.

He returned all aglow, "Oh, boy, do I have a dandy hyperventilator for your clinic!" The lad was a smart student. The several doctors, who up to that time had cared for Mrs. S____, had labeled her illness variously as "anemia," "female trouble," and even "heart disease," so that, in addition to being discouraged, she was also confused.

Since childhood, Mrs. S____ had been an eminently normal sort of person—which means also that she had the normal fulfillment of her basic needs. She married during World War II and soon had two children. When her husband left the Army, he took a job trucking bread from a central distributing station to outlying towns. He left home at two o'clock in the morning and got back at noon. Houses were at a premium but they finally found one that had the advantage of a low rent. The house was six miles from the nearest town, a desolate, dull-green house, set on a desolate, rocky, treeless hilltop. There, in that dismally awful setting, with no neighbors, with only shabby, poorly furnished rooms, Mrs. S____ tried hard and desperately to make a livable home and bring up the children in a happy frame of mind.

Because of the husband's need for sleep, and because of the small children, the couple found it impossible to go out evenings. Besides, there was nothing convenient to go to. After her husband left in the wee early hours, Mrs. S____ felt afraid to be alone with the children in that desolate place. A restless, questionable watch dog offered poor solace. The brown, weathered rocks outside added a dismal dreary note during the day.

Had the husband had a dime's worth of understanding, five cents worth of sympathy, and two cents worth of good intentions, he might have sensed what the situation meant for his wife. He made *his* bread rounds, joked with the other truckers and workmen, *saw* things and *did* things. Mrs. S_____ couldn't even leave the place because Mr. S_____ had to take the car to work.

He was surprised and disgruntled as his wife became increasingly more complaining and sick. Her increasingly long stays with her mother he regarded as depriving him of a home he was rightfully entitled to. He criticized her for the medical expense she was creating. Finally, after the medical student had discovered Mrs. S_____’s true illness, Mr. S_____ thought the doctor’s explanation was an unrealistic figment of the imagination.

But later on, Mr. S_____ did develop more of an appreciation for his wife’s needs when he found that after treatment she was again a functionally valuable housewife who could get his meals and wash his clothes. She improved even more after he had moved her to a nice little place in an attractive little town where she had a tree in the yard, pleasant neighbors, and a sandbox for the children. It was little enough.

But, as I said, Mrs. S_____ was a normal person — she had a good power of adjustment. It had been the utter impossibility of new experiences (which a sensitive, life-loving girl like Mrs. S_____ needs) plus, of course, the lack of security, the absence of affection, and the depressing effects of that awful environment, that had tossed her into bed for three long months. But now she ~~is~~ doing fine.

◆ 6. *The Sixth Basic Need Is Self-Esteem*

In spite of disappointments, in spite of the little or big personal failures that a person experiences through life, most everyone, nevertheless, manages to think sufficiently well of himself to be encouraged to go ahead. His actual capacities

may be ever so minute, his deficiencies may (to others) far overshadow his insignificant good qualities, but he himself is able to find some field for personal satisfaction — at least a rebuttal against criticism, supporting it with an injustice complex.

A person who is fired from a job he thought he was holding down well, or a person who is "told off" by someone whose good-will he assumed, or a person who loses, by some catastrophe, all he has been working for, feels afterward as though there were nothing left, he feels the utter emptiness of failure, he is done up. But after a little time, his assurance, his feeling that he is worth something after all, gradually returns, and though it may be nicked and chipped a bit, his self-esteem is back. He hardly notices the nicks.

But there are many people who lose *every* vestige of self-esteem, they look upon themselves as failures in every respect, there is nothing more to do or to try. They feel they have no place in the world, no worth, no importance, no ability, no judgment, no future, no past except guilt and failure. There is no bottom to the despair these people feel. They are the most miserable, the sickest, and the most deplorable of all human beings. Such a condition in which *all* self-esteem is gone is called a depressive state. The sheer hopelessness of it all, hour after hour, may finally bring a fling of desperate bravado, this is known as a *manic-depressive state*.

Two types of person prone to depression. Two types of people are most apt to lose their self-esteem and have depressive states. One type is the person with a great abundance of self-confidence and esteem without much in the way of abilities to back it up. The other is the person who starts out with a strong inferiority complex in youth, never rises above it, and finally succumbs to a series of failures.

Depressions can occur anytime during life, but are most common after middle life, about the time when one looks back and recoils from the obvious fact that one's accomplishments and achievements have nowhere measured up to early plans and hopes. This alone will not bring on the depression,

but if there is added a set-back or two, preventable or unpreventable, what is left of self-esteem begins to vaporize

John Doe was always a confident fellow who bragged rather easily. He was always ready to criticise the other fellow's political or religious views and "set him straight." This made him somewhat of an irritation in any office, particularly to the boss whose abilities John Doe regarded as far lower than his. At forty, John Doe stormed out of the office one day. He had quit! What was more, he had put the boss in his place. Work at that time was easy to get, and J. D. joined a much larger company where he figured his abilities would be recognized and amply rewarded.

But he was never advanced. His politics grew very nasty. He began to be sharp to everyone and anyone. And one day, when he was 56, he was calmly told his services were no longer necessary. This time a job was much harder to find, and before he found one, he became truly alarmed that possibly another job was not to be had. He was on his new job only two months when he was laid off. His wife, who had never been too easy to live with, berated him day and night.

John was at last completely flattened out. All that he thought he was, he now recognized as a mistake, everything he had prided himself on was now a delusion; the things he had always dreamed of being and doing had melted away. The only future lay with the welfare department. John Doe went into a severe depression and was institutionalized at the expense of the state.

There are all sorts of variations on that theme. Sometimes the failure of the individual is unquestionable, but sometimes the failure is not nearly so great as the victim imagines it is.

What happens in either case is that the person does not have enough self-confidence to go on or to do anything. He is in a state of being personally whipped.

The loss of this sixth psychological need has more immediate and apparent effects than does the lack of any of the

other basic needs. The others lead eventually to an agitated feeling of vague anxiety and unrest. The loss of self-esteem is characterized by the depressive state.

Gradually the feeling of complete failure wears off, and after months or years, the person again acquires enough self-esteem to become useful to himself and others.

If a person who is developing a depression can put into action the program of conscious thought-control, which we are outlining in these chapters, he can avert his depression. Once a classical depression has developed, there are only two things that can be done to help the patient: take care of him and wait until the depression wears off naturally, or give the patient electroshock therapy, which snaps him out of it in two or three weeks. The alternative to this is, of course, to exercise conscious thought-control and keep yourself out of a dangerous depression.

♦ *What to Do About Your Basic Needs*

Review for yourself the presence or absence in your life of these six basic psychological needs. Ask yourself **Do I in my private world:**

-
- 1. Receive the *love* of others, or am I a lone, unwanted individual;
 - 2. Have *security*, or am I afraid of my finances, my job, my social status, my legal status;
 - 3. Exercise *creative expression* in my work, in my hobbies, or in any other way;
 - 4. Receive the *recognition* of any of my fellow men;
 - 5. Have the possibility of *new experiences*, or am I an old fossil in a deep rut;
 - 6. Have my own *self-esteem*, or am I going down in my own estimation?
-

You might as well be frank, candid, and objective in your answers — it is yourself you are dealing with.

1. If you are situated somewhat like Verna, and there is

no one in your world who really cares a penny's-worth about you, the best compensation is to give your love to those about you, and do for them as you would like to be done by. Part of maturity, you will remember, is to have the giving rather than the receiving attitude. It becomes a great satisfaction to love and do good for the people around you who do not deserve or expect it.

2. If it's **security** you lack, decide what you are going to do about it and then quit turning it over and over in your mind. If you cannot do anything to increase your security, there is no use adding worry to it, it's already bad enough. Remember how William, King of Living, handled insecurity? You might re-read Chapter 8.

3. If it's **creative expression** you lack, if you feel you are not making or creating *anything*, that you are just a machine for menial chores, get busy and don't let it eat you any longer. Try doing something you have always hankered to do, try it on your own, or go to the nearest vocational school and pick up a creative art. You might as well start to live!

4. If it's **recognition** that you yearn for, quit yearning, accept the compensation of knowing that you are doing as good a job *for other people* as you possibly can. Give them the recognition instead.

It could be, madam, that if your husband reads this the big goof might give you a little recognition tomorrow by saying, "It is a wonderfully good dinner, my darling!" It would feel good, wouldn't it? But even if you get no recognition from him, you tell him, "You look fine and nice this morning, Fred! I've got a swell-looking man!" He'll like that, and your recognition of him will help you almost as much. Maybe someday he'll give some of it back.

5. If you've become a drudge, caught tight in dull routine, by all means, bust out into some **new experience**. You should be looking ahead and **planning a new experience all the time**. Buy something; do something, something exciting, join something, go somewhere. Off with you, this minute, into planning a new experience!

6. If your **self-esteem** has been jolted lately, smooth yourself with humility. Don't try to be, don't think yourself as being, too much. Just an ordinary person. There have been lots of them — many more of that kind than any other. Lincoln was a plain person, with humility, just like you. Then smile! Put conscious thought control into action to substitute equanimity, courage, determination, and cheerfulness for those stress emotions of failure, disappointment, futility. You are just as good as I am, and we are just as good as they are, God bless them!

THE IMPORTANT POINTS TO REMEMBER IN CHAPTER 14

There are six basic psychological needs in every person. If a person lacks any one of them in his life, he will be basically unhappy, tense, and restless without knowing why. These needs are the need for affection, security, creative expression, recognition, new experiences, and self-esteem.

- If you lack love and affection from others —
Give more than your share of love and affection to others.
 - If you lack security —
There is no use adding worry to a bad situation; run the emotionally healthy flags up on your masthead.
 - If you lack creative expression —
Go to it, nothing is holding you.
 - If you lack recognition —
Give recognition to other people instead; some of it will come back.
 - If you lack new experiences —
Go out and get them, be planning something all the time
 - If you have lost your self-esteem —
Remember this: you are just as good as I am, you and I are just as good as they are, God bless them.
-

15.

HERE IS YOUR FINAL BLUEPRINT

◆ *The Choice Is Yours*

Practice thought control. When you catch yourself starting a thought that will produce a stressing emotion like worry, anxiety, fear, apprehension, discouragement, or the like, STOP IT, and substitute thinking that brings a healthy emotion, like equanimity, resignation, courage, determination, and cheerfulness.

◆ *Keep This Always in Mind:*

The key thought: Carry this idea every minute of every day: *I am going to keep my attitude and thinking calm and cheerful* — RIGHT NOW

◆ *Handle Life This Way:*

When the going is good: Tell yourself life is good, and allow yourself the delightful feeling of being happy

When the going gets rough: 1. Stay outwardly as cheerful and as pleasant as you possibly can. Lighten an awkward situation with a lift of humor, with kindness, or a bit of a smile.

2. Avoid running your misfortune through your mind like a repeating phonograph record. Above all, do not let yourself get irritated, upset, hysterical, or self-pitying

3. Try to turn every defeat into a moral victory

4. Run these flags up on your masthead and *keep them flying*.

-
- Equanimity ("Let's stay calm.")
 - Resignation ("Let's accept this setback gracefully.")
 - Courage ("I can take all this and more.")
 - Determination ("I'll turn this defeat into victory.")
 - Cheerfulness ("See, I'm coming up.")
 - Pleasantness ("I still have goodwill toward men.")
-

♦ *Important Areas in Living to Watch*

-
- Keep life simple
 - Avoid watching for a knock in your motor.
 - Like work.
 - Have a good hobby
 - Learn to be satisfied.
 - Like people.
 - Say the cheerful, pleasant thing.
 - Turn the defeats of adversity into victory.
 - Meet your problems with decision.

- Concentrate on making the present moment an emotional success.
 - Always be planning something.
 - Say "Nuts" to irritations.
-

◆ *Make Your Family an Asset Rather Than a Liability*

Put These Things into the Family:

- Simplicity in living, and simplicity in enjoyment.
 - The idea of the family enterprise.
 - The idea that the family is part of the human enterprise
 - The attitude of turning defeat into victory.
 - An atmosphere of affection, mutual respect and regard.
 - A general tone of kindly cheerfulness.
 - Reasonable, firm, yet pleasant discipline.
 - A feeling of mutual confidence and security.
 - An atmosphere of enjoyment — right now.
-

◆ *Control Your Sex Urge Rather Than Having It Control You*

- If you are unmarried: Sublimate your energies into interesting, absorbing and vigorous activities, and develop your general maturity.

- If you are married: Every relation between you and your wife, or husband, and this includes the sexual relation, needs to be mature, that is to say, sympathetic, understanding, unselfish, cooperative, and affectionate.

- In any case: Be content to keep sexuality within the accepted bounds. It is easier to stay out of trouble than to get out of it once you get in it.

◆ *Fill Up Your Own Unfulfilled Basic Needs*

Here Is How:

- If you lack love and affection from others —
Give more than your share of love and affection to other human beings.
 - If you lack security —
There is no use adding worry to a bad situation; run the emotionally healthy flags up on your masthead.
 - If you lack creative expression —
Go to it, nothing is holding you.
 - If you lack recognition —
Give recognition to other people instead; some of it will come back.
 - If you need new experiences —
Go and get them; be planning something all the time.
 - If you have lost your self-esteem —
Remember this: you are just as good as I am; you and I are just as good as they are, God bless them.
-

◆ *This Blueprint Leads to Maturity*

By following the blueprint (and the choice is yours) you will be developing maturity and emotional stasis

Maturity Is This:

- *Responsibility and independence, instead of dependence.*
- *A giving rather than a receiving attitude.*
- *Cooperativeness and a feeling for the human enterprise, instead of egoism and competitiveness.*
- *Gentleness, kindness, and good-will, instead of hostile aggressiveness, anger, hate, cruelty, and belligerence.*

- The ability to distinguish *fact* from fancy.
- *Flexibility* and *adaptability*, instead of awkward and stubborn resistance to changes dictated by fate, fortune, and intelligence.



◆ *Good Living Is Yours*

If you are going to limp through year after year of anxious, troubled misery, 100 years, or 75, or even 50, is an interminable hell on earth, the shorter life is, under such conditions, the better, none at all would be best

But once you learn the trick of striding along, eyes calm with equanimity, head up with determination, chest out with courage, a pleasant word for fellow travelers, and resignation on meeting rocky rough roads, your years will beg repetition, and your living will be a fascinating enterprise that you would welcome for a hundred years

The choice of whether to limp or to stride is yours — RIGHT NOW.

A WORD TO THE PROFESSIONAL READER

The physician who prescribes this book for his patient, or the teacher who is interested in "total" education, may wish to know more about the psychological concepts underlying my method of treating emotionally induced illness.

♦ *The Basic Psychological Concept in the Method*

The basic psychological concept of the method of treatment presented in this book is the *learning-maturity concept*. Simply stated, this means that emotional stress is the result of miseducation, or lack of proper education, and that emotional stasis can be achieved by *learning* the qualities that comprise *maturity*. Stress is bound to arise in an immature person because he is trying to handle adult situations and problems with primitive and childish techniques. The learning-maturity concept has gradually been emerging from the constantly boiling cauldron of psychiatric and psychological thinking. This concept is the direct antithesis of Freudian psychiatry, which has been oriented by the concept that emotional stress is conditioned early in life by an unacceptable experience that is relegated to the dusky murkiness of the subconscious, where it preys on the host forevermore.

The learning-maturity concept further implies that the treatment of emotional stress consists in showing the patient precisely what maturity means in the handling of everyday

living, and then showing him a practical discipline for carrying on his living with a passable degree of maturity

In contrast, the therapy of traditional psychiatry consists quite largely of digging into the personal history and the half-buried past, a very interesting though, in my opinion, not a very fruitful method of treatment. It does afford the therapist an excellent idea of the particular variety of immaturity a patient has, but this is a matter which can be determined fairly readily, without hours spent on a psychiatric couch. Being interested mainly in the past, the traditional psychiatrist often prefers to do very little about the present or the future.

The learning-maturity concept, on the other hand, insists that, regardless of the omissions and commissions of the past, a person has to *start in the present* to acquire some maturity so that the future may be better than the past. The present and the future depend on learning new habits and new ways of looking at old problems. There simply isn't any future in digging continually into the past.

Instead of recreating the past, as does the conditioning concept, the learning-maturity concept emphasizes an improved approach for the present and future.

◆ *The Common Denominator in Emotionally Induced Illness*

The starting point in the treatment of E. I. I. becomes simple and clear when one realizes that the underlying emotional problem has the same common denominator in every patient. This common denominator is that the patient has forgotten how, or probably never learned how, to control his *present* thinking to produce *enjoyment*. Constant fear, anxiety, apprehension, irritation, frustration, and discouragement absolutely preclude the possibility of enjoyment. Emotional stress can be helped *only by learning* to react to situations RIGHT NOW with equanimity, courage, determination, and cheerfulness. The person who learns to handle the ma-

jority of life situations with equanimity, courage, determination, and cheerfulness has taken a long step into maturity. Beyond this step there remains the development of unselfish cooperativeness and good judgment to make maturity fairly complete.

My method of therapy places the patient on the enjoyment principle by a conditioned reflex through conscious thought control, by substituting equanimity, courage, determination and cheerfulness, whenever anxiety, apprehension, and so on, begin to make their appearances. This substitution is done by conscious thought control until habit can eventually take over. Such substitution is what people with emotional stasis are doing habitually all the time

◆ *The Practical Application of the Common Denominator and the Learning-Maturity Concept*

The point of greatest practical difference between the traditional adequate psychotherapy and the learning-maturity method is this adequate psychotherapy requires hours and hours of the doctor's time and can, therefore, be used only on an extremely small fraction of patients who need therapy, the learning-maturity method can be applied in ways that require practically none of the doctor's time.

How can the learning-maturity method be applied without hours of the doctor's time?

First, because maturity in one person is the same thing as maturity in another person, and second, because there is the same common denominator in every person with emotionally induced illness, the course and procedure of therapy *is the same in every patient*, regardless of how their problems may differ in detail.

The essential thing to show patients is how they may henceforth meet the ordinary life situations with maturity and emotional stasis, and how they may introduce enjoyment into the present moment. This can be done in the same way for everyone. Therapy for emotionally induced illness can be standard-

ized to a single pattern and yet help practically 100 per cent of the patients. If one can develop a system of instruction that will help *one* patient develop maturity and emotional stasis, the same system would work for almost any other patient.

For the past 20 years I have tried various methods and various techniques, working always with this requirement in mind: **Because there are so many patients with E. I. I., the doctor must have a method that does not require much of his time.** I submit that *unless a method meets this criterion, it is useless in medical practice.*

One method that at first seemed to promise well was group therapy. Ten, 25, 50, even 75 patients would meet periodically for orientation lectures, followed by general group discussion. But this grew to a point where I was spending three hours every night with such groups. This was not saving the doctor's time and it was a grueling program!

The results of group therapy were encouraging, but not too satisfactory. Much still remained to be given the patient in private sessions.

After several false starts with sound alone, I finally tried an audiovisual demonstration, using wire recordings, and later tape recordings, coupled with colored slides projected on a screen. Almost at once patient response indicated that this was it!

The method was perfected so that one patient, and his spouse, could receive instruction in private. What this method lacked by not having the doctor talking directly to the patient was more than compensated by the thoughtful care that could go into the preparation of a tape recording far superior to an off-the-cuff lecture, plus the additional interest of slides on a screen giving point and interest to the demonstration. The doctor saw the patient briefly before and after each audiovisual demonstration.

Here was a method which worked during the day while the doctor was attending his other patients. Bit by bit the audiovisual demonstrations were pieced together, changed here and altered there, until they developed a hitting power

that far exceeded the group therapy sessions. The present demonstrations can admittedly be vastly improved upon, and, indeed, they are constantly being added to and changed

The audiovisual sessions are attended by the patient and his spouse at weekly intervals. He sees the doctor for a period of five minutes before and after each session, so that the doctor may make certain that the patient is being suitably oriented. The tape recordings present essentially the same material contained in this book, greatly augmented by the visual aid of the screen projections

During the past six years, thousands of patients have attended these therapeutic sessions. The majority have either been cured of their ailment, or have been shown how to tolerate their symptoms. Most of them have been shown how to live happily. The doctor, too, benefits by removing his greatest worry and care, which is "How can I possibly bring effective help to these scores of people with emotionally induced illness?" The layman cannot possibly appreciate what a tremendous burden functional disease produces for the doctor. The doctor needs a method of therapy as much as does the patient.

Having seen what can be accomplished by audiovisual sessions utilizing the learning-maturity concept, and failing to see how the tremendous number of patients can be given the necessary therapy in any other way, I am of the opinion that eventually this system, or some modification of it, *must* become the universally accepted method of treating emotionally induced illness.

♦ *A Comparison of the Learning-Maturity Method and "Adequate Psychotherapy"*

Adequate psychotherapy for E. I. I. consists of three distinct phases, the period of explanation, the period of ventilation, the period of education

The emphasis is placed on the period of ventilation, the

period of explanation is very sketchy and often unconvincing; the period of education varies in intensity with various psychiatrists. Some leave it out altogether.

Psychoanalysis consists only of the period of ventilation. The analyst considers a period of education entirely superfluous.

The learning-maturity method by audiovisual presentation emphasizes the period of explanation and the period of education. The period of ventilation is turned into a period of demonstration.

The period of explanation. The initial step, in both adequate psychotherapy and in the learning-maturity method, is to explain to the patient that he has emotionally induced illness, and to give him some idea of how E I I works.

The adequate psychotherapist has considerable trouble in doing this because his explanations are exceedingly ephemeral, and leave the average patient completely unconvinced.

As an example, a patient of mine who was seen by a psychiatrist was given this explanation of his diarrhea: "You hate your mother-in-law, and you would like nothing better than to have her out of your life. Your diarrhea is your body's organ-language of that repressed desire." To the patient that sounded pretty weak. He was not convinced that his diarrhea had anything to do with his mother-in-law, especially when his diarrhea did not stop after his mother-in-law had been killed in an accident (with which the patient had nothing to do).

Admittedly the man's mother-in-law had much to do with the emotional stress which was manifesting itself in his colon, but to give the explanation that the body is acting out a phrase of language, which the mind dare not express, is, in my opinion, just as silly as it sounds. It sounded silly to the patient.

Another symbolic psychiatric explanation is, "You feel a lump in your throat because that is your body's expression of the fact that you have things in your life you can't swallow." There is, of course, a connection between the "things in your

life" and the lump, but why can't the explanation be factual, that is to say, physiological, instead of merely figurative?

It is much easier to convince patients that they have E. I. I. if the explanation is physiological, as in the first part of this book. After the audiovisual sessions on explanation, the patient usually says, "Sure, you were describing me all the time. Why didn't someone tell me before how this worked?"

We know, today, what the mechanism of E. I. I. is. Why not use it? In fairness, it must be noted that psychiatrists are turning more and more to physiologic explanations of the emotion-symptom relationship. But many of them still rely on the hokus-pokus of symbolism.

The period of ventilation. Traditional psychiatrists, and especially psychoanalysts, place their main emphasis on the part of their therapy they term "ventilation," which consists in having the patient talk about himself.

The ventilative sessions of an hour each, at weekly intervals, extend from weeks to years, depending on how deeply buried the subconscious material happens to be.

From such ventilation, the psychiatrist hopes to have the patient uncover the mainspring of his illness, the theory being that emotional stress is due to repressed and buried complexes that tend to disappear as soon as the patient knows of their presence and significance. The main objection to this theory is that it does not often work, it does not often produce a cure of the patient's emotional stress.

In the audiovisual presentation of the learning-maturity method there is obviously no place for ventilation. Instead of listening to the patient ventilate, as in "adequate psychotherapy," the doctor ventilates for the patient. In the audiovisual sessions, as in this book, the patient is presented with the chief situational and personality factors that produce emotional stress. He has time to compare his own situation with the hypothetical ones presented during the sessions, he analyzes himself and realizes that perhaps what he has always considered normal for himself is, after all, abnormal.

Very often, a person who has attended several audiovisual sessions will voluntarily reveal a situation in his life that he had been hiding. If the patient doesn't voluntarily bring me an assay of himself after a reasonable number of sessions, I ask him, "Now that you have seen the kind of thing that produces E I L. in most people, what do you think is doing it in you?" If he doesn't have an immediate answer, I ask him to bring it with him before he attends the next session

The period of education. After the explanatory and ventilative periods, the psychotherapist usually discusses, with the patient, ways and means of alleviating his difficulties. This period of education is by no means universally used by all psychiatrists. Many psychiatrists do not give the patient any directive program and believe educational efforts are useless. Their emphasis, of course, is on the cathartic effect of the ventilative period.

The learning-maturity concept emphasizes the educative period. The main effort is *not* to dig up the past but to show the patient how he may go about acquiring the qualities that will make his present and future more endurable and satisfactory than his past.

A person is what he is because of the sum total of influences that he has met in the past. Whatever those influences were does not preclude the application of new influences and new learning patterns now or in the future. If a poor swimmer is shown how, the chances are he can be a better swimmer. Once in a great while, of course, there will be someone who just can't learn to swim, but the majority can be helped.

The *final* know-how for developing maturity and emotional stasis we do not yet have, it is something that will have to be acquired through trial and error. However, there *is* already quite a bit we do know, let us begin to apply that

.



INDEX



.

INDEX

A

- Accidents, worry and, 165
- ACTH, *see* Adrenocorticotrophic hormone
- Adaptability, quality for maturity, 81-82
- Adequate psychotherapy, 5
 - drawbacks, 5
 - education period, 213
 - explanation period, 211-12
 - learning-maturity concept and, comparison, 210-13
 - ventilation period, 212-13
- Adler, Dr Alfred, 187
- Adrenocorticotrophic hormone (ACTH), 47-51, 53, 54, 56
 - counteracts STH, 43, 44, 47
 - stress disease, 48-51
- Adversity, meeting, 116-17
- Affection, family atmosphere, 138
- Aggressiveness, overcoming hostile, 77-79
- Aging persons, 168-81
 - children's indifference, 174-75
 - death, fear of, 175
 - emotional stress, 168-69
 - financial insecurity, 172-73
 - friends, loss of, 175-76
 - getting old, meaning of, 172-77
 - housing for, 176
 - ill-health, fear of, 175
 - job insecurity, 173
 - love basically important, 186-87
 - maturity in, 178-80
 - problem, 177-78
 - senility, 169-72
 - unrecognition, 192

- Anger, manifestations, 10-12
- Annals of Internal Medicine*, 54
- Anxiety, family atmosphere, 132-33
- "Appendicitis," emotional, 24
- Apprehension, physical, avoiding, 100-104
- Asthma, 45-46
- Attitudes, definite, maturities and, 82
- Autonomic nervous system, 17, 18
- Average moment, importance of handling, 94-95

B

- Bacterial invasion, 41
- Battle emotions, 61
- Belching, emotionally induced, 26-27
- Biology, civilization and, 142-44
- Blood vessels, muscles of, emotional manifestations in, 27-29
- Bowman, Dr K. M., 170, 171
- Burroughs, John, 98

C

- Cannon, Dr W. B., 10, 38
- Cardiospasm, 20
- Cheerfulness, 90
 - family atmosphere, 138-39
 - fundamental emotion, 62
- Children's indifference, aging persons, 174-75
- Church, emotional stress educational influence, 69
- Civilization, biology and, 142-44
- Cold war in the home, 128-29
- Colon
 - emotional "appendicitis," 24

Colon (*cont*)

emotional manifestations in, 22-23

Common denominator in EII,
207-208

application of learning-maturity
concept and, 208-10

Complaining family atmosphere, 132

Confidence, family atmosphere, 139

Conversation, developing cheerful,
114-16

Co-operation, equality for maturity,
74-76

Courage, 90

Creative expression, need for, 189-90,
199

Critical family atmosphere, 128-30

D

Death, fear of, aging persons, 175

Decision, meeting problems with,
117-20

Depression, persons prone to, 196-98

Desoxycorticosterone (DOCA), 42

Determination, 90

Discipline, family atmosphere, 139

Dislike, family atmosphere, 130-31

Diuretic hormone, 41-42

DOCA, *see* Desoxycorticosterone

Dunbar, Dr., 38

E

Educational failure, emotional stress
due to, 68-69

church influence, 69

family influence, 68

friends' influence, 68-69

schools' influence, 69

Education period, adequate

psychotherapy, 213

Egotism, selfish, family atmosphere,
131-32

Emotionally Induced Illness (EII), 3

adequate psychotherapy, 5

drawbacks, 5

education period, 213

explanation period, 211-13

learning-maturity concept and,
comparison, 210-13

ventilation period, 212-13

common denominator in, 207-208

application of learning-maturity
concept and, 208-10

dark spot in modern medicine, 4-5

ever present, 66-67

Emotionally Induced Illness (*cont*)

intelligence as factor in, 8-9

new knowledge concerning, 39

physical disease, 7-8

prevalance, 3-4, 168

psychological concept in method,
206-207

psychological needs, basic, 182-200

senility, 169-72

substitution therapy, 5-7

symptoms, 7-8

production, 16

unpleasant emotions as cause, 13-16

Emotional Maturity, 72 fn

Emotional stasis

developing, 84-96, 204-205

family atmospheres that produce,
135-40

family influence on, 126-41

maturity and, 69-70

principles to make life richer,
97-122

religion and, 123-24

sex and, 142-60

trouble versus, 67-68

Emotional stress, *see* Stress

Emotions

anger, manifestations, 10-12

battle, 61

definition, 9

fundamental, 59-60

battle emotions, 61

cheerful, 62

effect, 60-61

immaturity, from, 61

unfilled basic needs, from, 61

glands, disease through, 38-52

diuretic hormone, 41-42

pituitary gland, 39-41

good

best medicine, 53-54

body reactions to, 53-58

effects, 54-55

"miracles" and, 56-57

optimal hormone balance

produced by, 56

kinds, general, 9-10

levels, 59-60

nervous system and, 18-33

"appendicitis," emotional, 24

belching, 26-27

blood vessels, 27-29

cardiospasm, 20

colon, 22-23

Emotions (*cont*)

- gall-bladder-like pain, 23-24
- lump in throat, 19-20
- muscle tension, 18-19
- neck pain, 19
- skeletal muscles, 29-31
- skin trouble, 28-29
- stomach pain, 20-22
- overbreathing, symptoms resulting from, 34-37
- single
 - cause of severe illness, 12-13
 - producing single symptom, 12
- superficial, 59-60
- unpleasant
 - cause of emotionally induced illness, 13-16
 - monotonous repetition, 13-15
- Endocrine glands, 39-51
 - research, future of, 51
- English, W. C., 98-99
- Enjoyment, mutual, family atmosphere, 140
- Enterprise, family atmosphere, 136
- Equanimity, 90
- Esophagus
 - tightness of lower muscles, 20
 - tightness of upper muscles, 19-20
- Executives, emotional stress, 162-63
- Experiences, new, need for, 193-95, 199
- Explanation period, adequate psychotherapy, 211-12

F

- Fact distinguished from fancy, quality of maturity, 79-81
- Family
 - asset rather than liability, making, 203
 - atmospheres that produce stasis, 135-40
 - affection, 138
 - cheerfulness, 138-39
 - confidence, 139
 - discipline, 139
 - enterprise, 136
 - human enterprise, 136-37
 - mutual enjoyment, 140
 - simplicity in living and enjoyment, 135-36
 - turning defeat into victory, 137-38

Family (*cont*)

- atmospheres that produce stasis, 127-34
 - anxiety, 132-33
 - complaining, 132
 - critical, 128-30
 - dislike, 130-31
 - fear, 132-33
 - in law domination, 133-34
 - kill-joy, 127-28
 - selfish egotism, 131-32
 - cause of disease, 126-27
- emotional stress, educational influence, 68
- Fear
 - family atmosphere, 132-33
 - ill-health, aging persons, 175
- Fibrositis, 29-31, 101
- Financial insecurity, aging persons, 172-73
- Flexibility, quality for maturity, 81-82
- Freud, Dr. Sigmund, 144, 187
- Friends
 - emotional stress, educational influence, 68-69
 - loss of, aging persons, 175-76
- Frost, Robert, 135
- Fundamental emotions, 59-60
 - battle emotions, 61
 - cheerful, 62
 - effect, 60-61
 - immaturity, from, 61
 - unfilled basic needs, from, 16

G

- Gall-bladder-like pain, emotionally induced, 23-24
- Gas pains, emotionally induced, 24-26
- Giving attitude, quality for maturity, 73
- Glands
 - emotions produce disease through, 38-52
 - endocrine, 39
 - pituitary, 39-41
 - adrenocorticotrophic hormone, 47-51
 - diuretic hormone, 41-42
 - somatotrophic hormone, 42-47

H

- Half-way man, emotional stress, 164

Hobbies

- aging persons, 179
- developing, 106-107

Hormones, 40, 41

- adrenocorticotrophic (ACTH),
 - 47-51, 53, 54, 56
 - stress disease, 48-51
 - counteracts STH, 43, 44, 47
- diuretic, 41-42
- optimal balance, 53-54
- good emotions produce, 56
- somatotrophic (STH), 42-44, 54, 56, 169, 188
 - ACTH counteracts, 43, 44, 47
 - prolonged STH stress, 44-45
 - stress disease, 44-47

Housing for the aging, poor, 176**Human enterprise, family atmosphere, 136-37****Hunter, John, 11-12****Hyperventilation syndrome, 34-37****Hypothalamus, 18****I****Iatrogenic illness, 7****Ill-health, fear of, aging persons, 175****Immaturity**

- fundamental emotions from, 61
- sexual, in marriage, 152-54

Independence, responsible, quality for maturity, 72**Industrial system, emotional stress, 161-67****Infection stress, emotional stress versus, 46****In-law domination, family atmosphere, 133-34****Irritation, avoiding, 122****Ivy, Dr. Andrew C., 23****J****James, William, 9****Job insecurity, aging persons, 173****Jung, Dr. Carl Gustav, 187****K****Kelly, Dr. G. Lombard, 160****Kill-joy family atmosphere, 127-28****L****Laborers, emotional stress, 164-65****Lange, Dr., 38****Learning-maturity concept, 206-207**

- adequate psychotherapy and, comparison, 210-13
- application of common denominator and, 208-10

Libbman, Dr. E., 31**Liddell, H. S., 14-15****Living a richer life, principles, 97-125**

- adversity, meeting, 116-17
- conversation, cheerful and pleasant, developing, 114-16
- decision, meeting problems with, 117-20

hobby, developing, 106-107**irritation, avoiding, 122****liking for people, developing, 112-14****physical apprehension, avoiding, 100-104****planning, need for, 121-22****present moment an emotional success, making, 120-21****satisfaction, 107-11****simplicity of living, 97-100****work, learn to like, 104-106****Love**

- need for, basic, 182-87, 198-99
- sexual importance, 185-86

M**Marriage:**

- sex before, handling, 155-57
- sexual difficulties before, 149-50
- sexual immaturity in, 152-54
- sexual maturity in, 157-60

Masturbation, 150-51**Maturity**

- adaptability, 81-82
- aging persons, 178-80
- co operation, 74-76
- definite attitudes and, 82
- developing, 84-96, 204-205
- emotional stasis and, 69-70
- fact distinguished from fancy, 79-81
- family atmospheres that produce, 135-40
- family influence, 126-41
- flexibility, 81-82
- giving attitude, 73
- hostile aggressiveness overcome, 77-79
- misconception of, 70-72
- qualities that make for, 72-82

Maturity (con't)

- responsible independence, 72
- sex and, 142-60
 - biology and civilization, 142-44
 - difficulties before marriage, 149-50
 - handling, before marriage, 155-57
 - immaturity in marriage, 152-54
 - masturbation, 150-51
 - perversion, 151-52
 - restraints are necessary, 143-44
 - sophistication, immaturity of, 145-49
 - urge not mainspring of human being, 144-45
- sexual, 76-77, 155
 - in marriage, 157-60
- Miracles, good emotions and, 56-57
- Moore, A. V., 14-15
- Muir, John, 98
- Muscles
 - blood vessels, emotional manifestations in, 27-29
 - esophagus
 - tightness of lower, 20
 - tightness of upper, 19-20
 - neck, pain in, 19
 - skeletal, emotional manifestation in, 29-31
 - stomach, emotional manifestation in, 20-22
 - tension, pain and, 18-19
- Muscular rheumatism, 29-31
- Mutual enjoyment, family atmosphere, 140
- Myofibrositis, 29-31

N

- Natural History of Selbourne*, 111
- Neck pain, emotionally induced, 19
- Needs, basic psychological, fulfillment, 182-200
 - creative expression, 189-91, 199
 - fill your own, 204
 - love, 182-87, 198-99
 - new experiences, 193-95, 199
 - recognition, 191-93, 199
 - security, 187-89, 199
 - Self-esteem, 195-98, 200
 - what to do about, 198-200
- Nervous system, emotions and, 18-33
 - "appendicitis," emotional, 24
 - belching, 26-27

Nervous system, emotions and (cont)

- blood vessels, 27-29
- cardiospasm, 20
- colon, 22-23
- gall-bladder-like pain, 23-24
- lump in throat, 19-20
- muscle tension, 18-19
- neck pain, 19
- skeletal muscles, 29-31
- skin trouble, 28-29
- stomach pain, 20
- Neurodermatitis, 28-29
- New experiences, need for, 193-95, 199

O

- Optimal hormone balance, 53-54
 - good emotions produce, 56
- Overbreathing, emotional, 34-37

P

Pain

- "appendicitis," emotional, 24
- colon, emotionally induced, 22-23
- gall-bladder-like, emotionally induced, 23-24
- gas, emotionally induced, 24-26
- muscle tension and, 18-19
- neck, 19
- sensitivity to, 31-32
- stomach, emotionally induced, 20-22

People, liking, 112-14

- Perversion, sexual, 151-52
- Pituitary gland, 18, 39-41
 - adrenocorticotrophic hormone, 47-51, 53, 54, 56
 - counteracts STH, 43, 44, 47
 - stress disease, 48-51
 - diuretic hormone, 41-42
 - somatotrophic hormone, 42-44
 - ACTH counteracts, 43, 44, 47
 - prolonged STH stress, 44-45
 - stress disease, 44-47

Planning, need for, 121-22

Pleasantness, 90

Present moment, emotional success, making, 120-21

Psychic stressors, 41

Psychoanalysis, 212-13

R

- Recognition, need for, 191-93, 199
- Religion, emotional stasis and, 123-24
- Research, endocrine, future of, 51

Resignation, 90

Responsible independence, quality
for maturity, 72

S

Satisfaction, learning, 107-11

Saul, Dr. Leon Jr., 72 fn

Schools, emotional stress, educational
influence, 69

Security, need for, 187-89, 199

Self-esteem, need for, 195-98, 200

Selfish egotism, family atmosphere,
131-32

Selye, Dr. Hans, 39, 40, 41, 42, 44, 49,
54, 165

Senility, 169-72

Sex, 142-60

biology and civilization, 142-44

difficulties before marriage, 149-50

handling, before marriage, 155-57

immaturity in marriage, 152-54

love basically important, 185-86

masturbation, 150-51

maturity in, 76-77, 155

in marriage, 157-60

perversion, 151-52

restraints are necessary, 143-44

sophistication, so-called

immaturity of, 145-46

trouble with, 146-49

urge

controlling, 203

not maimspring of human being,
144-45

See Manual, 160

Simplicity in living, 97-100

family atmosphere, 135-36

Skeletal muscles, emotional

manifestation in, 29-31

Skin trouble, emotionally induced,
28-29

Somatotrophic hormone (STH),
42-44, 54, 56, 169, 188

ACTH counteracts, 44

prolonged STH stress, 44-45

stress disease, 44-47

Sophistication, so-called

immaturity of, 145-46

trouble with, 146-49

STH, *see* Somatotrophic hormone

Stomach pain, emotionally induced,
20-22

Story of the Adaptation Syndrome,
39 fn.

Stress, emotional, 40-41

ACTH disease, 48-51

educational failure, due to, 68-69

emotional stasis versus trouble,
67-68

executives, 162-63

family atmospheres that produce,
127-34

anxiety, 132-33

complaining, 132

critical, 128-30

dislike, 130-31

fear, 132-33

in-law domination, 133-34

kill-joy, 127-28

selfish egotism, 131-32

half-way man, 164

increases with the years, 168-69

industrial system, 161-67

infection, emotional stress versus, 46

laborers, 164-65

prolonged STH, 44-45

STH disease, 44-47

stressors and, 40-41

Stressors, stress and, 40-41

Styloid process, 31

Substitution therapy, 5-7

Superficial emotions, 59-60

Symptoms, emotionally induced

illness, 7-8

single, single emotion producing,
12

production, 16

T

Tetany, 35, 37

Thoreau, David, 98

Thought-control, conscious, 85-90

practicing, 201-202

Throat, lump in, emotionally
induced, 19-20

Trouble, emotional stasis versus,
67-68

V W

Ventilation period, adequate
psychotherapy, 212-13

Virus infection, 41

White, Gilbert, of Selbourne, 98, 111

White, Dr. Paul, 54-55

Whitman, Walt, 98

Wolf, Dr., 38

Wolff, Dr., 38

Work, learn to like, 104-106

Worry, accidents and, 165

